अतीत और परंपरा

सप्तम श्रेणी

पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

प्रथम संस्करण : दिसम्बर, २०१२
द्वितीय संस्करण : दिसम्बर , २०१३
तृतीय संस्करण : दिसम्बर, २०१४

पुस्तक–अधिकार : पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

प्रकाशक
प्राध्यापिका नवनीता चटर्जी
सचिव, पश्चिमबंग मध्य शिक्षा परिषद
७७/२ पार्क स्ट्रीट, कोलकाता – ७०० ०१६

मुद्रक
वेस्ट बंगाल टेक्स्ट बुक कार्पोरेशन लिमिटेड
(पश्चिमबंग सरकार का उद्यम)
कोलकाता -७०००५६

सत्यमेव जयते

भारतीय संविधान

प्रस्तावना

''हम, भारत के लोग, भारत के एक संपूर्णप्रभुत्वसंपन्न धर्मनिरपेक्ष समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय-सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक,स्वतंत्रता- विचार की, अभिव्यक्ति की, विश्वास की, धर्म एवं पूजा की,समानता- प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें,भ्रातृत्व-जिसमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित रहे, का वर्धन करने के लिए इस संविधानसभा में आज २६ नवंबर १९४९ को इसके द्वारा इस संविधान को स्वीकार करते हैं, कानून का रूप देते हैं और अपने-आपको इस संविधान को अर्पण करते है।''

THE CONSTITUTION OF INDIA

PREAMBLE

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens : JUSTICE, social, econnomic and political; LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship; EQUALITY of status and of opportunity and to promote among them all – FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the Nation; IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November 1949, do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

भूमिका

'परिवेश एवं इतिहास' के अंतर्गत सप्तम श्रेणी की पाठ्य-पुस्तक 'अतीत और परंपरा' प्रकाशित हुई। इतिहास विषय के विद्यार्थियों की जिज्ञासा बढ़ाने के लिए 'अतीत और परंपरा' पुस्तक में धीरे-धीरे अतीत विषयक विभिन्न विचारों को प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ राजनीति विज्ञान संबंधी कुछ प्रसंगों की चर्चा है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा- २००५ एवं शिक्षा अधिकार नियम- २००९ इन दोनों को ध्यान में रखकर अनोखी परिकल्पना की गई है। २०११ वर्ष में पश्चिम बंगाल सरकार के नेतृत्व में गठित एक 'विशेषज्ञ समिति' को विद्यालय स्तर का पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा व पुनर्विवेचन का दायित्व दिया गया। उनके अथक प्रयत्न एवं श्रम से पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची के अनुसार 'परिवेश एवं इतिहास' पुस्तक को तैयार करना संभव हो सका है।

इस पुस्तक में विभिन्न प्रमाणों के अनुरूप चित्र एवं मानचित्र प्रत्येक अध्याय में दिया गया है। इसके माध्यम से विद्यार्थी अतीत एवं परंपरा के संबंध में स्पष्ट विचारधारा बनाने में सक्षम हो सकेंगे। दूसरी तरफ, पूरी पुस्तक में आकर्षणीय पद्धति से विभिन्न सरणियों का प्रयोग किया गया है। आशा करता हूँ कि नवीन पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों को समृद्ध करेगा।

विभिन्न शिक्षाविद्, शिक्षक-शिक्षिका, विषय-विशेषज्ञ एवं अलंकरण के लिए प्रसिद्ध कलाकर- जिनके निरंतर श्रम एवं अथक प्रयास से इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को तैयार करना संभव हो सका। उन सभी को मेरा आंतरिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता।

पश्चिम बंगाल सरकार प्राथमिक एवं उच्च प्राथमिक स्तर पर समस्त विषयों की पुस्तक छापकर छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क वितरण करती है। इस योजना के कार्यान्वयन में पश्चिम बंगाल सरकार का शिक्षा विभाग, पश्चिमबंग शिक्षा अधिकार एवं पश्चिमबंग सर्वशिक्षा मिशन ने अनेक तरह से सहायता की है। इनकी भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

'परिवेश एवं इतिहास' पुस्तक की उत्कृष्टता के लिए सबके विचार एवं परामर्श का आह्वान करते हैं।

जुलाई, २०१४
७७/२, पार्क स्ट्रीट
कोलकाता-७०००१६

कल्याणमय गांगुली
प्रशासक
पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

प्राक्कथन

पश्चिम बंगाल की माननीया मुख्यमंत्री सुश्री ममता बंद्योपाध्याय ने २०११ में विद्यालय की शिक्षा के लिए एक 'विशेषज्ञ समिति' का गठन किया। इस विशेषज्ञ समिति को यह दायित्व दिया गया कि विद्यालय स्तर के समस्त पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तक की पुन: आलोचना, पुनर्विवेचना एवं पुनर्विन्यास प्रक्रिया को संचालित करे। उस समिति की सिफारिश के अनुसार नवीन पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तक तैयार किया गया। इस पूरी प्रक्रिया में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा २००५ शिक्षा अधिकार नियम २००९ (RTE Act, 2009) इन दोनों को ध्यान में रखा गया है। इसके साथ ही समग्र परिकल्पना में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शिक्षा-दर्शन की रूपरेखा को आधार के रूप में ग्रहण किया है।

उच्च माध्यमिक स्तर की इतिहास पुस्तक का नाम 'अतीत और परंपरा' है। नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार इस पुस्तक में परिवेश और इतिहास को शामिल किया गया है। सप्तम श्रेणी के लिए इतिहास की यह पुस्तक सहज भाषा में लिखी गई है। नवीन पाठ्य-पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि इसमें राजनीति विज्ञान की प्राथमिक कुछ धारणाओं की एक अध्याय में व्याख्या की गई है। इस पुस्तक में आख्यानमूलक विवरण के माध्यम से कहानी के रूप में समय विशेष की घटनाओं को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ यह ध्यान दिया गया है कि तथ्यों के अतिरिक्त भरमार विद्यार्थी को बोझिल न करें, तो दूसरी तरफ अत्यधिक सरल करने के प्रयास में इतिहास की आवश्यक चीजें उनके सामने अस्पष्ट न रह जाये। उस विशेष स्थान और समय में समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति, जीवन-यापन का ढंग मूर्त्त रूप से उनके सामने स्पष्ट हो जाये। इतिहास की मूल धारणा के निर्माण में इस पाठ्य पुस्तक ने विशेष प्रयत्न किया है। प्रासंगिक विषय-घटना की पुन: आलोचना के माध्यम से विद्यार्थी इतिहास पर जीवंत एवं अर्थपरक ढंग से विचार करना सीखेंगे। कुछ प्रमाणित चित्रों एवं मानचित्रों का इसीलिए इस पुस्तक में समावेश किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अंत में प्रश्नावली दिया गया है। जैसे सोचकर देखो, ढूँढ़कर देखो। इसके माध्यम से अपने से तथा अपने-अपने अनुभव के आधार पर विद्यार्थी इतिहास विषय पर अनेक तरह से विचार प्रस्तुत कर सकेंगे। पुस्तक के अंत में 'सीखने की पद्धति' में विभिन्न श्रेणियों में पुस्तक के प्रयोग से संबंधित कुछ मूल्यवान प्रस्ताव दिये गये हैं। निपुर्ण चित्रकार ने विभिन्न रंग-रेखाओं से पुस्तक को आकर्षणीय बनाया है। उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करते हैं। आशा करते हैं कि नवीन दृष्टियों से निर्मित यह पाठ्यपुस्तक इतिहास जानने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी।

चयनित शिक्षाविद्, शिक्षक-शिक्षिका एवं विषय-विशेषज्ञों ने अल्प समय में इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पश्चिम बंगाल के माध्यमिक शिक्षा-व्यवस्था के विद्वत लोगों ने पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पाठ्य पुस्तक का अनुमोदन कर हमें कृतज्ञ किया है। समय-समय पर पश्चिम बंगाल सर्वशिक्षा अभियान, पश्चिम बंगाल शिक्षा अधिकार आदि ने सहायता प्रदान किया है। उन्हें धन्यवाद।

पश्चिम बंगाल के माननीय शिक्षा मंत्री डॉ. पार्थ चटर्जी ने आवश्यक विचार एवं परामर्श देकर हमें कृतज्ञ किया है। उनके प्रति हम अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते हैं।

पुस्तक की उत्कृष्टता के लिए शिक्षाप्रेमी लोगों के विचार-परामर्श हम सादर ग्रहण करेंगे।

जुलाई, २०१४
विकास भवन
पंचम तल्ला
विधाननगर, कोलकाता-७०००९१

अभीक मजूमदार
चेयरमैन
विशेषज्ञ समिति
विद्यालय शिक्षा विभाग
पश्चिम बंगाल सरकार

विशेषज्ञ समिति द्वारा परिचालित पाठ्य-पुस्तक निमार्ण पर्षद

सदस्य

प्राध्यापक अभीक मजूमदार (चेयरमैन, विशेषज्ञ समिति)

प्राध्यापक रथीन्द्रनाथ दे (सदस्य सचिव, विशेषज्ञ समिति)

परिकल्पना, तत्वावधान तथा संपादन

शिरीन मासूद (प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

पांडुलिपि निर्माण एवं परिकल्पना, तत्वावधान तथा संपादन-सहायता

उत्तरा चक्रवर्ती	सौभिक बंद्योपाध्याय	अनिर्वाण मंडल
सैयद आबिद अली	तिस्ता दास	कश्यप गनि
प्रवाल बागची	सोमदत्ता चक्रवर्ती	प्रत्यय नाथ
	परम माईती	

पुस्तक-सज्जा

आवरण तथा अलंकरण : शंख बंद्योपाध्याय

मुद्रण सहायता : कौशिक साहा, प्रदीप कुमार बसाक,
सुगत मित्र, विप्लव मंडल

विषय सूची

	विषय	पृष्ठ संख्या
१.	इतिहास की अवधारणा	१-६
२.	भारतीय राजनैतिक इतिहास की विभिन्न धाराएँ (७००-१२०० ई.)	७-२०
३.	भारतीय समाज, अर्थनीति एवं संस्कृति की विभिन्न धाराएँ (७००-१२०० इ.)	२१-४२
४.	दिल्ली सल्तनत : तुर्की-अफगान शासन	४३-६८
५.	मुगल साम्राज्य	६९-९०
६.	नगर, व्यापारी और व्यवसाय	९१-११२
७.	जीवनयात्रा और संस्कृति : सल्तनत और मुगल काल	११३-१५८
८.	मुगल साम्राज्य का संकट	१५९-१६६
९.	आज का भारत : सरकार, जनतंत्र और स्वायत्तशासन सीखने की पद्धति	१६७-१७२

प्रथम अध्याय इतिहास की अवधारणा

१.१ इतिहास की कहानी

कितनी भी पुरानी बात क्यों न हो, कहानी की तरह उसे कहा जाये तो सभी को अच्छा लगेगा। लेकिन समस्या यह है कि बहुत सी इतिहास की पुस्तकों में घटनाओं का वर्णन कहानी की तरह नहीं होता। राजाओं का सामान्य परिचय, युद्धों के साल-तारीख आदि का उल्लेख मात्र रहता है। इसलिए इतिहास पढ़ते समय कहानी पढ़ने जैसा आनंद नहीं मिल पाता। नाम एक दूसरे से घुल-मिल जाते हैं, साल-तारीख याद नहीं रहता, कौन किसके बाद सत्ता में आया- सच में, यह सब याद रखना बहुत कठिन है।

''पिता को हुआ फिर बुखार, दवा ने किया उसे दूर''- इस कथन में छः मुगल शासकों के नाम की खोज छिपी हुई है। देखो तो, इन नामों को आप खोज पाते हो या नहीं? इसका सूत्र पंचम अध्याय में छिपा हुआ है।

लेकिन कठिन होने पर भी कुछ महत्वपूर्ण नाम और साल को याद रखना जरूरी है। कारण, जिन घटनाओं का वर्णन इतिहास की पुस्तकों में मिलता है, वे आज से बहुत-बहुत साल पहले घटित हुई थी। साथ ही, सारी घटनाएँ एक दिन में या एक ही साल में घटित नहीं हुई। तब कैसे जान पायेंगे कि कौन सी घटना कब घटित हुई? इसके लिए घटनाओं के समय-काल को जानना जरूरी है। इतिहास के समय को मापते समय हमें तारीख, महीना, साल, शताब्दी, सहस्राब्दी- की जरूरत पड़ती है। ये अलग-अलग समय को मापने की गिनती है। वहाँ सेकेंड, मिनट, घंटा की गिनती की विशेष जरूरत नहीं पड़ती। इसलिए साल-तारीख को याद रखना जितना भी कठिन हो, पर इसमें उसका कोई दोष नहीं है। इतिहास की पुस्तकों में कुछ महत्वपूर्ण साल-तारीख का उल्लेख तो रहेगा ही देखो तो, आपलोग इस खेल को पिछले कितने वर्षों से अच्छी तरह खेलते आ रहे हो।

फिर भी, कठिन नाम-पता को लेकर एक चिंता तो रह ही गया। किसी के नाम के अंत में यदि 'गंगाईकोंडचोल' 'सकलोत्तरपथनाथ' जैसे उपनाम हो या किसी का इतना लंबा नाम हो जैसे इख्तियारूद्दीन मोहम्मद बख्तियार खिलजी। इस तरह के नाम और उपनाम को याद रखना बहुत कठिन है। लेकिन ये नाम और उपनाम बहुत समय पहले के लोगों का है। हो सकता है वे लोग भी इतने लंबे-लंबे नाम और उपनाम के चलते झमेले में भी पड़े हों। लेकिन इससे मुक्ति का दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं है। उस समय, इसी तरह के लंबे-लंबे नाम और उपनाम रखने का प्रचलन था। आज हम चाहे भी तो उन नामों को बदल नहीं सकते। बाबर, अकबर जैसे नाम बहुत छोटे है, इसलिए सहजता से याद रहता है।

कुछ बातें

इतिहास की सारी सामग्री एक जैसी नहीं है। पुरानी मूर्ति, पुरानी किताबें- एक ही चीज नहीं है। इसलिए इतिहास की इस सामग्री को विभिन्न भागों में विभाजित किया जाता है। जैसे-लेख, मुद्रा, स्थायत्य, मूर्तिकला, और लिखित सामग्री। पत्थर या धातुओं के पत्र पर लिखित बातों से अतीत के संदर्भ में बहुत कुछ जाना जा सकता है। इसे लेख कहते हैं। तांबे के पत्र पर लिखा हो तो उसे ताम्रपत्र कहेंगे। इसी तरह, पत्थर पर लिखा होने से वह शिलालेख कहलायेगा तथा कागज पर लिखित बातों को कहते हैं लिखित सामग्री।

यदि देखा जाये तो आपलोगों में से ही कुछ को सारे नाम और साल अच्छी तरह याद है। तो क्या केवल नाम और साल रट लेने पर वह इतिहास का जानकार भी हो जायेगा? स्पष्ट शब्दों में इसका उत्तर है- नहीं। साल-तारीख-नाम-पता याद रख लेने से ही हम इतिहास के जानकार नहीं हो सकते। तब इतिहास को जानना किसे कहते हैं? थोड़े से शब्दों में कहा जाये तो, वर्षों पहले घटित हुई विभिन्न घटनाओं तथा अधिकांश लोगों द्वारा अलग-अलग कार्य करने के कारणों और उसके परिणामों को जानने की चेष्टा करना ही इतिहास है। ऐसी बहुत सी घटनाएँ अतीत में घटित हुई हैं, जिनका प्रभाव आज भी हमारे चारों तरफ दिखाई पड़ता है। इसलिए इन कार्यों एवं घटनाओं के संबंध में हमारे विचार स्पष्ट होने चाहिए। किसी विचार धारा को निर्मित करने के लिए इतिहास पढ़ना जरूरी है।

१.२ इतिहास जानने के विभिन्न तरीकें

अतीत से संबंधित जो भी सामग्री आज उपलब्ध है, वे अतीत के बारे में जानकारी प्रदान करने में हमारी सहायता करती है। पुराने मकान, मंदिर, मस्जिद, मूर्ति, रूपया-पैसा, चित्र, पुस्तकें आदि के माध्यम से हम उस समय विशेष तथा वहाँ के लोगों के बारे में जान सकते हैं। इसलिए ये सब इतिहास की सामग्री हैं। प्राकृतिक आपदाओं के कारण तथा लोगों के हाथों में पड़कर इनमें से बहुत सी सामग्री नष्ट हो चुकी हैं। समग्र इतिहास को जानने का दूसरा तरीका भी नहीं है। इतिहासकार इन्हीं टूटे-फूटे, फटे-पुराने टुकड़ों को खोज इन्हें आपस में जोड़ने का काम करते हैं। इन्हें आगे-पीछे करके सजाते हैं। इस तरह वे अतीत का एक चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करने में सफल होते हैं। लेकिन जहाँ सामग्री के टुकड़े तक उपलब्ध नहीं होते, वहाँ कुछ रिक्तता तो रह ही जाती हैं।

टुकड़े-टुकड़े सामग्री से इतिहास की रिक्तता को भरते समय इतिहासकार को सावधान रहना पड़ता है। याद रखना पड़ता है कि वह सामग्री उस समय विशेष से मेल खाये। समय और स्थान अलग होने से बहुत से संदर्भों में कथन का अर्थ ही बदल जाता है। इतिहासकार को यह बात हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। आजकल आपलोग 'विदेशी' का अर्थ भारत से बाहर दूसरे देशों में रहने वाले लोगों से लेते हो। लेकिन सल्तनत एवं मुगल काल में 'विदेशी' का अर्थ गांव या शहर के बाहर से आने वाले किसी भी व्यक्ति के लिए होता था। इसलिए शहर से किसी अपरिचित गाँव में जाने पर ग्रामवासी उसे 'परदेशी' या 'अजनबी' समझते। इसलिए मुगल काल में लिखित किसी लेख को पढ़ते समय, उसमें 'परदेशी' शब्द का प्रयोग देख, उसका अर्थ हमेशा भारत के बाहर से आने वाले लोग के रूप में नहीं ग्रहण करना चाहिए। ठीक इसी तरह, 'देश' कहने से बहुत से लोग इसका अर्थ जन्म-

स्थान ग्रहण करते हैं। जैसे-कोई कहता है कि उसका देश बर्द्धमान है। यहाँ 'देश' का तात्पर्य वास्तव में एक ही राज्य के विभिन्न अंचलों से है। क्योंकि बर्द्धमान, भारत या पाकिस्तान की तरह देश नहीं है। वह पश्चिम बंगाल राज्य का ही एक जिला है। इस तरह, हम देखते हैं कि सल्तनत तथा मुगल काल से लेकर आज तक 'देश' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में होता रहा है। इसलिए इतिहास पढ़ते समय हमें ध्यान रखना होगा कि वहाँ किस समय विशेष तथा अंचल विशेष की बात कही जा रही है।

इस पुस्तक को पढ़कर आपलोग प्राय: हजार वर्षों के भारतीय इतिहास के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकोगे। सातवीं शताब्दी से लेकर अट्ठारहवीं शताब्दी तक के इन हजार वर्षों में बहुत कुछ परिवर्तित हुआ है। बावजूद इसके कुछ चीजें आज भी वैसी की वैसी मौजूद हैं। कोई भी परिवर्तन रातों रात नहीं होता। यहाँ उसी धारावाहिक परिवर्तन की बहुत सी बातें कही गई हैं।

कुछ बातें

हिंद, हिंदुस्तान, इण्डिया

ईसा पूर्व पांचवीं-छठवीं शताब्दी में ग्रीक इतिहासकार हेरोडोटस ने 'इण्डिया' शब्द का प्रयोग पहली बार किया। वे यहाँ कभी नहीं आये। पारसी लेखों को पढ़कर उन्होंने भारत के बारे में जानकारी प्राप्त की थी। उत्तर-पश्चिम भारत के सिंधु नदी व द्वीप के आस-पास का क्षेत्र कुछ समय के लिए पारसी साम्राज्य के अंतर्गत सम्मिलित था। उस समय इस अंचल का नाम था 'हिंदुस'। ईरानी भाषा में 'स'- का उच्चारण नहीं होता था। इसलिए 'स' परिवर्तित होकर 'ह' हो गया तथा सिंधु के आस-पास का क्षेत्र 'हिन्दुस' के नाम से जाना जाने लगा। ग्रीक भाषा में 'ह' का उच्चारण नहीं था। उसका विकल्प था 'इ'। अत: सिन्धु-हिंदुस, ग्रीक भाषा में बहुत कुछ परिवर्तित होकर 'इण्डिया' हो गया। उस समय 'इण्डिया' शब्द से सिंधु नदी व द्वीप के आस-पास के क्षेत्र का ही बोध होता था। ग्रीकों के विवरण से यह ज्ञात होता है कि परवर्ती समय में 'इण्डिया' उपमहादेश का बोधक बना। उत्तर में हिमालय और दक्षिण में समुद्र- इन दो प्रधान सीमाओं के संदर्भ में ग्रीक लेखक काफी सचेत थे। विदेशी तथ्य सूत्रों में एक अन्य नाम का भी उल्लेख मिलता है- 'हिंदुस्तान'। अरबी-फारसी भाषा में हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग बार-बार हुआ है। ईरानी शासन-काल का एक शिलालेख खुदाई में प्राप्त हुआ है, जिसका समय २६२ ई० है, इसमें भी हिंदुस्तान शब्द का प्रयोग हुआ है। दसवीं के अंतिम दशक में अज्ञात लेखक द्वारा रचित 'हूदूद अल् आलम' ग्रंथ में हिन्दुस्तान शब्द का प्रयोग समस्त भारत के लिए हुआ है।

१.३ इतिहास का गुणगान

एक पूरे दिन को घंटा, मिनट, सेकेंड में बांटना आसान है लेकिन हजारों-हजार वर्षों को बाँटने का आसान तरीका क्या है? इतिहासकार ऐसे लंबे समय को 'युग' के माध्यम से अलगाते हैं। साधारणत इतिहास को 'प्राचीन', 'मध्य' और 'आधुनिक'- तीन युगों में विभाजित किया जा सकता है। जिन हजार वर्षों की घटनाओं की चर्चा आगे की जायेगी, वह मध्ययुग ठहरता है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस तरह युगों की दीवार खड़ा कर इतिहास को बाँटा नहीं जा सकता। अचानक किसी एक दिन सुबह एक युग समाप्त तथा एक नया युग शुरू नहीं हो सकता।

तब यह कैसे समझा जाये कि कौन-सा समय किस युग के अंतर्गत आयेगा? वास्तव में मनुष्य के जीवनयापन, पढ़ाई-लिखाई, संस्कृति, शासन, युद्ध, अर्थनीति आदि- इन सबका अलग-अलग विशिष्ट पक्ष अलग-अलग समय में दिखाई पड़ता रहा है। इनमें घटित होने वाले परिवर्तन से ही युगों को बाँटने का प्रचलन रहा है। तो मध्ययुगीन भारत कैसा था? बहुत से लोगों का यह मानना है कि उस समय मनुष्य का जीवन पूरी तरह से अंधकार में डूब गया था। किसी भी क्षेत्र में कोई उन्नति नहीं हुई। लेकिन ऐसा नहीं है। टुकड़ों में उपलब्ध सामग्री को जोड़कर इतिहासकार ने उस समय के इतिहास को फिर से लिखा, जिससे यह पता चलता है कि उस समय भारत के लोगों ने अनेक क्षेत्रों में काफी उन्नति की थी। इस पुस्तक को पढ़कर आपलोग विभिन्न क्षेत्रों में हुई प्रगति के बारे में जान सकोगे।

उस समय नये-नये यंत्रों का प्रयोग बड़ी कुशलता से हो रहा था। जैसे- कुँआ से पानी खींचना, ताँत से बुनी वस्तुएँ तथा युद्ध संबंधी उपकरण। विज्ञान के प्रभाव से बहुत कुछ बदल गया था। इतिहास पढ़कर हम खाने-पीने की चीजों के बारे में भी ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इसका सबसे मजेदार उदाहरण है रसोई में आलू का प्रयोग। भारत में आलू खाने की प्रथा की शुरुआत पुर्त्तगालियों ने की।

देशी शासन और राजनीति के क्षेत्र में भी बहुत-सी नई बातें जानने को मिलती है। केवल राज्य-विस्तार ही नहीं, जन-कल्याण के बारे में भी तत्कालीन शासकों को विचार करना पड़ा था। कभी किसी राजा का हुकूमत डगमगाने लगा, तो कभी सारे अधिकार एक ही शासक के हाथों में आ गया। इस तरह के उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। अर्थ-व्यवस्था एक तरफ कृषि तथा दूसरी तरफ वाणिज्य-व्यवसाय पर टिका हुआ था। जंगलों को काटकर खेती करने के उदाहरण भी मिल जाते हैं। इस समय नये-नये शहरों का भी निर्माण हुआ।

कुछ बातें

रातों-रात इतिहास का युग नहीं बदलता। जैसे-दोपहर की बातें। वह न तो सुबह की बातें हैं, न शाम की। ठीक इसी तरह, भारत के इतिहास में एक महत्वपूर्ण समय था, जब प्राचीन युग धीरे-धीरे समाप्त हो रहा था और मध्य युग पूरी तरह शुरू नहीं हुआ था। इतिहासकार इस समय को आदि मध्य युग कहकर पुकारते हैं।

उस समय धर्म के क्षेत्र में भी कुछ नवीन खोजें हुई। यह कहा गया कि ईश्वर को कर्मकांड या आडम्बर से नहीं, भक्ति के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। धर्म-प्रचार का माध्यम जनभाषा बनी, जिसके परिणामस्वरूप भारत के विभिन्न क्षेत्रों में क्षेत्रीय भाषा और साहित्य का विकास हुआ।

कला हो या साहित्य- इनमें गरीब सामान्यजन की चर्चा बहुत अधिक नहीं मिलती। उसमें अधिकांशत: शासकों का ही गुणगान भरा है। कला और साहित्य के साथ शासकों का नाम जुड़ा रहता था। तभी तो यह कहा जाता है कि चोल राजाओं ने मंदिर का निर्माण किया या ताजमहल का निर्माण सम्राट शाहजहाँ ने किया। साधारण कारीगर तथा कलाकार, जिन्होंने मंदिर एवं ताजमहल के निर्माण में अपना योगदान दिया, उनमें से अधिकांश के नामों से हम परिचित नहीं हैं।

सोचकर बताओ कि इतिहास में बहुत समय तक सामान्यजन या कलाकारों के नामों का उल्लेख कहीं भी क्यों नहीं मिलता।

१.४ इतिहास के जासूस

हर समय इतिहास की पुस्तक पढ़ना भले ही अच्छा न लगे, जासूसी कहानियाँ पढ़ना आपको निश्चय ही अच्छा लगता है। वास्तव में इतिहासकार भी एक तरह का जासूस ही है। कहानी में जासूस टुकड़े-टुकड़े में बिखरे सूत्रों को खोज निकालता है। इसके बाद तर्क-द्वारा उन सूत्रों के सही-गलत होने पर विचार करता है। अंत में घटित हुई घटनाओं के सच-झूठ को पकड़ लेता है। ठीक इसी तरह इतिहासकार भी टुकड़े-टुकड़े में बिखरे सूत्रों को खोजता है। उन पर तर्कसहित विचार करता है। फिर उन सूत्रों को सजाकर अतीत में घटित हुई घटना को हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जहाँ सूत्रों के टुकड़े नहीं जुड़ते, वहाँ रिक्तता रह जाती है।

साल भर इस पुस्तक को पढ़ते समय आपलोग भी इतिहासकार या जासूस बन जाओ। सूत्रों की छानबीन करो। बहुत-से स्थानों पर जो कमी है, उन्हें तर्क द्वारा भरने की कोशिश करो। पता लगाओ कि कोई नया सूत्र है या नहीं। तब देखोगे कि इतिहास पढ़ते समय आपलोग भी इतिहास के जासूस बन गये हो। तब इतिहास पढ़ने में और अधिक आनंद आयेगा।

आपका पन्ना

इतिहास का जासूस बनने के लिए आपके सामने आठ अध्याय है। साल भर इन आठ अध्यायों को पढ़ते समय जो भी सूत्र आपके हाथ लगे, उसे इस पन्ने पर लिखो ....

द्वितीय अध्याय — भारतीय राजनैतिक इतिहास की विभिन्न धाराएँ (७००-१२००)

हमलोग भारत के नागरिक हैं। भारत के जिस भाग में हमलोग रहते हैं, उसका नाम है पश्चिम बंगाल। यह नाम बहुत अधिक पुराना नहीं है। इस अध्याय में हमलोग पढ़ेंगे कि बहुत समय पहले यह स्थान किस नाम से जाना जाता था। इसकी भौगोलिक सीमा क्या थी, इसके कौन-कौन से भाग हैं, किन लोगों ने यहाँ शासन किया, यहाँ के लोगों के जीवनयापन का ढंग कैसा था इत्यादि। इसे जानने के लिए हमें बहुत समय पीछे की तरफ लौटना होगा। उस समय इस क्षेत्र के लोगों के जीवनयापन का ढंग आज की तुलना में बहुत अलग था।

२.१ प्राचीन (बांग्ला) बंगाल

सबसे पहले हमलोग प्राचीन बंगाल के प्रमुख-प्रमुख भौगोलिक भागों के बारे में जानेंगे। यहाँ यह ध्यान रखना होगा कि यह सब एक-डेढ़ हजार वर्षों से भी पहले की बात है। इस भौगलिक भागों की सीमा भी हर समय एक जैसी नहीं रही। हमारे राज्य पश्चिम बंगाल के विभिन्न क्षेत्र अलग-अलग समय में अलग-अलग भौगोलिक विभागों के अंतर्गत सम्मिलित था।

कुछ बातें

बंग, बंगाल, बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल

ऋग्वेद के तैतरीय आरण्यक में बंग नाम का पहली बार उल्लेख मिलता है। प्रचीन बांग्ला में बंग कहने से जिस अंचल का बोध होता था, वह भौगोलिक दृष्टि से कोई बड़ा क्षेत्र नहीं था। प्राचीन बांग्ला के जनपदों में बंग का छोटा-सा हिस्सा था। महाभारत में बंग, पुन्ड्र, सह्म और ताम्रलिप्त इत्यादि का एक अलग राज्य के रूप में उल्लेख किया गया है। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में भी इसका उल्लेख मिलता है। कालिदास के 'रघुवंशम्' काव्य में भी बंग और सुह्म इन दो नामों का उल्लेख है।

तेरहवीं शताब्दी में इतिहासकार मिनहास-उस-सिराज के लेंखों में भी बंग राज्य की बातें आयी हैं।मुगलकाल के इतिहासकार अबुल फ़जल के 'आइन-ए-अकबरी' ग्रंथ में इस अंचल को **सुबा बांग्ला** कहकर उल्लेखित किया गया है। सुबा का अर्थ है- प्रदेश या राज्य।

सोलहवीं, सत्रहवीं और अट्ठारहवी शताब्दी में यूरोपीय पर्यटक और व्यापारी यहाँ आये थे। उन्होंने इस देश को नाम दिया बांग्ला। आजादी से पहले यह विशाल भूखंड बांग्ला या बांग्लादेश या बेंगॉल के नाम से जाना जाता था।

१९४७ इ० में देश-विभाजन के समय बंगाल के पश्चिमी हिस्से का नाम पड़ा पश्चिमबंगाल। पश्चिमबंगाल स्वाधीन भारत का एक राज्य है। पूर्व बंगाल नवीन देश पाकिस्तान में सम्मिलित हो गया। उसका नाम पड़ा पूर्वी पाकिस्तान। १९७१ ई० में मुक्ति संग्राम के बाद पूर्व पाकिस्तान स्वाधीन देश बना। तब इसका नया नामकरण हुआ बांग्लादेश।

अभी वर्तमान में पश्चिम बंगाल के अंतर्गत कितने जिले हैं ?किस जिला में आपका घर है ? वह जिला आपके अनुसार २.१ मानचित्र में कहाँ हो सकता है ?

प्राचीन बंगाल की सीमायें प्रमुख रूप में तीन नदियों से घिरी हुई थी। ये तीन नदियाँ थी- भागीरथी, पद्मा और मेघना (२.१ मानचित्र देखो)। बंगाल का एक-एक प्रदेश बहुत समय तक स्वाधीन था। तो कुछ क्षेत्र दूसरे किसी क्षेत्र के अंतर्गत सम्मिलित हो गया था। जब किसी प्रदेश का शासक अपने राज्य का विस्तार करते तो उस क्षेत्र की सीमा भी बदल जाया करती।

प्राचीन बंगाल का प्रमुख क्षेत्र था- पूण्ड्रवर्धन, वरेंद्र, बंग, बंगाल, राढ़, सुह्म, गौड़, समतट तथा हरिकेल। साधारणत: किसी क्षेत्र के नागरिक के नाम के अनुसार उस स्थान का नाम होता। बंग, गौड़, पुण्ड्र इत्यादि नाम एक-एक जनसमूह का नाम है। वे जिस क्षेत्र में रहते, उस क्षेत्र का नाम उनके नाम के अनुसार होता।

पुंड्रवर्धन- प्राचीन बंगाल के क्षेत्रों में सबसे वृहत्तम था पुंड्रवर्धन। इस क्षेत्र में पश्चिमबंगाल एवं बांग्लादेश के दिनाजपुर, बगूड़ा, राजशाही तथा पावना आदि सम्मिलित था। किसी समय श्रीहट्ट (सिलेट) भी इसमें सम्मिलित था। गुप्तकाल में पुंड्रवर्धन एक भुक्ति या शासित-क्षेत्र था।

वरेंद्र- भागीरथी तथा करतोया नदी के मध्य का क्षेत्र वरेंद्र नाम से जाना जाता था।

बंग- प्राचीन काल में पद्मा तथा भागीरथी नदी के मध्य का त्रिभुज के आकार का क्षेत्र तथा द्वीप क्षेत्र को बंग कहा जाता था। संभवत: भागीरथी का पश्चिमी क्षेत्र भी इसमें शामिल था। परवर्ती समय में भागीरथी के पश्चिमी तरफ राढ़ एवं सुह्म नामक दो अलग-अलग क्षेत्र की उपस्थिति के कारण बंग की सीमा भी बदल गयी थी। ग्यारहवीं- बारहवीं शताब्दी में बंग कहने से वर्तमान के बांग्लादेश का ढाका- विक्रमपुर, फरीदपुर व वरीशाल क्षेत्र जाना जाता था।

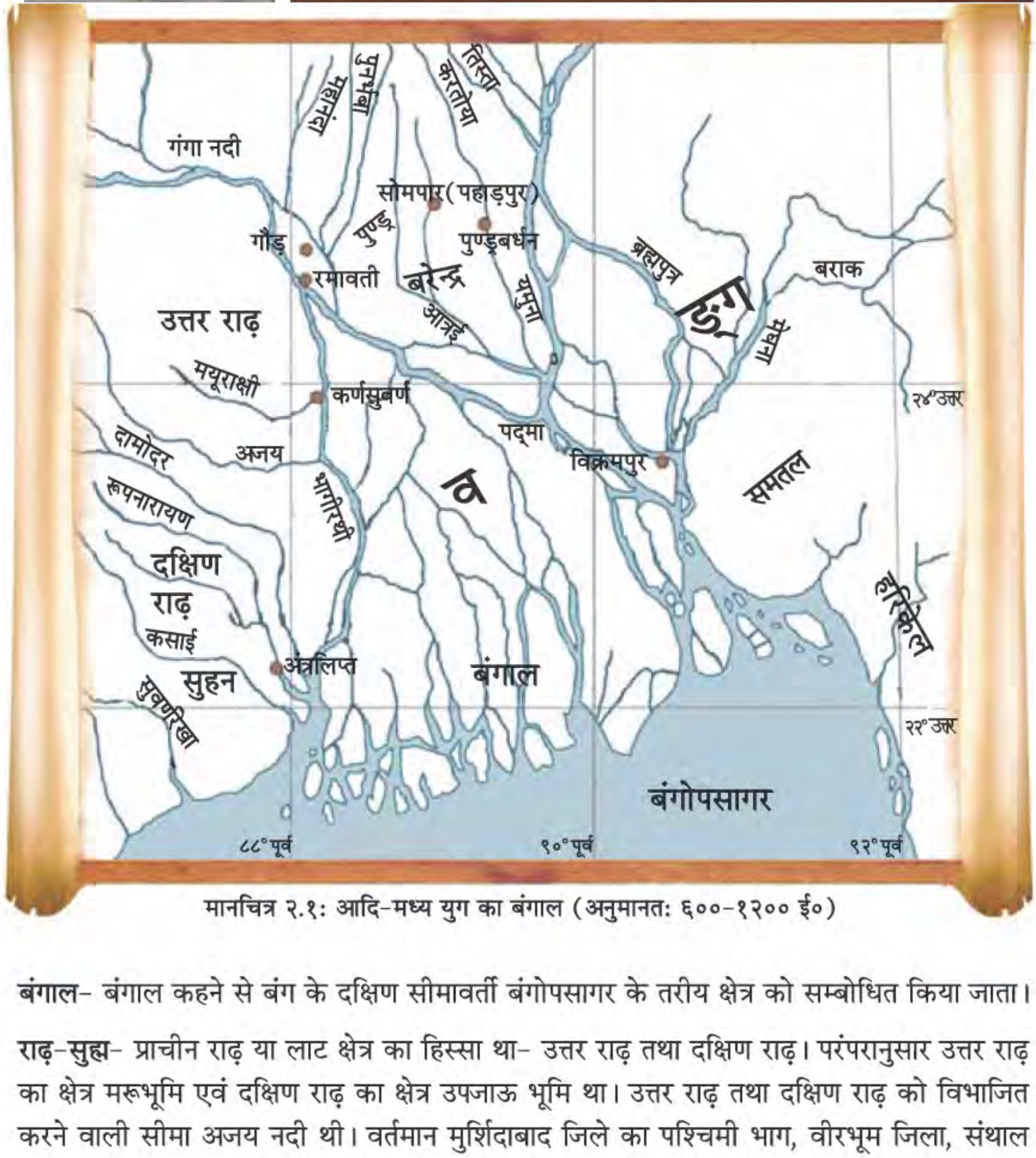

मानचित्र २.१: आदि-मध्य युग का बंगाल (अनुमानतः ६००-१२०० ई०)

बंगाल- बंगाल कहने से बंग के दक्षिण सीमावर्ती बंगोपसागर के तरीय क्षेत्र को सम्बोधित किया जाता।

राढ़-सुह्म- प्राचीन राढ़ या लाट क्षेत्र का हिस्सा था- उत्तर राढ़ तथा दक्षिण राढ़। परंपरानुसार उत्तर राढ़ का क्षेत्र मरूभूमि एवं दक्षिण राढ़ का क्षेत्र उपजाऊ भूमि था। उत्तर राढ़ तथा दक्षिण राढ़ को विभाजित करने वाली सीमा अजय नदी थी। वर्तमान मुर्शिदाबाद जिले का पश्चिमी भाग, वीरभूम जिला, संथाल परगना का एक अंश एवं वर्धमान जिला के कटवा जिला का (एक अंश/ हिस्सा) उत्तरी भाग उत्तर राढ़ क्षेत्र के अंतर्गत सम्मिलित था। दक्षिण राढ़ कहने से वर्तमान हावड़ा, हुगली एवं वर्धमान जिला का बाकी हिस्सा तथा अजय और दामोदर नदी का मध्यवर्ती विस्तृत क्षेत्र समझा जाता था। दक्षिण राढ़ बंगोपसागर का निकटवर्ती क्षेत्र था। महाभारत की कहानियों एवं कालिदास के काव्य में वर्णित भागीरथी एवं कंसाई (कंसावती) नदी के मध्य से समुद्र तक का विशाल क्षेत्र इसके अंतर्गत सम्मिलित था।

गौड़– प्राचीन एवं मध्ययुग में बंगाल का गौड़ एक महत्वपूर्ण क्षेत्र था। गौड़ शब्द (कहने) से एक जनजाति को भी सम्बोधित किया जाता है। वराहमिहिर (६०० ई०) की सूचना के अनुसार मुर्शिदाबाद, वीरभूम एवं बर्द्धमान जिला के पश्चिमी भाग को लेकर गौड़ प्रदेश का निर्माण हुआ था।

७०० ई० में शशांक के शासन-काल में गौड़ प्रदेश की सीमा विस्तृत हो गई थी। शशांक की राजधानी कर्णसुवर्ण थी। भागीरथी के पश्चिम तरफ का वर्तमान मुर्शिदाबाद ही समस्त गौड़ प्रदेश का प्रमुख क्षेत्र था। शशांक के शासनकाल में पुंड्रवर्धन (उत्तरबंग) से उड़ीसा के तटीय क्षेत्र तक का प्रदेश गौड़ प्रदेश के अंतर्गत सम्मिलित था। ८००-९०० ई० में गौड़ प्रदेश कहने से समग्र पाल साम्राज्य को भी सम्बोधित किया जाता।

राढ़ कहने से वर्तमान पश्चिम बंगाल के किस क्षेत्र को सम्बोधित किया जाता है?

समतट– मेघना नदी का पूर्वी क्षेत्र प्राचीन समतट कहलाता था। वर्तमान में बांग्लादेश का कुमिल्ला-नोआखाली क्षेत्र की समतल भूमि को शामिल कर लेने के कारण प्राचीन समतट क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। मेघना नदी बांग्लादेश के दूसरे क्षेत्रों से समतट को अलग करती थी। इसलिए प्राचीन इतिहास में समतट को बंगाल के सीमावर्ती क्षेत्र के रूप में सम्बोधित किया जाता था।

हरिकेल– समतट के दक्षिण- पूर्व में वर्तमान बांग्लादेश के चट्टग्राम का तटीय क्षेत्र प्राचीन काल हरिकेल के नाम से जाना जाता था।

अब हमलोग बंगाल के प्रथम उल्लेखनीय शासक शशांक की चर्चा करेंगे।

२.२ शशांक

शशांक गुप्त सम्राट के एक महासामंत थे। ६०६-६०७ ई० से कुछ समय पहले वे गौड़ के शासक थे। शशांक के शासन-काल के ६०-७० वर्ष पहले से ही गौड़ राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण बन गया था। शशांक के शासनकाल में गौड़ की शक्ति और बढ़ी। ६३७-'३८ ई० में मरने के पहले तक शशांक गौड़ के स्वाधीन शासक रहे। उनकी राजधानी थी कर्णसुवर्ण।

शशांक के शासनकाल में उत्तर भारत की विभिन्न क्षेत्रीय शक्ति (मालवा, कन्नौज, स्थानेश्वर या थानेश्वर, कामरूप, गौड़ जैसे) अपने-अपने स्वार्थ के लिए पारस्परिक द्वेष या मैत्री का संपर्क बनाये रखे पर शशांक उस संघर्ष का हिस्सा नहीं थे। इस तरह उत्तर पश्चिम वाराणसी तक उसका राज्य व्याप्त हो गया था। शशांक ने समग्र गौड़ प्रदेश, मगध, बौद्धगया क्षेत्र एवं उड़ीसा का एक हिस्सा अपने अधिकार में कर लिया था। उत्तर भारत के शक्तिशाली राज्यों के साथ युद्ध करके शशांक ने गौड़ देश के सम्मान की वृद्धि की थी। यह घटना से उनकी विशेष योग्यता का परिचय मिलता है।

कुछ बातें

कर्णसुवर्ण : प्राचीन बंगाल का शहर

पश्चिम बंगाल के मुर्शिदाबाद जिला के दो (वर्तमान नाम कर्णसुवर्ण) रेलवे-स्टेशनों के निकट राजबाड़ी की (जमीन) प्राचीन लाल मिट्टी (लालमाटी) बौद्धविहार के ध्वंसावशेषों के रूप में पाया गया। चीनी बौद्ध यात्री सुयांग जांग के विवरणों में इसका उल्लेख है। इसी के निकट उस समय के गौड़ प्रदेश की राजधानी कर्णसुवर्ण अवस्थित थी। चीनी भाषा में इस बौद्धविहार का नाम था लो-टो-मो-चिह्। ह्वेनसांग ताम्रलिप्त (आधुनिक नाम तमलुक) से यहाँ आये थे। स्थानीय तौर पर कर्णसुवर्ण राजा कर्ण के महल के नाम से जाना जाता है।

ह्वेनसांग ने लिखा है कि यह देश जनसंख्या बहुल क्षेत्र है। एवं यहाँ के लोग काफी समृद्ध थे। यहाँ की भूमि नीची एवं आर्द्र है जिससे यहाँ से नियमित खेती-बारी होती थी। प्रचुर फल-फूल मिलता था, जलवायु समशीतोष्ण था एवं यहाँ के लोगों का चरित्र अच्छा था तथा वे लोग शिक्षा-दीक्षा के समर्थक थे। कर्णसुवर्ण में बौद्ध एवं शैव दोनों सम्प्रदाय के लोग निवास करते थे।

कर्णसुवर्ण एक महत्वपूर्ण वाणिज्यिक एवं प्रशासनिक केंद्र था। आसपास के गांवों से यहाँ के नागरिकों के लिए दैनिक आवश्यकता की वस्तुएँ आतीं। शशांक के शासनकाल से बहुत पहले सम्भवतः इसी क्षेत्र के साथ दक्षिण-पूर्व एशिया का व्यापारिक संबंध था। लाल मिट्टी से बड़े व्यापारी जहाज लेकर दक्षिण-पूर्व एशिया के मालव क्षेत्र में व्यवसाय के लिए गये थे,ऐसा उदाहरण भी मिलता है। इस्से कर्णसुवर्ण की वाणिज्यिक समृद्धि का पता चलता है।

कर्णसुवर्ण की राजनीति में बारंबार फेरबदल हुआ है। शशांक की मृत्यु के पश्चात यह शहर कुछ समय के लिए कामरूप के राजा भास्करवर्मन के हाथ में चला गया था। इसके बाद कुछ समय तक यह जयनाग की राजधानी रही। फिर ७०० के बाद इस शहर के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। पाल और सेन युग के ऐतिहासिक सामग्री में इसका कहीं कोई उल्लेख नहीं है।

चित्र : २.१ लालमिट्टी बौद्धविहार का ध्वंसावशेष, कर्णसुवर्ण, पश्चिम बंगाल

शशांक के राजनैतिक जीवन की एक महत्वपूर्ण घटना है स्थानीश्वर के पुष्यभूति वंश के शासक हर्षवर्द्धन के साथ युद्ध। सकलोत्तरपथनाथ की उपाधि धारण करने वाले हर्षवर्द्धन शशांक को पराजित नहीं कर पाये थे।

धार्मिक दृष्टि से शशांक शैव या शिव के उपासक थे। आर्यमंजु श्रीमूलकल्प नामक बौद्ध ग्रंथ एवं ह्वेनसांग का यात्रा वृतांत में उसे 'बौद्ध-विरोधी' कहा गया है। शशांक पर यह आरोप लगाया जाता है कि उन्होंने बौद्ध भिक्षुओं की हत्या की थी एवं बौद्धों के पवित्र धार्मिक स्मारक को ध्वस्त किया था। हर्षवर्द्धन के राजकवि वाणभट्ट की रचना 'हर्षचरित' में भी शशांक की निंदा की गई है।

दूसरी तरफ शशांक के शासन-काल के कुछ वर्षों बाद ह्वेनसांग कर्णसुवर्ण शहर के निकट लालमिट्टी से बौद्धविहार की स्मृद्धि को रेखांकित किया। शशांक की मृत्यु के पचास वर्ष बाद चीनी यात्री इनसिंग की दृष्टि भी बंगाल में बौद्ध धर्म की उन्नति पर पड़ गई। शशांक बिना किसी कारणवश तो बौद्ध विद्रोही नहीं हो सकते। कहा जाता है कि शशांक के प्रति सभी पूरी तरह से द्वेष मुक्त नहीं थे। इसीलिए शशांक के संबंध में उनके विचार कुछ अतिरंजित था, ऐसा कह सकते हैं।

शशांक के शासनकाल में गौड़ में जो व्यवस्था लागू की गई, उसे गौड़तंत्र कहा जाता है। इस व्यवस्था में राज्य के लिए एक निर्दिष्ट शासन प्रणाली का निर्माण किया गया। पहले जो गांव के स्थानीय लोगों का काम था, शशांक के समय उस काम में प्रशासन ने हस्तक्षेप करना शुरू किया। अर्थात इनके शासनकाल में गौड़ राज्य में केंद्रीय रूप से शासन का संचालन होता।

शशांक के शासनकाल में सोने का सिक्का प्रचलित था (२.२ चित्र देखो) लेकिन इसका कोई निश्चित पैमाना नहीं था। इसीलिए नकली सोने का सिक्का भी दिखाई देता है। चांदी का सिक्का नहीं था। व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में इस युग में संभवत: मंदी दिखाई पड़ता है। समाज में जमीन की आवश्यकता बढ़ती जाती है। अर्थव्यवस्था बाद में कृषि पर निर्भर हो जाती है। व्यवसाय-वाणिज्य का महत्व घटने पर नगरों का महत्व भी घटना शुरू हो गया। समाज में महत्वपूर्ण व्यक्ति या स्थानीय प्रधान का महत्व बढ़ने लगा। सेठ, महाजन तथा व्यापारी का महत्व एवं शक्ति पिछले युग की तुलना में कम गई थी। स्थानीय प्रधान ही इस युग में सेठ-महाजनों के समान शक्तिशाली हो गये थे।

इस युग में बंग एवं समतट के सभी शासक प्राय: ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे। विष्णु, कृष्ण एवं शिव की पूजा की प्रथा प्रचलित थी। ६०० एवं ७०० ई० में बहुत समय तक बौद्ध धर्म बंगाल के राजाओं का समर्थन नहीं पा सका। परवर्ती

कुछ बातें

(गौड़वह)

कन्नौज के शासक यशोवर्मा या यशोवर्मन के राजकवि वाक्‌पतिराज ७२५-'३० ई० तक प्राकृत भाषा में 'गौड़वहो' काव्य की रचना की थी। यशोवर्मन द्वारा मगध के शासक को पराजित करने के बाद कवि ने इस काव्य की रचना की थी। ऐसा लगता है कि मगध का शासक कहने से गौड़ का शासक ही जाना जाता है।

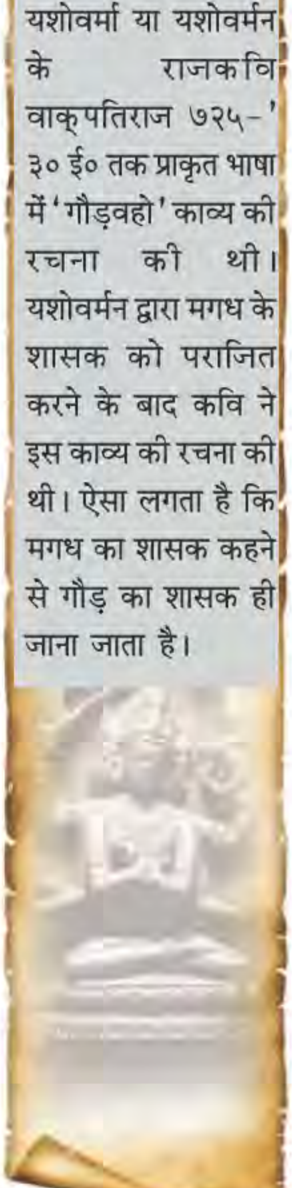

चित्र : २.२ शशांक का सिक्का

इस सिक्के में तुम अपने किसी परिचित पशु का चित्र देख पा रहे हो?

समय में (८००-९०० ई० के पाल शासन-काल में) बौद्ध धर्म को पुनः राजाओं का समर्थन मिला।

शशांक कोई स्थायी राजवंश का निर्माण नहीं कर पाये। परिणामस्वरूप उनकी मृत्यु के पश्चात गौड़ की शक्ति नष्ट हो गई। बंगाल में बहुत-सी विशृंखलता दिखाई दी। शशांक की मृत्यु के दस वर्ष बाद हर्षवर्द्धन की भी मृत्यु हो जाती है। बंगाल के विभिन्न भागों को पहले कामरूप के राजा एवं बाद में नाग संप्रदाय के जयनाग तथा तिब्बत के शासक अपने अधिकार में कर लेते हैं। ८०० ई० में कन्नौज एवं कश्मीर के शासकों ने बंगाल पर आक्रमण किया। बंगाल के इतिहास में इस विशृंखल समय को मत्स्यन्याय का युग कहा जाता है।

कुछ बातें

मत्स्यन्याय

मत्स्यन्याय का अर्थ देश की अराजकता या स्थायी राजा के अभाव से है। तालाब की बड़ी मछली जिस तरह छोटी मछली को खा जाती है, उसी तरह अराजकता के समय शक्तिशाली लोग दुर्बल लोग पर अत्याचार करते हैं।

शशांक की मृत्यु के पश्चात ७०० ई० के मध्यभाग से ८०० ई० के मध्यभाग तक का एक सौ वर्ष बंगाल के इतिहास में एक तरह से परिवर्तन का युग था। इस समय सभी क्षत्रिय, संभ्रान्त (धनी) लोग, ब्राह्मण एवं व्यापारी- अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार अपने-अपने क्षेत्र में शासन करते। बंगाल में कोई केंद्रीय शासक नहीं था।

वर्षों तक ऐसी ही अवस्था रही। वर्षों तक ऐसा ही चलने के बाद बंगाल के प्रभावशाली लोगों ने मिलकर ८०० ई० के मध्यभाग में गोपाल नामक एक व्यक्ति को निर्वाचित करके राजा बनाते है (अनुमान्य: ७५० ई०)। इसी समय से बंगाल में पाल वंश का शासन शुरू होता है।

२.३ बंगाल के पाल शासकों का शासन-काल : ८०० ई० से ११०० ई० की सूचना पर्यन्त

पाल शासकों का जन्म-स्थल संभवत: वरेन्द्र क्षेत्र था। पाल शासन का प्रथम एक सौ वर्ष (८०० ई० के मध्यभाग से ९०० ई० का मध्यभाग) उनके शक्ति (राज्य) विस्तार का समय था। इसके बाद प्राय: एक सौ तीस वर्षों तक (९०० ई० के मध्यभाग से १००० ई० के मध्यभाग) पाल शासकों की शक्ति धीरे-धीरे घटती रही। पुन: एक हजार ई० के अंतिम समय में पाल की शक्ति में काफी वृद्धि हुई।

पाल वंश के प्रतिष्ठापक गोपाल (अनुमानत: ७५०-७७८ ई०) थे। उन्होंने बंगाल के अधिकांश क्षेत्रों को अपने शासन के प्रभाव में लाये। गोपाल के उत्तराधीकारी धर्मपाल (अनुमानत: ७७८-८०६ ई०) के समय उत्तर भारत के कन्नौज को केंद्र करके जो त्रिशक्ति संघर्ष चला था, उसमें उन्होंने हिस्सा लिया था। धर्मपाल का पुत्र देवपाल ने (अनुमानत: ८०६-८४५ ई०) उत्तर एवं दक्षिण भारत के दूसरे राज्यों की तरफ साम्राज्य विस्तार करने का प्रयास किया था। उनके शासनकाल में उत्तर में हिमालय के निचले क्षेत्रों से दक्षिण में अधिक नहीं तो विन्ध्य पर्वत तक एवं उत्तर-पश्चिम में कन्नौज देश से पूर्व में प्राग्ज्योतिषपुर तक पाल साम्राज्य फैल गया।

देवपाल के बाद पाल शासकों को शक्ति घटने लगी। इसका कारण था उनका आपसी वैमनस्य। इसके अतिरिमत, दक्षिण प्रांत में राष्ट्रकूट, पश्चिम भारत के प्रतिहार एवं उड़ीसा के शासकों ने ९०० ई० में बंगाल एवं बिहार के अनेक क्षेत्रों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। बंगाल में पालों की स्थिति कमजोर पड़ने लगी। उनका राज्य मगध क्षेत्र में सम्मिलित हो गया। पुन: शासक महीपाल प्रथम के समय में (अनुमानत: ९७७-१०२७ ई०) पाल शासन का पूर्व गौरव लौटाने का प्रयास किया गया।

ग्यारह सौ ई० के अन्तिम समय में रामपाल शासक बनते हैं (अनुमानत: १०२७-११२६ ई०) कैवर्त विद्रोह के कारण वरेंद्र क्षेत्र पालों के हाथ से निकल जाता है। रामपाल उसका उद्धार करने में सफल नहीं हो पाते। उन्होंने पालों की शक्ति को बनाये रखने का कुछ हद तक प्रयत्न अवश्य किया। रामपाल की मृत्यु के पचास वर्षों के मध्य ही बंगाल में पाल राजत्व का कार्यकाल समाप्त हो जाता है।

पाल शासन काल में शासनव्यवस्था में सामन्तों की उपस्थिति का पता चलता है। ये राजन, सामंत, महासामंत इत्यादि नाम से जाने जाते थे। कैवर्त विद्रोह के समय ये लोग विशेष रूप से सक्रिय थे।

कुछ बातें

पाल शासकों का समय

कुछ बर्ष पहले मालदह जिला के हबीबपुर ब्लॉक के जगज्जीवनपुर में पाल युगों के एक बौद्धविहार की खोज की गई। वहाँ प्राप्त तांबे के लेख से यह पता चलता है कि देवपाल के बाद उसका बड़ा पुत्र महेंद्रपाल शासक बना (८४५-'६० ई०)। पहले यह कहा जाता था कि महेंन्द्रपाल पश्चिम भारत के प्रतिहार वंश के शासक थे। महेंन्द्रपाल के संबंध में यह बात जानने के पश्चात के परवर्ती पाल राजाओं के शासन-काल के समय के संबंध में हमारी धारणा बदल गई है।

कुछ बातें

कैवर्त विद्रोह

पाल शासन के ११०० ई० उत्तरार्द्ध में बंगाल में कैवर्त विद्रोह हुआ था। कैवर्त लोग संभवतः केवट या मछुआरा थे। उस समय बंगाल के उत्तरी हिस्से में कैवर्त लोगों का काफी प्रभाव था। संध्याकर नंदी के 'रामचरित' काव्य में कैवर्त विद्रोह का वर्णन है। इस विद्रोह में तीन नेता थे- दिव्य (दिब्बोक), रूदोक एवं भीम। महीपाल द्वितीय के शासनकाल में (अनुमानतः १०७०-'७१ ई०) दिव्य पाल राज्य के एक कर्मचारी थे। पाल शासकों की दुर्बलता का लाभ उठाकर उसने विद्रोह किया। महीपाल विद्रोह का दमन करते समय आहत होते हैं। जिससे दिव्य वरेंद्र पर अधिकार कर वहाँ के शासक बन जाता है। इस विद्रोह ने कितना बड़ा रूप धारण किया या दिव्य का कितने सामंतों ने साथ दिया,इसके बारे में विस्तृत जानकारी नहीं है। महीपाल का छोटा भाई रामपाल ने दिव्य का दमन कर वरेंद्र का उद्धार करने की कोशिश की थी लेकिन वे अपने प्रयास में सफल नहीं हुए। कैवर्त शासक भीम भी लोकप्रिय शासक थे। इस समय पाल राजाओं का शासन उत्तर बिहार एवं उत्तर पश्चिम बंगाल में सम्मिलित हो गया था। रामपाल बंगाल एवं बिहार के (विभिन्न) सामंतों की सहायता से भीम को पराजित कर उसकी हत्या कर देते हैं। इसके बाद वे वरेंद्र के साथ बंगाल के कामरूप एवं उड़ीसा के एक हिस्सा पर पाल शासन स्थापित करते हैं। यह विद्रोह पाल शासन काल के अंतिम समय में केंद्रीय शक्ति की दुर्बलता को स्पष्ट कर देती है। कैवर्त विद्रोह का घटना 'रामचरित' काव्य के माध्यम से स्पष्ट होता है। इस बारे में हमलोग बाद के अध्याय में पढ़ेंगे।

२.४ विभिन्न क्षेत्रीय शक्ति का उत्थान

अब तक हमलोग बंगाल के बारे में पढ़े। बंगाल के बाहर सातवीं एवं आठवीं शताब्दी में उत्तर एवं दक्षिण भारत में कुछ नवीन राजवंश एवं राजत्व का उत्थान हुआ था। ये नवीन राजवंश स्थानीय शक्तिशाली व्यक्तियों की उपस्थिति को स्वीकार कर लिये थे। बड़े-बड़े जमींदार तथा सेनापतियों की बहुत से क्षेत्रों में सामंत, महासामंत तता महामंडलेश्वर इत्यादि उपाधि प्रदान किया जाता। उसके बदले ये लोग राजा तथा उच्च अधिकारी को मालगुजारी तथा उपहार भेंट करते। इतना ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर राजा के बुलावे पर सेना सहित युद्ध में भाग लेते। पुनः कभी-कभी इनमें से ही कोई राजा की दुर्बलता का लाभ उठाकर स्वाधीन होकर अपने क्षेत्र में

शासन करना शुरू कर देते। जैसे- दक्षिण प्रांत में राष्ट्रकूट लोग कर्नाटक के चालुक्य के अधीन थे। आठवीं शताब्दी के मध्य में एक राष्ट्रकूट नेता दंतिदुर्ग चालुक्य शासक को गद्दी से उतारकर स्वयं स्वाधीन शासक के रूप में गद्दी पर बैठते हैं। बहुत समय सामरिक प्रभुत्व के अधिकारी लोग पारिवारिक लोगों के सहयोग से नवीन राज्य की स्थापना करने का प्रयास करते। इस तरह के कुछ राजवंशों के बारे में यहाँ हमलोग जानेंगे।

पहले उत्तर भारत से शुरू करते हैं। बंगाल, बिहार एवं झारखंड के विस्तृत क्षेत्र पर पाल शासक शासन करते। इनके बारे में हम पहले पढ़ चुके हैं। दूसरी शक्ति थी गुर्जर प्रतिहार। ये राजस्थान और गुजरात के विस्तृत क्षेत्र पर शासन करते। इनमें राजा भोज (८३६-'८५ ई०) सबसे अधिक शक्तिशाली थे। इन्होंने कन्नौज पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। परवर्ती समय में बहुत से युद्धों के पश्चात प्रतिहार लोग दुर्बल पड़ जाते हैं।

हर्षवर्द्धन के समय से ही कन्नौज उत्तरी मार्ग के स्थान की दृष्टि से महत्वपूर्ण बन गया था। यह माना जाता था कि जिसका कन्नौज पर नियंत्रण रहेगा वही गंगा के तराई क्षेत्रों को अपने अधिकार में रख पायेगा। नदी आधारित वाणिज्य एवं खनिज पदार्थों से समृद्ध होने के कारण यह अंचल आर्थिक दृष्टि से लाभजनक था। कन्नौज को अंत तक कौन अपने अधिकार में रख पायेगा, यह लेकर आठवीं शताब्दी से पाल, गुर्जर, प्रतिहार एवं राष्ट्रकूट वंशों के मध्य लगातार युद्ध होता रहा। इसी को त्रि-शक्ति संघर्ष कहा जाता है। इस समय पाल शसकों की शक्ति घट जाने के कारण सेन वंश का शासन शुरू हुआ।

२.५ बंगाल में सेन शासकों का शासन काल

फिर लौट आते हैं बंगाल की तरफ। बंगाल के सेन शासक ११०० ई० में शासन शुरू किये थे। १३०० ई० के कुछ ही वर्षों के बीच सेन वंश का शासनकाल समाप्त हो गया।

सेन शासकों का जन्म-स्थान था दक्षिण-भारत के कर्नाटक क्षेत्र, अर्थात् महीसुर एवं उसके आसपास का क्षेत्र। वंशानुगत दृष्टि से सेन पहले ब्राह्मण थे, फिर वे क्षत्रिय हो गये। सेन वंश के सामंत सेन ११०० ई० में किसी समय कर्नाटक से राढ़ क्षेत्र में चले आये थे। सामंत सेन एवं उसके पुत्र हेमन्त सेन के शासनकाल में राढ़ क्षेत्र में सेन लोगों का कुछ आधिपत्य स्थापित हुआ। हेमन्त सेन का पुत्र विजय सेन (अनुमानत: १०९६-११५९ ई०) राढ़, गौड़, पूर्व बंगाल एवं मिथिला पर विजय प्राप्त कर अपने राज्य की सीमा को आगे बढ़ाया।

परवर्ती शासक बल्लाल सेन (अनुमानतः ११५९–'७९ ई०) पाल शासक गोविन्दपाल को पराजित किये थे। इस तरह बल्लाल सेन ने पाल शासन पर काफी बड़ा आघात किया। बल्लाल सेन समाज-सुधार में परिवर्तन के विरोधी थे, कट्टर ब्राह्मण आचार-आचरण की उन्होंने प्रतिष्ठा की। बल्लाल सेन के पुत्र एवं उत्तराधिकारी लक्ष्मणसेन (अनुमानतः ११७९–१२०४/५ ई०) प्रयाग, वाराणसी एवं पुरी में अपना साम्राज्य स्थापित किया। राजा लक्ष्मणसेन की राजधानी थी पूर्व बंगाल का विक्रमपुर। लक्ष्णावती (गौड़) उनके शासन काल का एक महत्वपूर्ण शहर था। १२०४/५ ई० में तुर्की आक्रमण के कारण बंगाल में सेन शासन-काल का अवसान हो जाता है।

२.१ : एक नजर में बंगाल और बिहार में पाल तथा सेन शासकों का शासन

राजवंश	समयकाल	कुछ उल्लेखनीय शासक	उल्लेखनीय घटना
पाल	७५०–१२०० ई०	गोपाल, धर्मपाल, देवपाल, महीपाल प्रथम, रामपाल	त्रिशक्ति संघर्ष में हिस्सा, बौद्धधर्म का समर्थन, शिक्षा-शिल्प-स्थापत्य का विकास,कैवर्त विद्रोह।
सेन	११००–१२०४/५ ई० (१३०० ई० का प्रथम भाग	बल्लाल सेन, लक्ष्मन सेन	वर्ण-व्यवस्था का कठिन नियम, तुर्की अभियान

ध्यान से देखा जाये तो, पाल राजाओं के शासनकाल के अंतिम समय से ही बंगाल में सेन वंश का शासन शुरू हुआ। इसका मतलव हुआ, ११०० ई० के मध्य से समस्त बंगाल में पाल शासकों का प्रभुत्व वैसा नहीं था। केवल पूर्व बिहार एवं उत्तर बंगाल में पाल शासकों का शासन था। इसी का लाभ उठाकर सेन वंश के सामंत सेन एवं उसका पुत्र लक्ष्मण सेन ने राढ़ क्षेत्र में अपने को प्रतिष्ठित किया। पाल शासन के अंतिम समय में कैवर्त विद्रोह ने शासन स्थापित करने में सेन शासकों की सहायता की।

२.६ दक्षिण भारत में चोल साम्राज्य

इस समय दक्षिण भारत में भी कुछ क्षेत्रों में साम्राज्य का विस्तार हुआ था। पल्लव, पांड्य एवं विशेष रूप से चोल शक्तिशाली हो गये थे। कावेरी एवं उसकी शाखा नदियों तथा द्वीप को केन्द्रित कर चोल राज्य का गठन हुआ था। वहाँ के शासक मूट्रोबाई को हटाकर विजयालय (८४६–८७१ ई०) ने चोल राज्य की प्रतिष्ठा की। खांजावूर या तंजौर नामक एक नये शहर का

निर्माण हुआ। जो चोल राज्य की राजधानी बनी। विजयालय के उत्तराधिकारी ने राज्य को और विस्तारित किया। दक्षिण में पांड्य एवं उत्तर में पल्लव क्षेत्र का राज्य चोलों के अधिकार में आ जाता है। ९४५ ई० में राजराज प्रथम वर्तमान केरल, तामिलनाडु एवं कर्नाटक के विस्तृत क्षेत्र में चोल ने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाई। उसके पुत्र राजेंद्र प्रथम ने (१०१६-१०४४ ई०) कल्याणी के चालुक्य शासक को पराजित किया। बंगाल के पाल वंश के विरूद्ध एक संधर्ष में गंगा नदी के किनारे पाल शासक को हटाकर 'गंगाईकोंड चोल' की उपाधि ग्रहण करते हैं। राजराज प्रथम एवं राजेंद्र प्रथम दोनों चोल शासकों ने निपुण नौवाहिनी का गठन किया। जिसके परिणाम स्वरूप दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों के साथ भारतीय वाणिज्य को पूरी तरह अपने नियंत्रण में रखना चोल शासकों के लिए संभव हो सका।

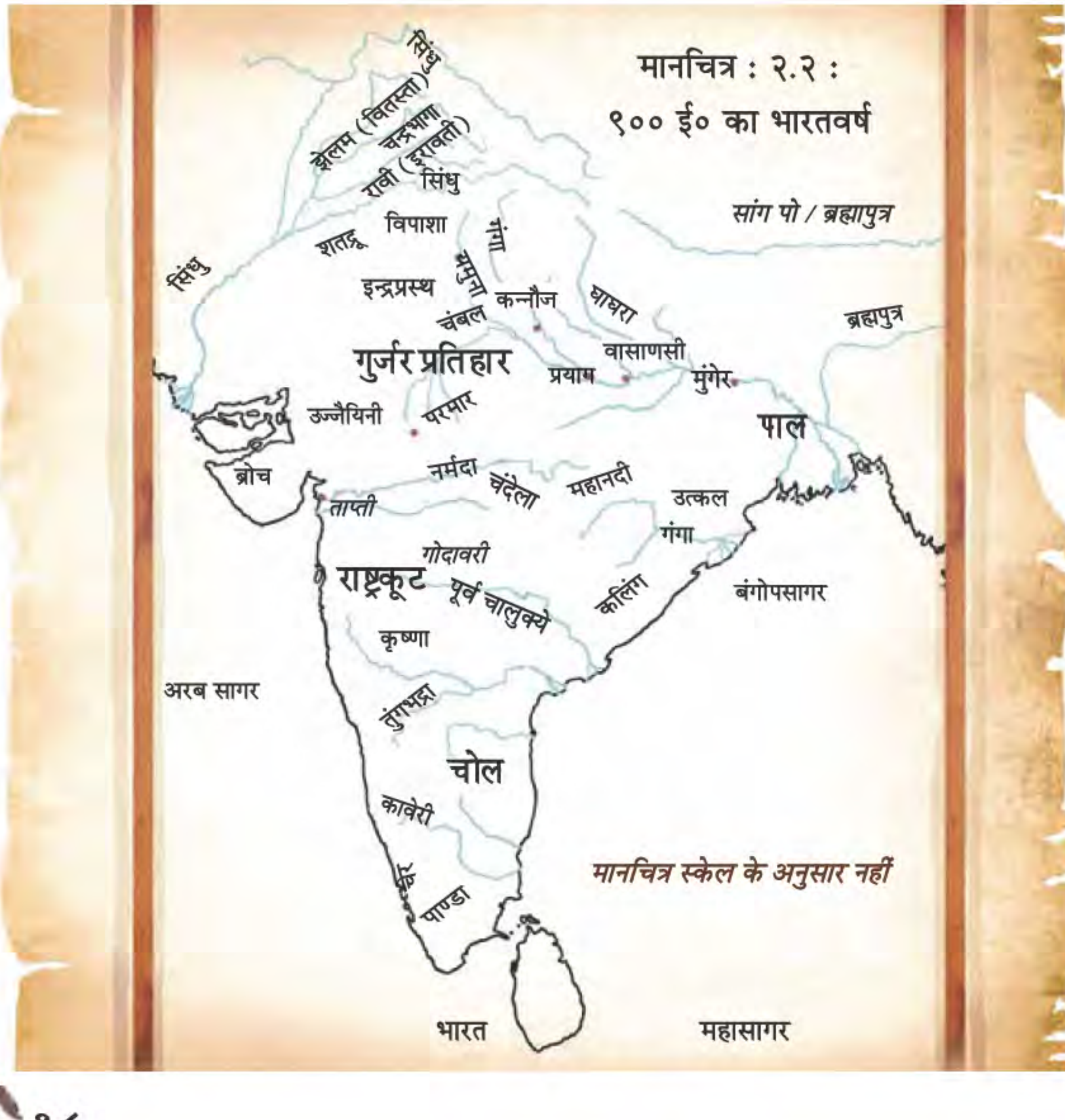

मानचित्र : २.२ :
९०० ई० का भारतवर्ष

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

१. रिक्त स्थान की पूर्ति करो : **पूर्णांक : १**

क) 'बंग' शब्द का पहले उल्लेख मिलता है .... (तैत्तरीय आरण्यक/ आइन-ए-अकबरी/ अर्थशास्त्र)

ख) प्राचीन बंगाल की सीमा ...., ...एवं .... (भागीरथी, पद्मा, मेघना/ गंगा, ब्रह्मपुत्र, सिंधु/ कृष्णा, कावेरी, गोदावरी) नदी को लेकर निर्मित हुई थी।

ग) सकलोत्तर पथनाथ उपाधि था .... (शशांक/ हर्षवर्द्धन/ धर्मपाल)

घ) कैवर्त विद्रोह के एक नेता थे .... (भीम/ रामपाल/ महीपाल प्रथम)

ङ) सेन राजा .... (विजयसेन/ बल्लालसेन/ लक्ष्मण सेन) के शासन-काल में तुर्की आक्रमण हुआ था।

२. 'क' स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ को मिलाकर लिखो :- **पूर्णांक : १**

क-स्तम्भ	ख-स्तम्भ
बज्रभूमि	बौद्ध विहार
लो-टो-मो-चिह्	आधुनिक चट्टग्राम
गंगाईकोंड चोल	वाक्पतिराज
गौड़वह	उत्तर राढ़
हरिकेल	राजेंद्र प्रथम

३. संक्षेप में (५० शब्दों में) उत्तर लिखिए :- **पूर्णांक : ३**

क) यहाँ के पश्चिम बंगाल का एक मानचित्र देखिए। उसमें आदि-मध्य युग के बंगाल की कौन-कौन सी नदी देखने को मिलती है?

ख) शशांक के शासनकाल में बंगाल की आर्थिक व्यवस्था कैसी थी? अपने शब्दों में लिखिए।

ग) मत्स्यन्याय से क्या तात्पर्य है?

घ) ७०० एवं ८०० ई० में क्षेत्रीय राज्यों का गठन कैसे हुआ था?

ङ) सेन शासकों का जन्म-स्थान क्या है? किस तरह से उन्होंने बंगाल में अपना शासन कायम किया?

४. विस्तृत (१००-१२० शब्दों में) उत्तर लिखिए :- **पूर्णांक : ५**

क) प्राचीन बंगाल के राढ़-सुह्न एवं गौड़ क्षेत्र का भौगोलिक परिचय दीजिए।

ख) शशांक के साथ बौद्धों का संबंध कैसा था? इस संबंध में अपने विचार प्रस्तुत कीजिए।

ग) त्रि-शक्ति संघर्ष किन-किन के बीच था? इस संघर्ष का मूल कारण क्या था?

घ) चित्र २.१ ध्यान से देखिए। इनके माध्यम से पाल और सेन शासन की संक्षेप में तुलना कीजिए।

ङ) दक्षिण भारत में चोल साम्राज्य के उत्थान की पृष्ठभूमि का विश्लेषण कीजिए। कौन-कौन-सा क्षेत्र चोल राज्य के अंतर्गत शामिल था ?

सोचकर लिखिए (१००-१५० शब्दों में)

क) सोचिए कि आप शशांक के शासन-काल के एक पर्यटक हैं। आप ताम्रलिप्त से कर्णसुवर्ण जा रहे हो। रास्ते में आपको कौन-कौन सा क्षेत्र और नदी दिखाई पड़ेगा ? कर्णसुवर्ण जाकर आप क्या देखोगे ?

ख) सोचिए कि देश में मत्स्यन्याय लागू है। तुम और तुम्हारे वर्ग के लोग अपने देश के राजा को निर्वाचित करना चाहते हो। अपने मित्रों के बीच एक काल्पनिक संवाद की रचना कीजिए।

ग) सोचिए कि आप कैवर्त के नेता दिव्य हो। पाल शासकों के विरूद्ध आप का आरोप क्या-क्या रहेगा ? किस तरह आप अपने विद्रोही सैन्यदल का गठन एवं परिचालन करेंगे- इसे लिखो।

तृतीय अध्याय

भारतीय समाज, अर्थनीति एवं संस्कृति की विभिन्न धाराएँ (७००-१२०० ई.)

३.१ इस्लाम और भारत

अभी तक हमलोग भारत के राजनैतिक इतिहास के बारे में कुछ जानकारी प्राप्त किये। इसी समय भारत के साथ इस्लामिक सभ्यता का संपर्क स्थापित हुआ। भारत की राजनीति, समाज, संस्कृति एवं अर्थनीति पर इस संपर्क का गंभीर प्रभाव पड़ा था।

भारत के पश्चिम में स्थित अरब सागर को पार कर एशिया महादेश के पश्चिमी भाग में अरब द्वीप है। अरब उपद्वीप का अधिकांश भाग ही मरूस्थल या सूखा क्षेत्र है। इसके पश्चिम में लोहित सागर, दक्षिण में अरब सागर एवं पूरब में फारस की खाड़ी है। यहाँ साधारणत: वर्षा होती है। मक्का और मदीना यहाँ का दो महत्वपूर्ण शहर है। यहाँ के यायावर लोगों को बेदूइन (बंजारा) कहा जाता था। वे लोग ऊँट पालते थे। खजूर एवं ऊँट का दूध इनलोगों का प्रमुख खाद्य था। ये लोग अरबी कहकर अपना परिचय देते थे।

६०० ई. के आरंभ में कुछ अरब उपजातियों ने व्यवसाय को ही अपना प्रधान जीविका बनाया। मक्का शहर दो वाणिज्यिक मार्गों के संधि-स्थल पर अवस्थित था, जिससे इस शहर पर अपना आधिपत्व बनाये रखने के लिए विभिन्न उपजातियों के मध्य संघर्ष चलता रहता। सातवीं शताब्दी में अरब उपद्वीप में एक नवीन धर्म का प्रारंभ हुआ जिसका नाम था इस्लाम। इस शताब्दी में जहरत मोहम्मद मक्का को केन्द्रित कर इस्लाम धर्म का प्रचार करना शुरू किये। वे स्वयं एक व्यपारी थे।

हजरत मोहम्मद का जन्म अनुमानत: ५७० ई. में हुआ था। ६१० ई. के लगभग मोहम्मद यह घोषणा करते हैं कि अल्लाह या ईश्वर ने उनके सामने सत्य का उद्घाटन किया है। इसलिए मोहम्मद को ईश्वर या अल्लाह का संदेशवाहक माना जाता है। सामान्य लोग मोहम्मद से ही अल्लाह के बारे में जान सकते हैं। इस्लाम धर्म के अनुयायी मुसलमान के नाम से जाने जाते हैं।

विभिन्न अरब उपजातियों के मध्य धार्मिक विभेद को मिटाने के लिए मोहम्मद ने एक ही ईश्वर की उपासना पर बल दिया। जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न उपजातियों के बीच एकता स्थापित हुआ। उस समय के प्रतिष्ठित मक्का निवासियों के धार्मिक आचार-विचार से मोहम्मद के धार्मिक तम में अंतर था। लेकिन अपने प्रभावशाली चाचा अबू तालिब के सहयोग से मोहम्मद

कुछ बातें

भारत एवं अरब

भारत के साथ इस्लाम का प्रथम संपर्क तुर्कों के इस देश में आने से बहुत पहले ही स्थापित हो चुका था ८००-९०० ई. में अरब व्यापारी भारत के पश्चिमी तट पर आये थे। सिंधु नदी के मुहाने पर मालावार में अरबी मुस्लिम व्यापारियों की बस्ती बस गई थी। इससे जिस तरह अरबी व्यापारी लाभान्वित हुए, उसी तरह स्थानीय व्यापारियों ने भी लाभ उठाया। शासक भी इससे लाभान्वित हुए थे। हिन्दू, जैन और मुसलमान व्यवसायी धार्मिक सहिष्णुता का एक उज्जवल उदाहरण है।

इस युग में बगदाद के खलीफाओं के प्रयास से संस्कृत भाषा में रचित ज्योतिर्विद्या, चिकित्सा-शास्त्र, साहित्य इत्यादि का अरबी भाषा में अनुवाद हुआ।

मक्का के लोगों के सामने अपनी बात रख पाये।

अबू तालिब की मृत्यु के पश्चात् ६२२ ई. के लगभग मोहम्मद एवं उनके अनुयायी मदीना शहर में चले आते है। अरबी भाषा में मक्का से मदीना चले आने को हिजरात कहा जाता है। बाद में इसी समय के हिसाब से 'हिजरी नामक इस्लामिक संवत शुरू हुआ। दस वर्षों के भीतर ही मोहम्मद अरब की धरती के विस्दत क्षेत्रों में विजयी होते है। मक्का में भी उनका प्रभाव फैल जाता है। ६३२ ई. के लगभग हजरत मोहम्मद परलोक सिधार जाते हैं। तब तक निश्चय ही अरब की भूमि पर इस्लाम अच्छी तरह फैल चुका था।

कुछ बातें

खलीफा तथा खिलाफत

मोहम्मद के बाद इस्लामिक जगत को कौन नेतृत्व प्रदान करेगा- इसे लेकर प्रश्न उठा। तब मोहम्मद के चार प्रमुख साथी एक-एक कर मुसलमानों के नेता बनते हैं। इन्हें 'खलीफा' कहा जाता है। खलीफा अरबी भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है प्रतिनिधि या उत्ताधिकारी। आबू बकर पहले खलीफा थे। इस्लामिक जगत में खलीफा ही राजनैतिक तथा धार्मिक नेता बने। जिन क्षेत्रों में इस्लाम धर्म का प्रभाव फैल गया था, वे दर-अल-इस्लाम कहलाये। इस पूरे दर-ऊल-इस्लाम के प्रधान नेता थे। उनके अधिकारी क्षेत्र का नाम 'खिलाफत' पड़ा।

७१२ ई. के लगभग अरबी मुसलमान मुहम्मद-बिन-कासिम के नेतृत्व में सिंधु प्रदेश पर हमला करते हैं। इसी बीच अरब व्यवसायी एवं पर्यथ्क ७००-८०० ई. में भारत आये थे। अर्थात् भारत के साथ इस्लाम का संपर्क राज्य-विस्तार से पहले ही शुरू हो गया था।

अरब शक्ति सिंधु प्रदेश, मुलतान एवं उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ क्षेत्रों को अपने अधिकार में कर लेते हैं। मुहम्मद-बिन-कासिम की मृत्यु के पश्चात् वे लोग धीरे-धीरे इस क्षेत्र से हटते गये। अरबी लोग नवीं शताब्दी के अंत में भारत-अभियान बंद कर देते हैं।

अरबी लोगों के पश्चात् और एक मुस्लिम शक्ति तुर्क भारत की सम्पत्ति को देख भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रयत्नशील हो उठते हैं। ग्यारहवीं एवं बारहवीं शताब्दी में गजनी सुलतान महमूद एवं गौड़ का शासक मुईजुद्दीन मोहम्मद बिन साय (मोहम्मद गोरी)- ये दो तुर्क शासक भारतीय उपमहादेश पर हमला करते हैं। निश्चय ही दोनों का उद्देश्य एक नहीं था। महमूद गजनी का प्रधान उद्देश्य यहाँ के मंदिरों से धन-संपदा लूट कर खुरासान एवं मध्य एशिया के अपने साम्राज्य में खर्च करना था। अनुमानत: १०००ई. से १०२७ ई. तक प्राय: सत्रह बार गजनी उत्तर भारत पर आक्रमण करते हैं।

कुछ बातें

कुरान और काबा

इस्लाम का पवित्र धर्म ग्रंथ कुरान है। मुसलमानों का विश्वास है कि कुरान में अल्लाह की वाणी प्रकाशित हुई है।

अरब देश के मक्का में बहुत बड़े आकार का काले रंग का एक चौकोर पत्थर है, जिसे काबा कहा जाता है। इस्लाम धर्म के प्रचार से ही काबा कुरेशी उपजातियों का तीर्थस्थल था। हजरत मोहम्मद कुरेशी उपजाति के ही व्यक्ति थे। परवर्ती समय में काबा मुसलमानों का भी तीर्थस्थल हो गया।

कुछ बातें

गजनी के सुलतान महमूद

भारतीय इतिहास में सुलतान महमूद एक आक्रमणकारी के रूप में जाने जाते हैं। लेकिन वे केवल एक योद्धा नहीं थे। जिस तरह भारत से उन्होंने प्रचुर संपप्ति को लूटा, उसी तरह अपने राज्य में उस संपत्ति को अच्छे कार्यों में खर्च किया। उनके शासन-काल में राजधानी गजनी एवं दूसरे शहरों को अच्छी तरह सजाया गया। वहाँ पर गजनी ने प्रासाद, मस्जिद, ग्रंथागार, बगीचा, जलाशय, नाला एवं आमू दरिया (नदी) पर बांध का निमार्ण करवाया। उन्होंने एक विश्वविद्यालय का निमार्ण करवाया जहाँ शिक्षकों को वेतन तथा छात्रों को छात्रावृत्ति देने की व्यवस्था थी। महमूद के शासनकाल में दो उल्लेखनीय व्यक्ति थे- अलबरूनी एवं फिरदौसी। अलबरूनी दर्शन एवं गणित के विद्वान थे। वे भारत में पर्यटक के रूप में आये। उनकी लिखित पुस्तक 'ऊल हिन्द' उस समय के भारतीय इतिहास को जानने के लिए महत्वपूर्ण ग्रंथ है। कवि फिरदौसी ने 'शाहनामा' काव्य की रचना की।

चित्र-३.१

गजनी सुलतान महमूद

दूसरी तरफ, मोहम्मद गोरी भारतवर्ष का शासक बनना चाहते थे। ११९२ ई. में तराई के द्वितीय युद्ध में उन्होंने राजपूत राजा तृतीय पृथ्वीराज चौहान को पराजित करते हैं। १२०६ ई. में मोहम्मद गोरी की मृत्यु हो जाती है। गोरी के अंतरंग मित्र कुतुबुद्दीन-ऐबक उस समय दिल्ली में सुलतानी शासन की प्रतिष्ठा करते हैं।

बंगाल में तुर्की हमला

अनुमानत: १२०४ ई. में या १२०५ ई. के प्रारंभ में तुर्क सेनापति इख्तियारूद्दीन मोहम्मद बख्तियार खिलजी बंगाल के नदिया को अपने अधिकार में कर लेते हैं। इसी के साथ बंगाल में तुर्की शासन का आरंभ होता है।

कुछ बातें

केवल अट्ठारह घुड़सवारों द्वारा बंगाल विजय ! ऐसा हो सकता है?

तुर्की आक्रमण के प्राय: चालीस वर्ष बाद, बंगाल में आकर, इतिहासकार मिनहज-ऊस-सिराज ने बख्तियार खिलजी के हमले के बारे में सुना। उनके लेख 'तरकात-ई-नासिरी' से यह जाता जाता है कि खिलजी एवं उनकी तुर्क वाहिनी घोड़े के व्यवसायी का छद्मवेश धारणा कर नदिया में

प्रवेश किये थे। उस समय बंगाल से उत्तर की तरफ तिब्बत तक घोड़े का व्यापार किया जाता था। इसी कारण से तुर्कों को नदिया में प्रवेश करते देख किसी ने उन्हें आक्रमणकारी नहीं समझा।

यह नदिया कहाँ स्थित था?

हो सकता है यह नदिया वर्तमान पश्चिम बंगाल के भागीरथी नदी के किनारे स्थित था जो आज नदी में समा गया है। अथवा हो सकता है वर्तमान बांग्लादेश के राजशाही जिला के नौदा गांव ही उस समय का नदिया था। जो भी हो, तुर्की हमले के समय राजा लक्ष्मण सेन नदिया में थे।

कहा जाता है कि बख्तियार के साथ मात्र सत्रह लोगों की सेना थी। लेकिन यह धारणा सही नहीं है। उस समय उत्तर भारत से बंगाल आने का एक से अधिक रास्ता था। साधारणत: बिहार से बंगाल आते समय राजमहल पहाड़ के उत्तरी मार्ग से ही आया जाता। तुर्की आक्रमण को रोकने के लिए लक्ष्मण सेन ने उस मार्ग पर अपनी सेना नियुक्त की थी। लेकिन बख्तियार खिलजी अपनी सेना को छोटे-छोटे दलों में विभक्त कर झारखण्ड के दुर्गम जंगलों से बंगाल में प्रवेश किये।

दोपहर का वक्त था। वृद्ध राजा लक्ष्मण सेन भोजन करने बैठे थे। तुर्की आक्रमण की बात सुन बिना किसी प्रतिरोध के वे चुपचाप पूर्व बंगाल की तरफ चले गये।

तुर्क बिना किसी युद्ध के नदिया पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। इसके बाद बख्तियार ने लक्ष्मणावती पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाई। इस शहर को मुस्लिम इतिहासकार लखनौती कहकर सम्बोधित करते हैं।

बख्तियार खिलजी अपने राज्य को कुछ भागों में विभाजित कर प्रत्येक भाग के लिए एक-एक शासक नियुक्त करते हैं। ये शासक सभापति कहलाये। बख्तियार खिलजी लखनौती में मस्जिद मदरसा तथा सूफी साधुओं के लिए आश्रम का निमार्ण करवाते हैं।

लखनौती राज्य की सीमा उत्तर में दिनाजपुर जिला के देवकोट से रंगपुर शहर, दक्षिण में पद्मा नदी, पूर्व में तिस्ता तथा करतोया नदी एवं पश्चिम में बख्तियार खिलजी अधिकृत बिहार तक फैला हुआ था। इसके बाद बख्तियार खिलजी ने तिब्बत पर आक्रमण कर अपने राज्य का विस्तार करने की कोशिश की। लेकिन यह प्रयत्न सफल नहीं हो सका।

१२०६ ई. में बख्तियार खिलजी की मृत्यु हो जाती है। बंगाल में तुर्की आक्रमण का एक अध्याय समाप्त हो जाता है। ठीक इसी समय पूर्व बंगाल के शासक लक्ष्मण सेन की भी मृत्यु हुई थी।

३.२ भारतीय अर्थनीति : ७०० ई. से १२०० ई.

यहाँ हमलोग ७०० ई. से १२०० ई. तक के भारतीय अर्थ-व्यवस्था के संबंध में जानने का प्रयत्न करेंगे। इस समय विशेष रूप से दक्षिण भारत एवं पाल तथा सेन शासकों के शासनकाल में बंगाल की अवस्था कैसी थी, इसे जानने की चेष्टा करेंगे। ७००ई. से ही उत्तर भारत के कुछ क्षेत्रों में व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में मंदी दिखाई पड़ती है। नगरों की खराब स्थिति पर पर्यटकों का ध्यान गया। पुराने व्यवसायिक पथों का महत्व घट गया था। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नये व्यवसायिक मार्गों एवं नवीन शहरों का निर्माण नहीं हुआ। ह्वेनसांग ने थानेश्वर, कन्नौज तथा वाराणसी के व्यवसायिक कार्य-स्थलों के रौनक का उल्लेख किया है। प्रशासनिक केंन्द्र की दृष्टि से भी थानेश्वर एवं कन्नौज महत्त्वपूर्ण था। बंदरगाह क्षतिग्रस्त नहीं हुआ था। बल्कि ९ वीं शताब्दी से अरब व्यापारियों का यातायात बढ़ जाने से दूसरे देशों से व्यापार में काफी प्रगति हुई। ग्रामीण बाजारों में अनाज एवं दूसरे पदार्थों की खरीद-बिक्री अनेक गुणा बढ़ गई थी। विशेष रूप से ईंख, रूई और नील का बाजार बहुत से देशों में शुरू हुआ। इस समय उत्तर भारत में अच्छे पैमाने का सोना तथा चाँदी के सिक्के का अभाव था। समकालीन रचनाओं में अनेक तरह के सिक्कों का उल्लेख मिलता है। तब भी, वह कितना चलता था, निश्चित रूप से कहना कठिन है।

३.२.१ दक्षिण भारतीय अर्थव्यवस्था

दक्षिण भारत के शासकों ने बहुत सी मंदिरों का निर्माण करवाया। उसका सिर्फ पूजा के लिए ही प्रयोग नहीं होता था। तंजौर एवं गंगाईकोड-बोलपुर में चोल शासक राजराज एवं राजेंद्र के समय में दो असाधारण रूप से सुंदर मंदिर का निर्माण हुआ। मंदिर को केंद्रित कर जनपद एवं कलाकारों की बस्ती बस जाती। मंदिर के अधिकारियों को राजा, व्यवसायी तथा धनी लोग जमीन दान करते। उस जमीन फसल मंदिर से जुड़े लोगों के जीवन-यापन के लिए प्रयोग होता। पंडित, मालाकार, रसोइया, गायक, नर्तक-नर्तकी इत्यादि मंदिर के प्रांगण में रहते। चोल राज्य का तांबे का हस्तशिल्प काफी विख्यात था। तमिलनाडु क्षेत्र की काबेरी एवं उसकी सहायक नदियों से नहर की खुदाई कर सिंचाई में सुधार लाया गया। जिसके परिणामस्वरूप कृषि का उत्पादन बढ़ा। कहीं-कही साल में दो बार अनाज पैदा करना भी संभव हुआ। जहाँ सिंचाई की सुविधा नहीं थी, वहाँ वर्षा के जल को जमा रखने के लिए तालाब और गढ्ढे बनाये गये। कहीं-कहीं कुँआ की व्यवस्था भी थी।

चोल शासन का प्रधान राजा होता था। उनकी सहायता मंत्रियों का एक

कुछ बातें

राजपूत

उत्तर भारत के राजनीतिक इतिहास में जिनकी चर्चा बार-बार की जाती है, वे राजपूत हैं। राजपूत कौन हैं, इनका देश कहाँ है-इस संबंध में काफी विवाद है। अधिकांश लोगों का मानना है कि ५००ई. में हूणों के आक्रमण के बाद ही मध्य-एशिया के लोग उत्तर-पश्चिम भारत में आकर बस गये थे। स्थानीय लोगों के साथ उन्होंने वैवाहिक संबंध स्थापित किया। इनके वंशजों को ही राजपूत कहा गया। फिर भी राजपूत लोग अपने को स्थानीय क्षत्रिय मानते हैं। अपने को चंद्र, सूर्य तथा अग्नि देवताओं का वंशज कहकर सम्बोधित करते।

परिषद करती। पूरे राज्य को कई प्रदेशों या मंडलम् में विभाजित किया गया था। किसानों की बस्ती से घिरे गांव का शासन ग्राम-परिषद करता। इसी तरह के कुछ गांवों को लेकर नाडू का गठन होता। उर एवं नाडू- ये दो स्थानीय सभा स्वायत्तशासन विचार एवं राजस्व संग्रह का दायित्व संभालते। ब्राह्मणों को दक्षिणा में जमीन देने के परिणाम स्वरूप कावेरी की तराई में ब्राह्मण संप्रदाय के नेतृत्व में अनेक नये-नये गांवों का निर्माण हुआ। इन नये गांवों का निरीक्षण करने के लिए वयस्क लोगों की एक समिति गठित की गई। वे लोग प्रशासनिक दायित्व का पालन करते। व्यवसायिक स्वार्थ एवं विभिन्न समस्याओं का मुकाबला करने के लिए 'नगरम्' नामक और एक परिषद का गठन किया गया।

कर संग्रह करना किसे कहते है? यहाँ कितने तरह से कर संग्रह किया जाता है?

निश्चय ही दक्षिण भारत में ९००-११०० ई. के बीच व्यापार के क्षेत्र में उन्नति दिखाई देती है। विभिन्न लेखों से यह जाना जाता है कि विभिन्न व्यापारिक संगठन एवं उनमें सहयोग का भी पता चलता है। ये संगठन विभिन्न मंदिरों को जमीन दान करते। इस तरह का वर्णन दक्षिण भारत के ताम्रलेखों में मिलता है। दक्षिण-पूर्ण एशिया के विभिन्न देशों में चोलों का आधिपत्य बढ़ जाने से, वहाँ के व्यापार पर, भारतीय व्यापारियों का प्रभाव धीरे-धीरे बढ़ गया था।

इस समय बहुत से राजा उच्च मर्यादा-सम्पन्न उपाधि से अपने को विभूषित करते। जैसे- महाराजाधिराज, त्रिभुवन चक्रवर्ती आदि। इनमें से अधिकांश स्थानीय सामंत या धनी कृषक, व्यापारी एवं ब्राह्मणों के साथ अपने अधिकारों का बँटवारा कर लेते। कृषक, पशुपालक एवं कारीगर के उत्पादन में राजा भी हिस्सा लेते। भूमिकर के अतिरिक्त व्यापारियों से भी कर वसूल किया जाता। उसी पर राजा का विलासी जीवन निर्भर करता। सेना की देख-रेख, दुर्ग एवं मंदिर-निर्माण में यही धन खर्च किया जाता। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय विजयी शासकों की सेना पराजित क्षेत्र में काफी लूटपाट मचाती। स्थानीय महत्वपूर्ण परिवारों को ही मालगुजारी संग्रह करने का दायित्व दिया जाता। ये परिवार मालगुजारी का एक अंश अपने पास रखकर शेष राजकोष में जमा कर देते। कभी-कभी पराजित राजाओं की योग्यता एवं महत्त्व को समझ उनकी अधीनता स्वीकार कर जमीन-जगह दान के रूप में वापस लौटा देते। खेती लायक जमीन का परिमाण बढ़ाने के लिए अधिकांश बार ब्राह्मणों को जमीन दान में दिया जाता। वे लोग बंजर जमीन एवं जंगल को साफ कर बस्ती का निर्माण करते। ब्राह्मणों को कुछ जमीन दिया जाता, जिसका कर वसूल नहीं किया जाता। जमीन दान करने की व्यवस्था को ब्रह्मदेय व्यवस्था कहा जाता।

कुछ बातें

भारत की सामंती व्यवस्था

क्षेत्रीय शासकों की समृद्धता की छाप उस समय के भारतीय समाज एवं अर्थव्यवस्था पर पड़ा। समाज के एक विशेष कुल की क्षमता बढ़ जाती है। समकालीन लेखक इनका परिचय सामंत, राज, रानक नामों से देते थे। इनमें से कुछ उच्च राज्याधिकारी थे। उन्हें नकद वेतन न देकर अधिकाशत: जमीन दिया जाता। उस जमीन का राजस्व ही इन राज्याधिकारियों की आय थी।

पुन: कुछ क्षेत्रों में युद्ध में हार जाने के राजा लोग भी उस क्षेत्र के राजस्व का उपभोग करते या कभी युद्ध में निपुण नेता किसी-किसी क्षेत्र पर अपना आधिपत्य कायम कर लेते।

इन कुलों में एक समानता यह थी कि ये कभी परिश्रम करके उत्पादन नहीं करते। दूसरों के परिश्रम से उत्पन्न पदार्थ या राजस्व से अपनी जीविका चलाते। दूसरों के श्रम का उपभोग करने वाले कुलों में भी स्तर का विभाजन था। कोई एक गांव का प्रधान था। को तो, कोई कुछ गांवों को मिलाकर एक क्षेत्र को अपने अधिकार में रखता। तो किसी-किसी का विस्तृत क्षेत्र पर अधिकार था। इसी तरह राजा, कुल का शासक एवं सामान्य जन को लेकर एक स्तर-भेद समाज में निर्मित हुआ।

उस समाज का चित्र खींचने पर ऐसा होगा।

देखिए, त्रिभुज का निचला हिस्सा अधिक चौड़ा है। इसका अर्थ हुआ, नीचे जनता है उनके ऊपर कुछ सामंत या मध्यम श्रेणी का शासक है। मध्यम श्रेणी के शासकों के ऊपर कुछ महासामंत तथा सबसे ऊपर राजा है। इस तरह राजस्व एवं शासन का अधिकार विभिन्न स्तरों में विभाजित व्यवस्था को 'सामंत-व्यवस्था' कहते हैं।

महासामंत और सामंतों के बीच हमेशा लड़ाई-झगड़ा चलता रहता। सभी अपनी शक्ति को और बढ़ाना चाहते थे। कभी ये लोग दल बनाकर राजा के विरूद्ध युद्ध में भाग लेते। किसी समय इसी कुल के लोग अपने अधीन गांव से राजस्व वसूलने के साथ-साथ वहाँ शासन एवं मुकदमें का फैसला भी करते। राजा के आधिपत्य को भी इनलोगों ने अधिकांशत: अस्वीकार किया है, जिससे राजशक्ति की दुर्बलता जाहिर हो जाती। सामंत नेताओं के घमंड के कारण गांवों की स्वायत्तशासन व्यवस्था भी नष्ट होती है। (नवम् अध्याय में स्वायत्त शासन के बारे में विस्तार से पढ़ोगे)

३.२.२ पाल-सेन युग में बंगाल की धन-सम्पत्ति तथा अर्थ-व्यवस्था

पाल-सेन युग में कृषि, कला एवं वाणिज्य ही बंगाल की अर्थ-व्यवस्था का मुख्य आधार था। इस युग में बंगाल की अर्थव्यवस्था में वाणिज्य का महत्व क्रमश: घटता गया था। भारत के पश्चिमी सागर की तरफ अरब के व्यापारियों के प्रभाव के कारण बंगाल के व्यापारी पीछे हट गये थे। विदेशी व्यापार में बंगाल के व्यापारियों का महत्त्व घट जाने के कारण बंगाल की अर्थव्यवस्था कृषि पर निर्भर हो गई थी। वाणिज्यिक अवनति में सिक्के की अनेक रूपता का भी योगदान था। पाल-सेन युग में बंगाल में सोना-चाँदी के सिक्कों का प्रयोग बहुत कम हो जाता है। वस्तुओं के खरीदने-बेचने का प्रधान माध्यम कौड़ी हो गया था।

आपके अनुसार क्यों राजा लोग धार्मिक प्रतिष्ठान का जमीन दान करते?

इस काल में कृषि-निर्भर समाज में भूमिदान के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। पाल युग में, राजालोग विभिन्न धार्मिक प्रतिष्ठानों को भूमि दान में देते। सेन युग में अनेक ब्राह्मणों को भूमिदान में दिया गया। उस शासनकाल में पाये जाने वाले लेखों से पता चलता है कि जमीन की खरीद-बिक्री करते समय किसानों को भी इसकी सूचना दी जाती। इसीलिए समाज में किसानों को एकदम अवहेलना की दृष्टि से नहीं देखा जाता। फिर भी, जमीन पर मूल अधिकार राष्ट्र या राजा का ही था।

राजा उपज का एक-षष्ठांश (१/६ भाग) किसानों से करके रूप में लेते। वे अपने उपभोग के लिए फल, फूल, लकड़ी को भी प्रजा से कर के रूप में वसूल करते। व्यापारी भी अपने व्यवसाय-वाणिज्य के लिए राजा को कर देते। इन तीन प्रकार के करों के अतिरिक्त और भी कई तरह के कर थे। अपनी सुरक्षा निश्चित करने के लिए प्रजा राजा को कर देता। समस्त गांव के ऊपर भी ग्रामवासियों को कर देना पड़ता। इसके अलावा बाजार एवं नौका-घाट के ऊपर भी कर लगाया गया।

इस युग का प्रधान फसल था- धान, सरसो एवं विभिन्न तरह का फल जैसे- आम, कटहल, केला, अनार, खजूर, नारियल इत्यादि। आज के बंगालियों

की खाद्य-तालिका में दाल एक प्रमुख सामग्री है। तथापि, उस युग के फसलों में दाल का उल्लेख नहीं मिलता। इसके अलावा कपास या रूई, पान, सुपारी, इलाइची, महुआ इत्यादि भी प्रचुर परिमाण में पैदा होता। गांव के आस-पास घने बांस का जंगल एवं विभिन्न तरह के वृक्षों का भी पता चलता है। इसकी लकड़ियाँ इस युग की प्रधान सम्पत्ति थी। नदी तालाबों से भरे बंगाल की और एक बड़ी सम्पत्ति मछली थी।

उस युग के बंगाल के प्रमुख फसलों में कौन-कौन सा आज के पश्चिम बंगाल में मिलता है ?

कुछ बातें

बंगालियों का खान-पान

जहाँ का प्रधान फसल धान हो, वहां के लोगों का प्रमुख खाद्य चावल है तो इसमें कोई संदेह नहीं। गरम भात के साथ गाय का घी, साथ ही छोटी मछली, पाट का साग, मलाई वाला दूध और पका केला के साथ खाने का वर्णन प्राचीन काव्य में मिलता है। गरीब लोगों की खाद्य तालिका में विभिन्न तरह की के साग-सब्जियों का समावेश होता। आज हमलोग विभिनन तरह की सब्जियाँ खाते हैं जैसे बैगन, लौकी, कुम्हड़ा, झींगा, काकरोल, गुलर, कच्चू इत्यादि। ये सब्जियाँ प्राचीन काल से ही बंगालियों के खाने में सम्मिलित रही है। नदी-नालों से भरे देश में रूई, छोटी मछली, शोल, इलिश इत्यादि मछलियों को भी खाने का प्रचलन था। उस समय के बंगाली समाज में सबलोग नहीं पर अधिकांशतः हरिण, बकरी, तरह-तरह पक्षी एवं कछुए का मांस, केकड़ा, घोंघा, सूखी मछली इत्यादि खाते। बहुत समय बाद मध्ययुग में पुर्त्तगालियों से बंगालियों ने आलू खाना सीखा। दाल खाना बंगालियों ने उत्तर भारत के लोगों से सीखा। इसके अलावा, ईख का गुड़, दूध-दही, खीर, खोआ जैसी चीजें बंगालियों के प्रतिदिन का खाद्य वस्तु था। और था बंगाल में निर्मित नमक। महुआ एवं ईख का रस भी बंगाली समाज में प्रचलित था।

पालतु एवं वन्य प्राणियों में थे- गाय, बैल, बकरी, हंस, मुर्गी, कबूतर, कौआ, कोयल, तरह-तरह के जलीय पक्षी, घोड़ा, ऊँट, हाथी, बाघ, जंगली भैस बंदर, हिरण, सुअर, साँप इत्यादि। इनमें घोड़ा एवं ऊँट बंगाल के बाहर से आये थे।

हाथ से बनी वस्तुओं में सूती वस्त्र प्रमुख था। बंगाल के महीन सूती वस्त्रों की ख्याति देश-विदेश तक फैल गई थी। हस्त शिल्प के अंतर्गत लकड़ी एवं धातुओं से बनी रोजमर्रा की चीजों, गहनों का भी उल्लेख मिलता है। लकड़ी से बने घर मंदिर, पालकी, बैलगाड़ी, नौका इत्यादि व्यापक रूप से व्यवहार होता। इससे यह स्पष्ट होता है कि उस युग में बढ़ई का महत्त्वपूर्ण स्थान था। ये कलाकार विभिन्न निगमों या कुटुम्बों में संगठित थे।

३.३ बंगाली संस्कृति : ७००-१२००ई.

बंगला भाषा की उत्पत्ति का समय पाल युग है। अनुमानतः ८००-११००ई. के मध्य मागधी अपभ्रंश भाषा के गौड़-बंगीय रूप से धीरे-धीरे प्राचीन बंगला भाषा का जन्म हुआ। यही सामान्य, निरक्षर लोगों की भाषा थी।

उस समय तक साहित्य, व्याकरण, धर्म, दर्शन, चिकित्साशास्त्र प्रधानतः संस्कृत भाषा में ही लिखी जाती। संस्कृत भाषा शिक्षित, विद्वान एवं समाज के अभिजात्य वर्ग के लोगों की भाषा थी। जैसे-संध्याकर नंदी का 'रामचरित' काव्य एवं चक्रपाणिदत्त का चिकित्सा-विज्ञान से संबंधित पुस्तकें संस्कृत भाषा में लिखी गई है।

कुछ बातें

रामचरित

कवि संध्याकर नंदी ने पालराज रामपाल के पुत्र मदनपाल के शासनकाल (अनुमानतः ११४३-६१ई.) में रामचरित काव्य की रचना की।

'रामचरित' की कथा रामायण के कथानुसार ही लिखा गया है। इसमें कवि ने एक ही कथा के द्वारा दो अर्थों की अभिव्यक्ति की है। वे एक तरफ रामायण के राम, तो दूसरी तरफ पालराजा रामपाल की कथा लिख रहे हैं।

रामायण की तरह लिखा होने पर भी यह काव्य केवल बाल्मीकि-रामायण की पुनरावृत्ति नहीं है। इस काव्य के माध्यम से १२००ई. के बंगाल की पृष्ठभूमि पर एक तरह के राजनैतिक एवं सामजिक आदर्श का प्रचार किया गया। रामायण का भूगोल तथा रामचरित का भौगोलिक विवरण एक समान नहीं है। रामायण के अयोध्या के स्थान पर यहाँ रामपाल की राजधानी रामावती की कहानी कही गई है। रामायण के सीता-उद्धार की कथा के साथ रामपाल के वरेंद्रभूमि के उद्धार की तुलना की गई है।

रामायण में सीता की खोज में राम के वन-पहाड़ में घूमने की कथा का वर्णन है। इसके साथ तुलना करते हुए रामचरित में कहा गया है कि रामपाल अपने राज्य में सामंतों का समर्थन प्राप्त करने के लिए विभिन्न स्थानों पर गये। इन सामंतों की सहायता से ही रामपाल ने कैवर्त्तों के हाथ से अपनी जन्मभूमि का उद्धार करने का प्रयत्न किया गया था। अर्थात् संध्याकर नंदी ने रामायण की सीता एवं पाल शासक के समय की वरेंद्रभूमि को एक कर दिया है। सीता के सौंदर्य-वर्णन के माध्यम से वरेंद्रभूमि एवं उसके आस-पास के क्षेत्रों, नदी-नाला, फूल-फल, पेड़-पौधों, फसल, वर्षाकाल इत्यादि का विवरण दिया गया है।

कुछ बातें

चक्रपाणिदत्त

चक्रपाणिदत्त पाल युग के प्रख्यात चिकित्सक थे। उनका घर संभवतः वीरभूम जिला में था। प्राचीन भारत के प्रख्यात चिकित्सक चरक एवं सुश्रुत की रचनाओं पर उन्होंने टीका ग्रंथ लिखा। इसके अतिरिक्त औषधि परक पौधें की सामग्री, रोगी के लिए उपयुक्त आहार से संबंधित एक पुस्तक भी उन्होंने लिखी। उनकी लिखी श्रेष्ठ पुस्तक का नाम है-चिकित्सासंग्रह।

एक ही साथ राम एवं रामपाल की कथा लिखने के कारण रामचरित की भाषा जटिल हो गई है। इसकी भाषा संस्कृत है। यह काव्य विद्वान एवं शिक्षित लोगों के लिए ही लिखा गया। सामान्य लोगों में इस काव्य को पढ़ने की योग्यता नहीं थी।

पाल शासक ब्राह्मण न होकर संभवत: क्षत्रिय या कायस्थ थे। वे लोग बौद्धधर्म के अनुयायी हो गये थे। शशांक के शासन-काल में बौद्ध धर्म से पालयुद के बौद्ध धर्म में काफी अंतर है। पालयुग में बौद्ध धर्म के साथ अन्य दार्शनिक विचारधाराओं के मेल से बज्रयान या तंत्रयान या तांत्रिक बौद्ध-धर्म का जन्म हुआ था। इस मत को मानने वाले साधकों को सिद्धाचार्य कहा जाता था। इसके अतिरिक्त, सहजयान तथा कालचक्रयान नामक और दो धार्मिक मतों का जन्म उस समय हुआ। सहजयान को सहजिया भी कहा जाता है।

इस धर्म में देवी-देवता, मंत्र, पूजा, कर्मकांड आदि का कोई महत्तव नहीं था। इस मत को माननेवाले गुरू-शिष्य के गहरे संबंध में विश्वास करते। उनका मानना था कि ज्ञान मनुष्य के अंदर विद्यमान है एवं किसी शास्त्र को पढ़कर इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। पवित्र मन एवं आत्मा की शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता। उनका कहना था कि आत्मा के पवित्र होने पर ही मनुष्य निर्वाण या मोक्ष की प्राप्ति कर सकता हैं।

इस मत के माध्यम से ब्राह्मण धर्म की कठोरता के स्थान पर एक उदार धार्मिक मार्ग की खोज सामान्य लोगों ने की। सरहपाद, लुइपाद, कण्हपाद आदि प्रमुख सिद्धाचार्यों ने अपने मत का प्रचार स्थानीय भाषा में किया। पालयुग के अंतिम समय में बौद्ध सिद्धाचार्यों ने इस भाषा में चर्यापद लिखना शुरू किया था। चर्यापदों के माध्यम से उस समय के बंगाली परिवेश एवं सामान्य लोगों के बारे में जाना जा सकता है। इस तरह उनके द्वारा आदि बंगला भाषा का विकास हुआ।

कुछ बातें

चर्यापद

८००-१२०० ई. में बौद्ध सिद्धाचार्यों द्वारा लिखित कविता एवं गानों का संकलन चर्यापद कहलाया। चर्यापद की भाषा आदि बंगला भाषा का उदाहरण है। आचार्य हरप्रसाद शास्त्री ने नेपाल से इस 'चर्यापद' की खोज पाल शासकों के प्रयास से बंगाल एवं बिहार में शिक्षा तथा संस्कृति के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। पाल युग में बंगाल की

कुछ बातें

निर्वाण

बौद्ध धर्म के अनुसार निर्वाण ('मुक्ति, मोक्ष) प्राप्त। पाने के लिए मनुष्य को बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

कुषाण सम्राट कनिष्क (१००ई.) के समकालीन लेखक अश्वघोष ने, बौद्ध धर्म के निर्वाण या मुक्ति कहने से क्या स्पष्ट होता है, इसे एक बहुत संदर उदाहरण देकर समझाया है। उन्होंने लिखा है कि दीपक का तेल खत्म हो जाने पर जिस तरह उसकी लौ बुझ जाती है, उसी तरह मन से क्लेश या दु:ख का अंत होने पर चिरंतन मुक्ति या निर्वाण की प्राप्ति होती है। यह व्याख्या बौद्धधर्म के हीनयान शाखा के अनुसार है। महायानों की धारणा थी कि निर्वाण एक ऐसी अवस्था है जहां किसी तरह का कुछ भी नहीं है। परिवर्ती काल में इस धारणा में बहुत से परिवर्तन हुए हैं। बांग्लादेश में तांत्रिक बौद्ध धर्म ----- था। वे लोग नारी और पुरुष दोनों की भूमिका को महत्व देते।

शिक्षा–दीक्षा पर ब्राह्मणों की तुलना में बौद्ध का प्रभाव बहुत अधिक पड़ा। बौद्ध सिद्धाचार्यों द्वारा लिखित बहुत सी पुस्तकें आज खो गई हैं। तिब्बती भाषा में हुए अनुवादों के माध्यम से इस संबंध में कुछ–कुछ बातें जानने को मिली हैं।

पश्चिम बंगाल एवं बांगलादेश में फैले बौद्धविहारों को छोड़कर, बौद्ध दर्शनिकों के विचार–विमर्श का केंद्र वर्तमान का बिहार था। नालंदा, उदंतपुरी (नालंदा के निकट), विक्रमशील (भागलपुर के निकट), सोमपुरी (राजशाही जिला के पहाड़पुर में), जगदल (उत्तरबंगाल में) विक्रमपुरी (ढ़ाका जिला) जैसे विहार उल्लेखनीय हैं। इस युग में पाल शासकों के समर्थन तथा बौद्ध आचार्य एवं छात्रों के उत्साह के कारण इन विहारों ने शिक्षा–दीक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आचार्य एवं छात्रों में अधिकांश बंगाली थे। ८००–९०० ई. के मध्यशांतरक्षित, शांतिदेव, कंबलपाद तथा शबरीवाद एवं १०००–१२०० ई. के मध्य दीपंकर श्रीज्ञान (अतीश), गोरखनाथ तथा कण्हपा उल्लेखनीय आचार्य थे।

क्या वर्तमान में बौद्धविहार की तरह शिक्षा का केंद्र है?

कुछ बातें

नालंदा

संभवत: ५०० ई. में गुप्त सम्राट के शासन–काल में वर्तमान बिहार में नालंदा बौद्ध बिहार का निर्माण हुआ था। समय के साथ–साथ पूरे एशिया में नालंदा की शिक्षा–दीक्षा की ख्याति फैल गई। हर्षवर्द्धन एवं पाल राजाओं के शासनकाल में नालंदा को शासकों का सहयोग मिला था। स्थानीय शासक एवं जमींदारों के साथ ही सुदूर सुमात्रा द्वीप के शासकों ने भी इस महाविहार के संपत्ति दान में दी। जिससे छात्रों को नि:शुल्क भोजन, वस्त्र, विस्तर, दवा आदि दिया जाता। सुदूर तिब्बत, चीन, कोरिया एवं मंगोलिया से छात्र यहाँ शिक्षा–ग्रहण करने के लिए आते। इसमें भी चीनी छात्रों को शिक्षा देने के लिए विशेष खजाने का बंदोवस्त किया गया था। ७०० ई. में ह्वेनसांग ने इस बिहार में शिक्षा प्राप्त की थी। छात्रों को यहां पढ़ने का अवसर कठिन परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही मिलता। नालंदा की समृद्धि के समय दस हजार भिक्षुक यहाँ निवास करते। उनमें से १५०० शिक्षक एवं ८,५०० छात्र थे। १३०० ई. तक अपनी ख्याति बनाई रखी। इसी ई. में तुर्की आक्रमणकारियों ने बिहार क्षेत्र में आक्रमण कर इस महाविहार को काफी क्षति पहुँचाई।

चित्र ३.२ : नालंदा महाविहार का ध्वंसावशेष, बिहार

चित्र ३.३ : विक्रमशील महाविहार का ध्वंसावशेष, बिहार

कुछ बातें

विक्रमशील

८००ई. में पाल शासक धर्मपाल के उत्तर में गंगा के किनारे आधुनिक भागलपुर शहर के निकट विक्रमशील महाविहार की स्थापना की। परवर्ती ५०० वर्ष तक यह महाविहार सुरक्षित टिका रहा। इस महाविहार में बौद्ध-धर्म-चर्चा एवं शिक्षा के लिए एक सौ से भी अधिक आचार्य थे। यहाँ छात्र शिक्षा ग्रहण करने के लिए आते। यहाँ व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन इत्यादि विषय पढ़ाया जाता। सर्वोच्च तीन हजार छात्र यहाँ पढ़ते एवं उनके लिए नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था थी। यहाँ भी प्रवेश परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर ही छात्रों की भर्ती होती। शिक्षा समाप्त होने पर उन्हे उपाधि प्रदान किया जाता। विक्रमशील बौद्धधर्म के बज्रयान के विचार-विमर्श का एक बड़ा केन्द्र था। इसके पुस्तकालय में बहुत सी मूल्यावान पांडुलिपियाँ थी। दीपंकर श्रीज्ञान (अतीश) इस महाविहार के एक प्रमुख महाचार्य थे। इस महाविहार को भी १३०० ई. में तुर्की आक्रमणकारियों ने ध्वस्त किया था।

पालयुग की कलाशैली को प्राच्य कला शैली कहा जाता है।

अपनी कॉपी में शंक की आकृति का बौद्ध स्तूप का एक चित्र बनाओ।

पाल शासनकाल के स्थापक कलाओं में स्तूप, विहार एवं मंदिर था। लेकिन प्राकृतिक आपदाओं एवं मनुष्यों के क्रोध के कारण उनमें से अधिक कुछ नहीं बचा है।

प्राचीन भारत में बौद्ध एवं जैन लोगों में स्तूप निर्माण की शैली प्रचलित थी। विशेष रूप से बौद्धों ने बहुत से स्तूप बनवाये थे। ये पहले-पहल देखनें में गोलाकार था, पर बाद में बहुत कुछ केला के फूल के समान शंख आकृतिवाला हो गया।

पाल शासनकाल में निर्मित स्तूप देखने में शिखर के समान था। वर्तमान बंगाल के ढाका जिला के असरफपुर गांव में, राजशाही के पहाड़ में, चट्टग्राम में, पश्चिम बंगाल के बर्द्धमान जिला के भरतपुर गांव में बौद्धस्तूप देखने को मिलता है। बंगाल के स्तूप निर्माण में किसी मौलिक कल्पना का विकास दिखाई नहीं पड़ता।

बौद्ध भिक्षुओं का निवास-स्थान एवं विचार-विमर्श का केंद्र विहार था। पहाड़पुर का मंदिर उल्लेखनीय विहार है। इस मंदिर के चारों कोनों में तहखाना, परिक्रमा-पथ, मंडप, उच्च स्तम्भ इत्यादि था। मंदिर के निर्माण में स्थानीय लाल मिट्टी की ईंट एवं कीचड़ का व्यवहार चुनाई में हुआ था।

चित्र ३.४ बंगाल की मूर्ति (७००-१२००ई.)

(क) सूर्य (७-८) शताब्दी (ख) मंजूबज्रमंडल (११ वीं शताब्दी) (ग) चंडी (११ वीं शताब्दी) (घ) महिषासुरमदिनी (१२ वीं शताब्दी) (ङ) उमा-महेश्वर (१२ वीं शताब्दी)

पाल युग की धातुओं की मूर्ति इस युग के कला का सबसे उत्कृष्ट उदाहरण है। प्राचीनता की दृष्टि से पहाड़पुर इसका सबसे अच्छा उदाहरण है। यहाँ मूल मंदिर पर पत्थर की पट्टी है जिस पर स्थानीय शैली का प्रभाव स्पष्ट है। इसकी पट्टी पर राधा-कृष्ण, यमुना, बलराम, शिव, बुद्ध, अवलोकितेश्वर की मूर्ति है। इन देवी-देवताओं पर ब्राह्मण संस्कृति का प्रभाव बहुत अधिक है। पाल शासक एवं बौद्ध धर्म का समर्थक होते हुए भी बौद्ध एवं ब्राह्मण संस्कृति दोनों का प्रचार-प्रसार करते। धातुओं की मूर्ति में लाल मिट्टी की कला सामग्री भी थी। ये सब स्थानीय लोककला का प्रतीक था। इनमें सामान्य लोगों के दैनिक जीवन के सुख-दुख, सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वास इत्यादि का चित्र उभर आया है।

११००-१२०० ई० से पहले का कोई भी अंकित चित्र आज उपलब्ध नहीं है। जो चित्र आज उपलब्ध है, वह बौद्धधर्म की पांडुलिपि को सजाने के लिए खींची गई थी। ये चित्र आकार में छोटे हैं लेकिन ये परवर्ती काल के अनुचित्रों (मिनियेचर) की तरह सूक्ष्म रेखामय नहीं है। बल्कि इसके दीवार पर अंकित चित्र भी मिल गया है।

चित्र ३.५

पाल युग लिखित अष्टसहस्त्रिका प्रज्ञापारमिता की पुस्तक के एक पन्ने पर अंकित चित्र

८००-९०० ई० में वरेंद्र भूमि के धीमन एवं उसका पुत्र बीटपाल पाल युग के प्रसिद्ध कलाकार थे। धातु संबंधी कला, मूर्ति एवं चित्रकला के क्षेत्र में उनका प्रभुत्व था।

सेन शासनकाल में स्थानीय ग्राम व्यवस्था की अवनति होती है। स्थानीय लोगों के साथ राज्य का संबंध शिथिल हो गया था। देश छोटे-छोटे टुकड़ों में विभक्त हो गया था। सेन शासनकाल के लेखों में रानी तथा राजमहिषी का उल्लेख है। अर्थात् राजपरिवारों में स्त्रियों का महत्त्व बढ़ा था।

समाज में सामान्य लोगों का जीवन साधारणत: अच्छा था। लेकिन भूमिहीन व्यक्ति तथा श्रमिकों की आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी। उस युग के साहित्य में इसका प्रमाण है। पाल शासनकाल की तुलना में सेन शासनकाल में वर्ण व्यवस्था कठोर एवं दृढ़ हो गया था।

पाल युग की तरह सेन युग में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार नहीं हुआ। सेन शासक ब्राह्मण धर्म को ही प्रधानता देते। ब्राह्मण धर्म में वैदिक धर्म तथा पौरणिक धर्म इन दोनों का समावेश हो गया। इन्द्र, अग्नि, कुबेर, सूर्य, वृहस्पति, गंगा, यमुना, माद शक्ति, शिव, विष्णु की पूजा की जाती। सेन राजाओं में लक्ष्मण सेन वैष्णव थे, लेकिन उनके पूर्वज शैव थे।

बौद्धधर्म का अस्तित्व बने रहने पर भी पिछले युग की तरह सुविधा बौद्धों को नहीं मिली। ब्राह्मण ही समाज के प्रधान व्यक्ति के रूप में सुविधाओं का उपभोग करते। ब्रह्मणों में भी एक से अधिक उपविभाग था। अब्राह्मणों को 'संकर' या 'शूद्र' कहा जाता। ब्राह्मण लोग अब्राह्मणों का काम कर सकते थे, लेकिन अब्राह्मण ब्राह्मणों का काम नहीं कर सकता था। इसके अतिरिक्त सेन शासनकाल में आदिवासियों के बारे में भी पता चलता है।

सेन युग में लक्ष्मण सेन के राजदरबारी कवि जयदेव सबसे प्रसिद्ध साहित्यकार थे। उनके द्वारा रचित 'गीत-गोविन्द' काव्य का मुख्य विषय राधा-कृष्ण का प्रेमलीला था। लक्ष्मणसेन के राजदरबार के एक अन्य कवि धोयी ने पवनदूत काव्य की रचना की। इस युग के तीन और मुख्य कवि थे- गोवर्धन, उमापतिधर, शरण। ये पाँचों कवि लक्ष्मणसेन के राजदरबार के पंचरत्न थे। १३०० ई॰ में गौड़ कवि श्रीधरदास द्वारा संकलित 'सदूक्तिकर्णामृत' ग्रंथ में विभिन्न कवियों की कविताएँ संकलित है।

सेन युग में ब्राह्मण धर्म को मानने वालों ने कठोर अनुशासन के साथ ही साहित्य के क्षेत्र में भी अपना योगदान दिया। राजा बल्लाल सेन एवं राजा लक्ष्मण दोनों से संस्मरण ग्रंथ लिखा। बल्लाल सेन द्वारा रचित चार पुस्तकों में 'दानसागर' एवं 'अद्‌भुत सागर' ग्रंथ ही प्राय है। लक्ष्मण सेन के मंत्री इलायुध प्रणेता सर्वानंद एवं गणितज्ञ तथा ज्योतिर्विद श्रीनिवास सेन युग के अन्य दो लेखक हैं।

सेन युग के साहित्य में उस समय के बंगाल का जो दो तरह का चित्र मिलता है, इससे उस युग का समाज आपके अनुसार कैसा था ?

कुछ बातें

साहित्य एवं समाज

साहित्य समाज का दर्पण है। एक तरफ, राजा लक्ष्मण सेन के राजदरबारी कवियों की संस्कृत भाषा में लिखित काव्य में धनी एवं विलासी जीवन का चित्र अंकित हुआ है। कवियों ने राजा लक्ष्मण सेन की कृष्ण से तुलना कर उनकी स्तुति की है। गांव के सम्पन्न किसानों के जीवन का चित्र इस तरह की एक रचना में मिलती है : वर्षा जल से चमत्कृत धान अंकुरित हुआ है, गाय अपने-अपने घर लौटी है, ईख खाने में अच्छा हुआ है, और कुछ नहीं चाहिए।

दूसरी तरफ, गरीब लोगों के जीवन का चित्र भी समसामयिक साहित्य में मिलता है। भूख से व्याकुल बच्चे, गरीबों की टूटी कलशी, फटा कपड़ा- इन दृश्यों का वर्णन कवियों ने किया है। वृष्टि बहुल बांग्लादेश में झोपड़ी में रहने वाले गरीब लोगों के जीवन के कष्टों का वर्णन इस तरह की कविताओं में हुआ है : काठ की खूँटी कांप रही है, मिट्टी की दीवार गल रही है, चावल का खर उड़ रहा है, कैचो खोजते समय आए घेरे से हमारा टूटा घर भर गया है।

चर्यापद की एक पंक्ति है- हड़िया में भात नहीं, रोज उपवास। ये चरम दरिद्रता का उदाहरण है।

अब बंगाल के पाल एवं सेन शासनकाल की संक्षेप में तुलना की जा सकती है। चार सौ वर्षों से भी अधिक पाल शासन बंगाली समाज को जिस तरह संगठित कर पाये थे, एक सौ वर्षों से भी कुछ अधिक समय में स्थायी सेन शासन वैसा नहीं कर पाया। गोपाल जब शासक बने तो उनके साथ जनता का पूरा समर्थन था। विजयसेन इस तरह कोई जन समर्थन पाकर सत्ता में नहीं आये। पाल शासक जिस तरह बंगाली समाज को अपने शासन के अनुकूल बना पाये, सेन शासक वैसा नहीं कर पाये। शिक्षा-दीक्षा, धार्मिक संवाद एवं कला के क्षेत्र में पाल युग बहुत आगे था।

चित्र ३.६

पालयुग का एक तांबे की मूर्ति आधार पर अंकित चित्र

३.४ भारत और बहिर्विश्व : ७००-१२०० ई

सातवीं से बारहवीं शताब्दी के मध्य भारतवर्ष में बड़े विचित्र सांस्कृतिक लेन-देन एवं परस्पर टकराव देखने को मिलता है। भारतीय संस्कृति के भी बहुत से उदाहरण दक्षिण-पूर्व एशिया, तिब्बत एवं चीन जैसे देशों में मिलता है। ऐसा लगता है कि विभिन्न संस्कृतियों के मिलन से भारत की अनोखी जीवन शैली निर्मित हुई। जीवन शैली हमेशा एक जैसी नहीं रही आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन होता रहा हैं। परिणामस्वरूप आज भी भारत के विभिन्न प्रांतों में भिन्न-भिन्न स्थानीय लोग देखने को मिलते हैं। इस विचित्रता को अच्छी तरह समझ कर इन्हें संभालकर रखना हमारा कर्त्तव्य है।

भारत में इस्लामी संस्कृति के आने से ज्ञान के क्षेत्र में काफी विकास हुआ। दोनों संस्कृतियों के मिलन की छाप समाज, संस्कृति एवं राज्य-व्यवस्था पर पड़ी। भाषा, वस्त्र, पहनावा, खानपान, संगीत, चित्रकला से लेकर प्रशासनिक चिंतनधारा तक धीरे-धीरे बदलती रही। यह ज्ञान एक तरफा नहीं था। दोनों ने एक-दूसरे को प्रभावित किया तो कभी-कभी एक दूसरे पर प्रहार भी। वर्षों पुराना यह मिलन धीरे-धीरे दोनों संस्कृतियों में पूरी तरह से मिल गया।

चित्र ३.७ तिब्बत के एक बौद्ध गुफा में अंकित दीपंकर श्रीज्ञान (अतीश) की तस्वीर (अनुमानतः ११००ई॰) बायें हाथ में तालपत्र की पुस्तक पकड़े अतीश अपने विद्यार्थियों को पढ़ा रहे है।

कुछ बातें

दीपंकर श्रीज्ञान (अतीश)

भारत एवं भारत के बाहर परम्परा निर्भरशीलता का महत्वपूर्ण उदाहरण दीपंकर श्री ज्ञान (अतीश) हैं। बंगाली बौद्ध आचार्यों में सबसे अधिक प्रसिद्ध एवं श्रेष्ठ विद्वान अतीश का जन्म बंगाल के विक्रममणिपुर के वज्रयोगिनी गांव में हुआ था। ब्राह्मण मत में विश्वास नहीं करने के कारण आज भी उनका घर 'नास्तिक विद्वानों का घर' के नाम से जाना जाता है। वे संभवतः विक्रमशील, उदंतपुरी एवं सोमपुरी महाविहार के आचार्य एवं अध्यक्ष थे। तिब्बत के राजा ज्ञानप्रभेर के अनुरोध पर हिमालय की दुर्गम घाटियों को पार कर तिब्बत पहुँचते हैं (१०४० ई॰)।

वहाँ वे बौद्धधर्म के महायान का प्रचार करते हैं। उनके प्रयत्न से ही तिब्बत में बौद्ध धर्म लोकप्रिय होता है। वे बहुत से संस्कृत ग्रंथों का भोट भाषा में अनुवाद करते हैं। उनके संस्कृत-लेखों का मूलरूप उपलब्ध न होने पर भी तिब्बती भाषा में उनका अनुवाद मिलता है। अतीश तिब्बत में बुद्ध के अवतार के रूप में पूजे जाते हैं। तिब्बत की राजधानी लासार के निकट उनका समाधि-स्थल पवित्र तीर्थस्थल है। संपूर्ण बंगाल एवं बिहार पर उनका गंभीर प्रभाव पड़ा है। इसीलिए यहाँ के बौद्ध आचार्यों को लगा कि उनके तिब्बत चले जाने से भार में अंधेरा हो जायेगा। बहुत समय बाद कवि सत्येंन्द्रनाथ दत्त ने इस असीम प्रतिभावान आचार्य के संबंध में लिखा कि ''बंगाली अतीश ने लांधा पर्वत, तुषार भयंकर, ज्ञान का दीप जलाया तिब्बत में बंगाली दीपंकर''।

इस समय भारतीय कला, भाषा एवं साहित्य की चर्चा दक्षिण-पूर्व एशिया तक फैल गया था। हिन्द महासागर को केन्द्रित कर होने वाले व्यापार एवं धर्म-प्रचार के माध्यम से सांस्कृतिक संबंध भी कायम हुआ। कम्बोडिया में रामायण की घटनाओं पर आधारित नृत्य-संगीत बहुत लोकप्रिय हुआ। आठवीं शताब्दी में इंडोनेशिया का बोराबोदूर का बौद्ध मंदिर संभवत: पृथ्वी का सबसे वृहद् बौद्ध केंद्र था। १२०० ई॰ के पूर्वाद्ध में कम्बोडिया के अंकोरभाट में प्रसिद्ध विष्णु मंदिर का निमार्ण होता है। बाद में वहाँ बौद्ध लोग भी उपासना करते। इस मंदिर की दीवार पर रामायण और महाभारत की कथाओं की खुदाई की गई है। दक्षिण-पूर्ण एशिया के देशों के साथ भारत का संपर्क एकतरफा था, यह सोचना सही नहीं है। पानपत्ता तथा दूसरे कुछ फसलों की पैदावार कैसे की जाती है, यह सब भारत ने अपने पड़ोसी देशों से सीखा। इन देशों के कला, धर्म, लिपि एवं भाषा पर भारत का बहुत प्रभाव था। लेकिन वहाँ की समाज-संस्कृति ने अपनी पहचान बनाई रखी। लेकिन स्थानीय उपकरणों पर भारतीय संस्कृति की छाप भी थी।

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

१. नीचे दिये गये नामों में कौन-सा दूसरों का साथ मेल नहीं खा रहा है। उसके नीचे चिह्न लगाओं।

पूर्णांक-१

(क) मोहम्मद गोरी, मिनहाज-उल-सिराज, सुलतान महमूद, इख्तियारुद्दीन मोहम्मद बख्तियार खिलजी।

(ख) नाडू, चोल, ऊर, नगरम

(ग) उदंतपुरीस, विक्रमशील, नालंदा, जगदल, लखनौती

(घ) जयदेव, धीमन, बीटपाल, संध्याकर नंदी, चक्रपाणिदत्त

(ङ) लुईपाद, अश्वघोष, सरहपाद, कण्हपाद

२. निम्नलिखित कथनों के साथ उसके नीचे की कौन-सी व्याख्या आपके अनुसार सबसे अधिक उपयुक्त है?

पूर्णांक-१

(क) कथन : हजरत मोहम्मद ने मक्का शहर को केन्द्रित कर इस्लाम धर्म का प्रचार शुरू किया।

व्याख्या-१ : हजरत मोहम्मद ने मक्का के निवासियों को और अधिक एकता के सूत्र में बाँधना चाहा था।

व्याख्या-२ : हजरत मोहम्मद कुरेशी जाति के व्यक्ति थे।

व्याख्या-३ : हजरत मोहम्मद व्यापारी के रूप में मक्का आये थें।

(ख) कथन: मोहम्मद गोरी ने भारत पर आक्रमण किया था।

व्याख्या-१ : वे भारत को खिलाफत का हिस्सा बनाना चाहते थे।

व्यख्या-२ : वे भारत का शासक बनना चाहते थे।

व्याख्या-३ : हजरत मोहम्मद व्यापारी के रूप में मक्का आये थे।

(ग) बंगाल की अर्थव्यवस्था पाल-सेन युग में कृषि पर निर्भर था।

व्याख्या-१ : पाल-सेन युग में बंगाल की मिट्टी पहले की तुलना में अधिक उर्वर हो गई थी।

व्याख्या-२ : पाल-सेन युग में भारत के पश्चिमी सागर में अरबी व्यापारियों का प्रभुत्त्व बढ़ गया था।

व्याख्या-३ : पाल-सेन युग के शासक कृषकों द्वारा फसल पर कर लेते।

(घ) कथन : दक्षिण भारत में मंदिर को केंद्रित कर लोगों का घर एवं निवास स्थान का निर्माण हुआ।

व्याख्या-१ : राजा एवं आभिजात्य लोग मंदिर को नि:शुल्क जमीन दान करते।

व्याख्या-२ : नदियों से नहर बनाकर सिंचाई व्यवस्था में उन्नति की गई।

व्याख्या-३ : दक्षिण भारत शासकों ने बहुत से मंदिर बनवाये।

(ङ) कथन : सेनयुग में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार कम हो गया था।

व्याख्या-१ : सेन शासक बौद्ध थे।

व्याख्या-२ : सेन शासक ब्राह्मण धर्म को ही प्रधानता देते।

व्याख्या-३ : समाज में शूद्रों की संख्या बढ़ गई थी।

३. संक्षेप में (३०-५० शब्दों में) उत्तर दीजिए : पूर्णांक-३

(क) सुलतान महमूद ने भारत से लूटी धन-संपत्ति का प्रयोग किस तरह किया?

(ख) ९००-११०० ई॰ के बीच दक्षिण भारत में वाणिज्यिक उन्नति क्यों हुआ?

(ग) पाल और सेन युग के बंगाल में कौन-कौन सी फसलें पैदा होती? उन फसलों में किस-किस की खेती आज भी की जाती है?

(घ) राजा लक्ष्मण सेन के राजदरबार के साहित्यिक विचार-विमर्श का परिचय दीजिए।

(ङ) पाल शासन की तुलना में सेन शासन क्यों बंगाल में थोड़े दिनों तक स्थायी रहा?

४. विस्तृत (१००-१२० शब्दों में) उत्तर लिखिए : पूर्णांक-५

(क) इस्लाम धर्म के प्रचार से पहले के अरब देश का संक्षिप्त परिचय दीजिए। इस्लाम धर्म के प्रचार से अरब देश में क्या परिवर्तन हुआ?

(ख) भारतीय सामंती-व्यवस्था का चित्र बनाते समय क्यों उसे त्रिभुज की तरह दिखाया जाता है? इस व्यवस्था में सामंत किस तरह अपनी जीविका चलाते?

(ग) पाल और सेन युग में बंगाल के वाणिज्य एवं कृषि की तुलना कीजिए।

(घ) पाल शासनकाल में बंगाल की कला एवं स्थापत्य का जो परिचय मिलता है, उसे लिखिए।

(ङ) पाल और सेन युग के समाज और धर्म का परिचय दीजिए।

५. सोचकर लिखिए (११०-१५० शब्दों में)

(क) सोचिए कि बंगाल में तुर्की आक्रमण के दिन दोपहर के समय नदिया शहर के राजपथ से आप गुजर रहे थे। उस समय आपने क्या देखा?

(ख) यदि आप दसवीं शताब्दी के बंगाल के एक कृषक होते, तब आपका सारा समय कैसे व्यतीत होता? लिखिए।

(ग) सोचिए कि आप विक्रमशील महाविहार के एक छात्र हैं। आपके शिक्षक दीपंकर श्रीज्ञान तिब्बत चले जा रहे हैं। उनके साथ आप क्या बातें करेंगे? वे आपसे क्या कहेंगे? इस संबंध में एक काल्पनिक संवाद लिखिए।

चतुर्थ अध्याय

दिल्ली सल्तनत
तुर्की-अफगान शासन

४.१ सुलतान कौन थे ?

मोहम्मद गोरी की मृत्यु १२०६ ई. में हुई। मृत्यु के बाद उसके जीते हुए क्षेत्र का उनके चार अनुचरों में बँटवारा हो गया। ताजुद्दीन इयालदूज को मिला गजनी का अधिकार। नसिरुद्दीन मुलतान और उच्छ का शासक बना और लाहौर तथा दिल्ली का अधिकार कुतुब्बुद्दीन ऐबक के हाथ लगा।

दिल्ली को केन्द्र बनाकर ऐबक ने सल्तनत की स्थापना की। 'सुलतान' एक उपाधि है। अनेक तुर्की शासक इस उपाधि का इस्तेमाल करते थे। वास्तव में अरबी भाषा में 'सुलतान' का अर्थ है प्रभुत्व, क्षमता आदि। जिन क्षेत्रों में सुलतानों का प्रभुत्व था उनको सल्तनत कहा जाता था। दिल्ली को केन्द्र बनाकर सुलतानों ने पूरे भारतवर्ष पर शासन किया। इसीलिए इसे दिल्ली सल्तनत कहा जाता था।

४.२ ख़लीफ़ा और सुलतानों का संबंध

इस्लाम धर्म के अनुसार प्रधान शासक एक ही है। वो है ख़लीफ़ा। इस्लाम के अतंर्गत जितने क्षेत्र थे। उसका मूल शासक ख़लीफ़ा ही था। वही धर्म गुरु भी था। फलत: दिल्ली सल्तनत पर वास्तव में ख़लीफ़ा का ही अधिकार था। किन्तु मुसलमानों का प्रभुत्व विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था। एक ख़लीफ के लिए इस विशाल क्षेत्र पर शासन करना संभव नहीं था। इसीलिए खलीफ़ा से अनुमोदन लेकर विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न व्यक्ति शासन करते थे- ठीक इसी तरह भारतवर्ष अथवा हिन्दुस्तान में शासक थे- सुलतान। लेकिन ऐसा नहीं है कि सुलतान खलीफा की सारी बातें मानते ही थे। वैसे सुलतान कौन बनेगा इसको लेकर बीच-बीच में झमेले बढ़ जाते थे। मान लिया जाये कि किसी तुर्की सेनापति ने काफी क्षेत्र जीत लिया है। उस क्षेत्र में वो खुद शासन करना चाहता है। तभी वे सेनापति ख़लीफ़ा के पास उपहार भेजकर सुलतान बनने की अर्जी करता था। इसका मतलब ख़लीफ़ा के अनुमोदन का कम से कम सम्मान था। उस अनुमोदन को दूसरे रद्द नहीं कर सकते थे। दिल्ली सल्तनत में भी झमेला खड़ा हुआ। गजनी के शासन के रूप में ताजउद्दीन इयालदूज ने दिल्ली पर भी अधिकार करना

कुछ बातें

शासकों की उपाधि

राजा सम्राट, सुल्तान- ये सभी शब्द शासकों की उपाधि है। शासक के धर्म एवं देश और शासन के अधिकार में हेरफेर से इन उपाधियों का प्रयोग बदल जाया करता था। जैसे, राजा हुए राज्य के शासक। 'राजा' शब्द संस्कृत से आया है। इसीलिए भारतवर्ष में गैर मुस्लिम शासकों को मुसलमान कहा जाता था। जो राजा अनेक राज्यों पर विजय प्राप्त कर विशाल क्षेत्र के शासक बन जाते थे, उन्हें सम्राट कहा जाता था। वे साम्राज्य के शासक होते थे। साम्राज्य एक विशाल क्षेत्र को कहा जाता है। उस पूरे क्षेत्र की देख-रेख का दायित्व सम्राट का होता था। एक साम्राज्य के भीतर राज्य भी हो सकता है। राजा सम्राट के मुकाबले सम्मान और अधिकार में छोटा होता है। सुलतान तुर्की थे। इसीलिए राजा या सम्राट उपाधि न रखकर सुलतान उपाधि रखा। इसीलिए कुतुब्बुद्दीन ऐबक सुलतान है, राजा नहीं।

चाहा। कुतुब्बुद्दीन इस पर राजी नहीं हुआ। गजनी के साथ दिल्ली के सारे सम्पर्क बंद हो गए।

लेकिन कुतुब्बुद्दीन का दामाद इल्तुतमिश जब सुल्तान बना (इकाई ४.३ देखें) तब झमेला और बढ़ गया। एक तो इल्तुतमिश कुतुब्बुद्दीन का दामाद था, पुत्र नहीं। उस पर मुल्तान से आकर नसिरुद्दीन ने लाहौर और पंजाब के कुछ अंश पर कब्जा कर लिया। अन्य क्षेत्रों पर भी शक्तिशाली तुर्कों (इन्हें 'आमिर' कहा जाता था) ने प्रभुत्व जमाना शुरू किया। इस प्रकार इल्तुतमिश मुसीबत में फँस गए। कोई भी उसे दिल्ली का सुलतान मानने को तैयार नहीं था। वे उसके अधिकार पर भी प्रश्न उठाने लगे।

तब इल्तुत्मिश ने दिल्ली पर अपना अधिकार जमाए रखने के लिए ख़लीफ़ा के अनुमोदन की अर्जी की। खलीफा के पास भिन्न-भिन्न उपहार भेजें। इसके बदले में बगदाद के खलीफा ने दूर वाश और खिलाफत पठान और दिल्ली सल्तनत पर इल्तुत्मिश के प्रभुत्व का अनुमोदन किया।

कुछ बातें

खलीफाओं का अनुमोदन

इल्तुतमिश को खलीफा का अनुमोदन १९२९ ई. में मिला। सुलतान अपनी मुद्रा पर 'खलीफा के प्रतिनिधि' के रूप में अपनी खुदाई करवाते थे। हर शुक्रवार के नमाज में खलीफा का नाम लिया जाता था। मुहम्मद-बिन-तुगलक ने पहली बार अपने शासनकाल में मुद्रा पर खलीफा का नाम खुदवाना बंद कर दिया। बाद में बार-बार होने वाले विद्रोहों से परेशान होकर उसने फिर अपनी मुद्रा पर खलीफा के नाम की खुदाई करने का आदेश दिया। खलीफा से अनुमोदन-पत्र भी मँगवा लेते हैं।

फिरोजशाह तुगलक को दो बार ख़लीफ़ा का अनुमोदन प्राप्त हुआ। इसके बाद भारत में खलीफा से अनुमोदन सेवा प्राय: बंद हो गया और मुगल बादशाह भारत के बाहर मर्यादा और क्षमता में अपने समान किसी को नहीं मानते थे।

इस प्रकार जब भी शासन और अधिकार की वैधता पर प्रश्न उठता था तब दिल्ली के सुल्तान खलीफा की अधीनता स्वीकार करते हुए उससे अनुमोदन मांगते थे। वैसे, काम करने की बात हो तो दिल्ली के सुलतान प्राय: चरम क्षमता के अधिकारी थे। कोई भी खलीफा हिंदुस्तान के मामले में नहीं पड़ते थे। इसी तरह दिल्ली सल्तनत अपनी तरह भारतवर्ष अथवा हिंदुस्तान पर प्राय: तीन सौ बीस वर्षों तक शासन कर पाया था।

कुछ बातें

खुतबा

वास्तव में खुतवा शब्द का अर्थ है भाषण। किसी सुल्तान के शासनकाल में मस्जिद के इमाम एक भाषण देते थे। शुक्रवार के नमाज (जोहर का नमाज) के बाद सबके सामने यह भाषण अथवा खुतबा पढ़ा जाता था। इसमे तत्कालीन खलीफा और सुल्तान के नाम का उल्लेख होता था। इसके साथ ही सुलतान जिस नियम से शासक बने उसे बार-बार बताया जाता था।

शब्दों के अर्थ

आमिर : ऊँचे वंश में जन्मा बड़े घराने का व्यक्ति। वैसे दिल्ली के सुलतानों के शासन के इतिहास में शासन-प्रशासन के कामकाज में नियुक्त विशिष्ट व्यक्तियों को आमिर कहा जाता था। आमिर शब्द का बहुवचन है उमराह (आमिर गण)

दूरवाश : स्वाधीन शासन का प्रतीक दण्ड

खिलात : आनुष्ठानिक पोशाक

४.३ दिल्ली सल्तनत : तेरहवीं शताब्दी का प्रथम भाग

कुतुब्बुद्दीन ऐबक (१२०६-१० ई.) के समय दिल्ली में तुर्की शासन स्वाधीन रूप से विकसित होना शुरू हुआ। शुरू में तुर्की सुलतान थे इलबारी तुर्की। इसके बाद इल्तुत्मिश (१२११-३६ई.) के समय दिल्ली सल्तनत के सामने तीन प्रधान समस्याएँ थीं। पहली समस्या थी साम्राज्य में वैसे विद्रोहों का दमन किया जाये? दूसरी समस्या थी- मध्य एशिया के प्रचंड मंगोल शक्ति से कैसे मुकाबला किया जाये? और तीसरी समस्या थी- सल्तनत में कैसे एक राजवंश की वंशावली तैयार की जाये, जिससे उनकी मृत्यु के बाद उनके उत्तराधिकारी बिना किसी झमेले के सिंहासन पर बैठ जाये? इल्तुत्मिश क्रमशः युद्ध करते हुए विद्रोहियों का दमन करता है। वह कूटनीतिक ढंग से मंगोलों से सीधे युद्ध की संभावना से बच जाता है (इकाई ४.७.१ देखें)। इसके अलावा उसने एक राजवंश तैयार कर दिया था। दिल्ली की साधारण जनता के मन में वह वंशगत शासन की एक धारणा तैयार कर पाया था। उसके वंश के शासकों ने उसकी मृत्यु के बाद तीस वर्ष शासन किया था।

इल्तुतमिश की सार्थक उत्तराधिकारी थी रजिया सुलतान। उसका शासनकाल (१२३६-४०ई.) दिल्ली सल्तनत के इतिहास में दो तरह से उल्लेखयोग्य है। पहली और आखिरी बार ऐसा हुआ कि एक स्त्री दिल्ली के सिंहासन पर बैठी। दूसरा, सुलतान और तुर्की अभिजात अर्थात् चिश्लगानी के सदस्यों के बीच के संपर्क ने जटिल रूप ले लिया। इल्तुत्मिश की संतानों में रजिया सबसे योग्य थी। किसी स्त्री के सिंहासन पर बैठने को लेकर अभिजात वर्ग के ने आपत्ति की थी। इल्तुत्मिश का एक पुत्र कुछ दिन के लिए शासक बना था। फिर भी अंततः रजिया ही इल्तुत्मिश की वास्तविक उत्तराधिकारी साबित हुई।

रजिया सैनिकों, अभिजातवर्ग के एक अंश और दिल्ली की साधारण जनता के समर्थन से सिंहासन पर बैठी थी। उलेमा की आपत्ति के बावजूद रजिया ने गैर-मुस्लिम पर से जजिया कर हटा लिया था।

दूसरी तरफ, तुर्की अभिजात वर्ग को लगा रजिया गैर-तुर्की अभिजात वर्ग को अधिक महत्व दे रही हैं। इसका फल यह हुआ कि दिल्ली के बाहर जो तुर्की अभिजात वर्ग था उसने पूरी तरह से रजिया का विरोध शुरू किया। इसके अलावा राजपूत शासक भी उसका विरोधी था। रजिया ने कुछ विद्रोहों को दमन किया। इसके बावजूद उसका शासन साढ़े तीन साल से अधिक नहीं टिका।

देश का शासन चलाया हो ऐसी और कई स्त्री शासकों का नाम खोजें। जरुरत पड़ने पर घर के बड़ों अथवा शिक्षक/शिक्षिकाओं की सहायता लें।

कुछ बातें

रजिया सुलतान

स्त्री होने के बावजूद रजिया की उपाधि है सुलतान, सुलताना नहीं। अरबी भाषा में सुलताना का अर्थ है सुलतान की स्त्री। रजिया ने अपने मुद्रा पर अपने को सुलतान कहा। उस युग के एक इतिहासकार मिनहाज-उर-सिराज ने रजिया का उल्लेख सुलतान के रूप में ही किया है।

मानचित्र ४.१

दिल्ली सल्तनत : तेरहवीं शताब्दी का अंतिम भाग

मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है।

४.४ सल्तनत का विस्तार और स्थायित्व : गयासुद्दीन बलबन

१२४० ई. में रजिया सुलतान की मृत्यु हुई। इसके बाद कई वर्ष तक दिल्ली के तुर्की अभिजात वर्ग के साथ सुलतान इल्तुत्मिश के वंश वालों की क्षमता दखल की लड़ाई हुई। इल्तुत्मिश के पुत्र नसीरुद्दीन महमूद शाह के शासनकाल (१२२६-६६ ई.) में तुर्की आमिर शक्तिशाली हो उठा था। उसका नाम कियामुद्दीन बलबन था। १२६६ ई. में वह खुद ही सुलतान बन गया। यहीं इल्तुत्मिश के वंश का पतन हो गया। और एक नया अध्याय शुरू हुआ। इसके बाद बलबन और उसके उत्तराधिकारियों ने प्राय: साढ़े तीन दशक तक शासन किया। कुतुब्बुद्दीन ऐबक से शुरू कर बलबन एवं उसके उत्तराधिकारी सुलतान इलबारी तुर्क थे। वे मामेलूक (दास) नाम से भी जाने जाते थे।

कुछ बातें

तुर्कान-ई चिहलगानी अथवा बन्देगान-ई चिहलगानी

तुर्कान-ई-चिहलगानी शब्द का अर्थ है- चालिस तुर्क व्यक्ति अथवा चालिस तुर्की परिवार। ये तेरहवीं शताब्दीं में शक्तिशाली हो गए थे।

बन्देगान-ई-चिहलगानी शब्द का अर्थ है चालिस बंदे। बंदा मतलब सेवक या अनुरागी। इन्हीं दो बातों द्वारा इल्तुत्मिश के अनुयायी योद्धाओं को समझाया जाता। नाम से तुर्क होने के बावजूद ये सब जातिगत रूप से तुर्की नहीं थे। साम्या में भी वे चालीस लोगों से अधिक थे। तेरहवीं शताब्दीं में ये ही सल्तनत कालीन शासन व्यवस्था के प्रधान स्तंभ थे। इन्हीं में से गयासुद्दीन बलबन बाद में सुलतान बने।

बलबन ने एक शक्तिशाली केन्द्रीभूत शासन प्रतिष्ठित किया। इस वक्त दिल्ली सल्तनत की प्रधान समस्या थी आंतरिक विद्रोह। बलबन ने बड़ी क्रूरता से उसका दमन किया था। राजतंत्र की मर्यादा बढ़ाने के लिए उसने दरबार में सजदा और पाइबस प्रथा चालू किया था। अभिजात वर्ग से सुलतान की क्षमता अधिक है यही प्रदर्शित करने के लिए ये प्रथाएँ चालू की गई।

दिल्ली सल्तनत में जब ये घटनाएँ घट रही थीं वह समय तेरहवीं शताब्दी का था। इस दशक में गंगा और यमुना के मध्यवर्ती दो इलाके में सल्तनत शासन की नींव पक्की हुई। जंगल काटकर, शिकारी और पशु पालकों को खदेड़कर सुलतान ने इस इलाके में कृषि पर आधारित अर्थ व्यवस्था को मजबूत किया। उन्होंने कृषकों में जमीन का वितरण किया। नए-नए शहर व दुर्ग बने।

सल्तनत और उत्तराधिकार

सल्तनत के प्रधान शासक हैं सुलतान। लेकिन किसी सुलतान की मृत्यु के बाद सिंहासन पर कौन बैठेगा इसको लेकर काफी समस्या होती। इल्तुत्मिश के बाद से अलाउद्दीन खिलजी के सिंहासन पर बैठने के समय (१२९६ई.) के बीच साठ वर्ष बीत गए। इन साठ वर्षों में दस सुल्तानों ने दिल्ली पर शासन किया। उत्तराधिकारी का कोई साधारण नियम इस समय नहीं था। इसी कारण बार-बार शासक बदले। शासन की नींव हिल गयी। वर्तमान सुलतान के संतान अथवा उसके वंशज परवर्ती सुलतान बनेंगे कि नहीं यह निश्चित नहीं था। अभिजात वर्ग ने विद्रोह कर पहले के सम्राटों के वंशजों को हटाकर खुद शासक बन गए। तेरहवीं शताब्दीं में दिल्ली सल्तनत में ऐसी घटना एकाधिक बार घटी।

४.५ दक्षिण में सल्तनत विस्तार : अलाउद्दीन खिलजी

शुरू में तुर्की सुलतानों के शासन काल में उत्तर भारत के गंगा की बेसीन में सल्तनत शासन की नींव मजबूत हुई थी। इसके बाद सुलतानों ने दक्षिण की तरफ साम्राज्य विस्तार पर ध्यान दिया। अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली के पहले सुलतान है जिन्होंने दक्षिण भारत में सल्तनत का साम्राज्य विस्तार किया। इस अभियान में उनके सेनापति मलिक काफूर ने इस अभियान का नेतृत्व किया था। (मानचित्र ४.२ देखें)

कुछ बातें

खिलजी विद्रोह

१२९० ई. में जलाउद्दीन फिरोज ने बलबन के वंशजों को सत्ता से हटाकर सुलतान बना। इस घटना को खिलजी विद्रोह कहा जाता है। इसके फलस्वरूप इलबारी तुर्की अभिजात वर्ग की सत्ता छिन गई। जिससे खिलजी, तुर्की और हिंदुस्तानियों की क्षमता बढ़ गयी थी।

मानचित्र ४.२ : अलाउद्दीन का सैनिक अभियान

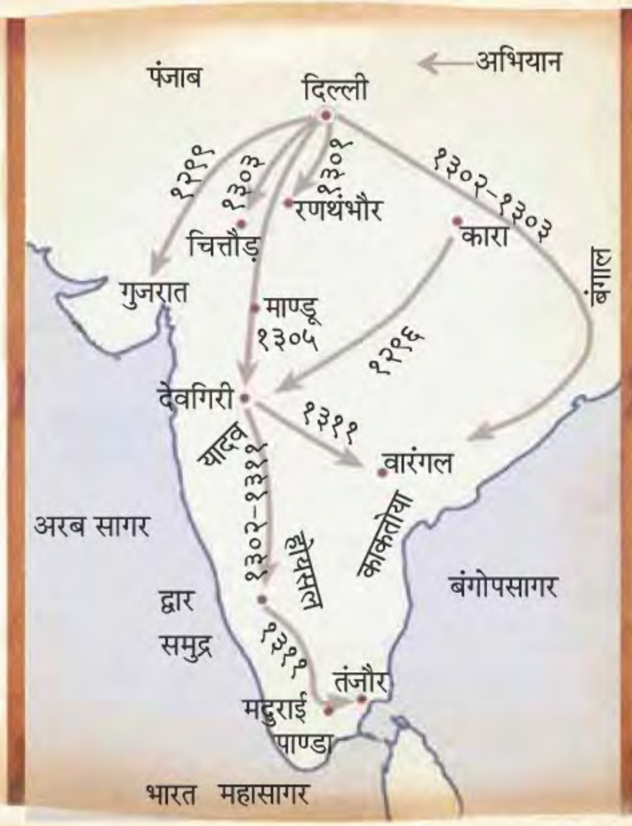

मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है।

अब जरा सोचो

उत्तर और दक्षिण भारत के इस विशाल इलाके पर सुलतान कैसे शासन करते होंगे ? इस बारे में जानने के लिए पढ़े 'सुलतानों का नियंत्रण' शीर्षक अंश (इकाई ४.७.१ से इकाई ४.७.३)

ऊपर के मानचित्र में कितने स्थानों का नाम है ? इन स्थानों में किस-किस स्थान का नाम अभी भी वही है भारत के वर्तमान मानचित्र से मिलाकर देखें। शिक्षक/शिक्षिका से सहायता ली जा सकती है।

४.६ दिल्ली सल्तनात : चौदहवीं तथा पंद्रहवीं शताब्दी

चौदहवीं शताब्दी के प्रथम बीस साल खिलजी सुलतानों ने दिल्ली पर शासन किया। इसके बाद तुगलक वंश के सुलतान गयासुद्दीन तुगलक के बड़े बेटे मुहम्मद-बिन-तुगल१क का शासनकाल (१३२४-५१ ई.) उल्लेखयोग्य है। इस समय उत्तर अफ्रीका के मोरक्कों देश के तांजिया शहर के वासी इबन बतूता यहाँ आए थे। उनके ग्रंथ का नाम अल-रिहला या किताब-उर-रिहला है। यह ग्रंथ मुहम्मद-बिन-तुगलक के युग के संबंध में जानकारी का एक महत्वपूर्ण सूत्र है।

कुछ बातें

इब्न बतूता के वर्णन में भारत

इब्नबतूता की किताब में मुहम्मद-बिन-तुगलक के शासन काल की संचार व्यवस्था

"भारत के डाक में चिट्ठी-पत्र के व्यवहार की दो तरह की व्यवस्थाएँ हैं। घोड़े के डाक की व्यवस्था को 'उलाक' कहा जाता है। इस व्यवस्था में ही चार मील पर घोड़ा रखा जाता है। डाक की पैदल व्यवस्था को 'पाउआ' कहा जाता है। इस व्यवस्था में एक मील के प्रति तिहाई हिस्से पर घने आबादी वाला एक गांव होता है। गांव के बाहर तीन तंबू होता है। इस तंबू में डाकिया कमर बांधकर रवाना होने के लिए तैयार रहते हैं। इनमें से प्रत्येक के हाथ में दो हाथ लंबी एक लाठी हुआ करती है। हर लाठी के छोर पर तांबे की कई घंटिया बँधी होती हैं। डाकिया-जब शहर से पत्र लेकर रवाना होता है तो उसके एक हाथ में चिट्ठियाँ और दूसरे हाथ में यही घंटियों वाली लाठी हुआ करती है। ये चिट्ठियाँ और लाठी लेकर वे लगभग दौड़ते रहते हैं। .... देश में किसी नए व्यक्ति के आगमन की खबर गुप्तचर विभाग के लोग पत्र के माध्यम से सुलतान को सूचित करते थे। उस चिट्ठी में आगंतुक का नाम, शरीर की बनावट और पोशाक वगैरह का वर्णन, उसके साथियों की संख्या, नौकर-चाकर, घोड़ा इत्यादि का वर्णन हुआ करता था। रास्ते पर चलते वक्त अथवा विश्राम के वक्त उनके व्यवहार की बातें भी इस चिट्ठी के माध्यम से सूचित की जाती थी।

मानचित्र ४.३
इब्नबतूता के भारत भ्रमण

कुछ बातें

तुगलक के कांड

आज भी किसी व्यक्ति के मनमौजी आचरण को तुगलकी कांड कहा जाता है। इसी कारण मोहम्मद-बिन-तुगलक को 'पागल बादशाह' कहा जाता है और उनके कार्यों को कहा जाता है तुगलकी कांड।

आप भी क्या ऐसा ही सोचते हैं? **निम्नलिखित अंशों को पढ़कर समझने की कोशिश करें :**

• घर में ही कर वसूली के लिए सुलतान ने दोआब क्षेत्र का कर बढ़ा दिया था। बारिश की कमी की वजह से वहाँ के फसलें नष्ट हो गयी थीं। प्रजा यह अतिरिक्त कर न चुका पाई। इस कारण उन्होंने विद्रोह किया। सुलतान ने यह अतिरिक्त कर माफ कर दिया। नष्ट हो चूंकि फसलों की क्षतिपूर्ति की। कृषकों की सहायता के लिए सुलतान ने तकाभि ऋण की व्यवस्था की।

• दिल्ली निवासियों के विरोध और मंगोल आक्रमण से बचने के लिए तथा दक्षिण पर शासन करने के लिए मुहम्मद-बिन-तुगलक ने देवगिरी को नयी राजधानी बनाई। उस शहर का नया नाम रखा गया दौलताबाद। सुलतान के आदेश पर लोग दिल्ली से दौलताबाद चल पड़े। इस लम्बे सफर में बहुत से लोगों की मृत्यु हो गयी। कुछ वर्षों बाद सुलतान ने पुनः दिल्ली को ही राजधानी बनाया।

• सोना और चाँदी जैसे मूल्यवान धातुओं की कमी से निपटने के लिए सुलतान ने ताँबे की मुद्रा चलाई। उस मुद्रा

की नकली व्यवस्था न हो पाये इसके लिए सुल्तान ने कोई उपाय नहीं किया। ताँबे की नकली मुद्रा बनने लगी। इस जालसाजी को रोकने के लिए सुलतान को राजकोष से इन नकली मुद्राओं के बदले सोने और चाँदी की अनेक मुद्रा व्यय करनी पड़ी।

मुहम्मद-बिन-तुगलक ने कई निम्न जाति के लोगों तथा, साधारण व्यक्तियों को प्रशासन के ऊँचे पदों पर नियुक्त कर दिया। इनमें से एक शराब बनाता था, एक था नाई, एक था रसोइया और दो माली थे। तुर्की अभिजात वर्ग की क्षमता को नियंत्रित करने के लिए सुलतान ने इस तरह के साधारण हिंदुस्तानियों पर भरोसा किया।

- मुहम्मद-बिन-तुगलक के कार्यों में तुम्हें कौन-कौन सा पक्ष ठीक लगता है?
- क्या आपको लगता है कि सुलतान ने गलतियाँ की थी। कौन-कौन सी गलतियाँ की थी?
- यदि आप उस युग में नयी राजधानी बनाते तो किस तरह की तैयारियाँ करते?
- देश की मुद्रा के साथ जालसाजी होने पर किस तरह की असुविधाँए हो सकती हैं?
- मुहम्मद-बिन-तुगलक ने लगभग सात सौ वर्ष पहले शासन किया। इतने वर्षों बाद भी उनके क्रिया-कलापों से हम क्या-क्या सीख सकते हैं?
- अपनी कक्षा में एक वाद-विवाद प्रतियोगिता की आयोजन करें। शिक्षिका/शिक्षकों से कहकर सहपाठियों के छोटे-छोटे दल बना लें और सुलतान मुहम्मद-बिन-तुगलक के क्रिया-कलापों के पक्ष-विपक्ष में तर्क संगत बहस करें।

मुहम्मद-बिन-तुगलक के उत्तराधिकारी फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में एक तरफ काफी युद्ध हुए तो दूसरी तरफ जनकल्याण के भी काफी काम हुए। निरंतर युद्ध के बावजूद दिल्ली सल्तनत से मुक्त हो चुके क्षेत्रों पर पुनः सल्तनत का प्रभुत्व स्थापित नहीं कर सका। इससे यह स्पष्ट होता है कि वे निपुण योद्धा नहीं थे।

कुछ बातें

फिरोज शाह का सैनिक अभियान

फिरोज शाह के सैनिक अभियान का एक मुख्य उद्देश्य था दास इकट्ठा करना। फिरोज शाह के १,८०,००० दास थे। उनके लिए एक अलग दफ्तर खोला गया था। रक्षा वाहिनी में, कारखानों में विभिन्न दफ्तरों में दासों को नियुक्त किया जाता और वेतन दिया जाता था। इस तरह सुलतान एक अनुचर वाहिनी बनाना चाहता था।

४.४ मानचित्र के साथ इस मानचित्र की तुलना करें। इस मानचित्र के नए राज्यों की एक सूची बनाओ।

चित्र ४.५ : सोलहवीं शताब्दी का भारतवर्ष

मानचित्र स्केल अनुसार नहीं है

सैयद एवं लोदी सुलतानों के शासनकाल में (१४१४-१५२६ ई.) दिल्ली - सल्तनत आकार काफी छोटा हो गया था। जौनपुर, गुजरात, मालवा और बंगाल में स्वाधीन सल्तनत की स्थापना हो गयी थी। मेवाड़ राजपूताना और आलवार तथा दोआब के हिंदू शासकों ने सल्तनत के शासन को परेशान कर रखा था। इसके अलावा कश्मीर भी स्वाधीन राज्य था। वैसे सुलतान

बहलोल लोदी के शासनकाल में (१४५१–८९ ई.) जौनपुर दिल्ली सल्तनत में शामिल हो गया।

अफगानी सुलतानों के शासन की उल्लेखयोग्य विशेषता है कि इस समय राजतंत्र को लेकर काफी प्रयोग हुए। सैयद वंश के स्थापक खिज्र खाँ (१४१४–२१ ई.) ने कभी सुलतान की उपाधि धारण नहीं की। उसने एक तरफ तुर्क-मंगोल शासकों की अधीनता स्वीकार की थी। दूसरी तरफ अपने राज्य में वह मुद्रा चालू रखी जिस पर तुगलक शासकों के नाम खुदे होते थे। मध्यकालीन भारत में इस तरह की घटना न इसके पहले कभी घटी न इसके बाद में।

लोदी सुल्तानों के शासनकाल में (१४५१–१५२६ ई.) सुल्तानों की क्षमता थोड़ी बढ़ी थी। सुलतान बहलोल लोदी ने अफगानों की प्राचीन परंपरा के अनुसार अन्य अफगान सरदारों के साथ राजगद्दी बाँट ली थी। किन्तु लोदी अफगानों की क्षमता घटाना भी उसका उद्देश्य था। पास के जौनपुर राज्य पर कब्जा इसी का नमूना था। परवर्ती शासक सिंकदर लोदी (१४८९–१५१७ ई.) बहलोल लोदी की तरह अन्य अफगान सरदारों के साथ शक्ति बँटवारे की नीति के विश्वासी नहीं था। अफगान सरदारों को सूचित कर दिया गया कि वे सिर्फ सुलतानों के नियंत्रण के अधीन है। सुलतान की मर्जी पर ही सब कुछ निर्भर है। इसी प्रकार उसने अफगान सरदारों और साधारण जनता दोनों पर अपनी सार्व भौमक सत्ता स्थापित की।

याद रखें

सैयद और लोदी शासक अफगानी थे। इसके पहले के शासक तुर्की थे। इसलिए सल्तनत के शासन को एक साथ तुर्की अफगानी शासन कहा जाता है।

तालिका ४.१ : दिल्ली सल्तनत के शासन पर एक नजर

शासन	शासन काल	प्रधान शासक
मामेलुक (दास)	१२०६–१२९० ई.	कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, रजिया, गयासुद्दीन बलबन
खिलजी	१२९०–१३२० ई.	जल्लालुद्दीन खिलजी अल्लाउद्दीन खिलजी
तुगलक	१३२०–१४१२ ई.	मुहम्मद-बिन-तुगलक फिरोज शाह तुगलक
सैयद	१४१४–१४५१ ई.	खिज्र खाँ
लोदी	१४५१–१५२६ ई.	बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी

कुछ बातें

पानीपत का प्रथम युद्ध

१५२६ ई. में बाबर और इब्राहिम लोदी के बीच पानीपत में युद्ध हुआ। इस युद्ध में बाबर ने तुर्कों से सीखी एक युद्ध कला का व्यवहार किया था। इसे 'रुमी' कला कहा जाता है। मुगलों के घुड़सवार और तीरंदाज सैन्यदल काफी महत्वपूर्ण थे। इनके अलावा उनके पास गोलंदाज वाहिनी भी थी। बाबर के सैनिकों की संख्या लोदी की अपेक्षा कम थी। लेकिन बाबर युद्ध कौशल में निपुण थे। युद्ध में ही इब्राहिम लोदी की मृत्यु हो गयी और दिल्ली व आगरा में मुगलों का शासन स्थापित हुआ।

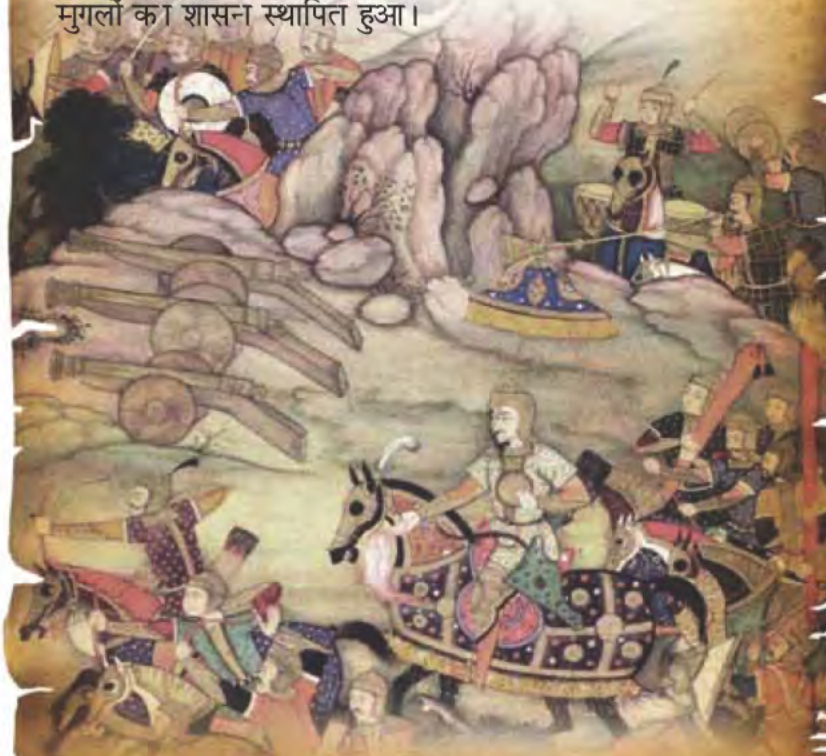

चित्र ४.२ : पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की सेना। यह चित्र 'बाबर नामा' से लिया गया है। इस चित्र में किन-किन हथियारों का व्यवहार हुआ है?

४.७.१ सुलतानों का नियंत्रण : सैनिक नियंत्रण

भारत के उत्तर-पश्चिम सीमा से आक्रमणकारी बार-बार भारत आए। तेरहवीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक (१२१८-२४ ई.) में मंगोल नेता चंगेज खाँ के पश्चिम-मध्य एशिया पर प्रचंड आक्रमण के सामने उस इलाके के राष्ट्र कमजोर हो गए थे। भारत पर भी मंगोलों के आक्रमण की आशंका बढ़ी। उस

किसी समय दिल्ली सल्तनात का शासक इलतुत्मिश था। बाद में यह आशंका चौदहवीं शताब्दी में भी बनी रही। मंगोल आक्रमण से जुड़ी दिल्ली के सुलतानों में सबकी नीति एक सी नहीं थी। अब देखते हैं कि सुलतानों ने इस शक्ति का सामना कैसे किया।

१२२१ ई. से उत्तर-पश्चिम सीमा से बार-बार मंगोलों का आक्रमण हुआ। उस आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में सिंधु नदी भारत के पश्चिमी सीमांत के रूप में चिह्नित हुआ। इल्तुत्मिश मंगोलों से प्रत्यक्ष युद्ध में न पड़कर दिल्ली सल्तनत को बचाया।

चंगेज की मृत्यु के बाद मंगोलों का राज्य एकाधिक भागों में बँट गया। वे उस समय पश्चिम एशिया को लेकर व्यस्त थे। इसी मौके का फायदा उठाकर दिल्ली के सुलतानों ने अपनी क्षमता में वृद्धि की। ऐसे में उन्हें एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था और स्थायी सैन्य शक्ति निर्माण का समय मिल गया। इसी के फलस्वरूप परवर्ती समय में मंगोल आक्रमण को रोकने में सफलता मिली।

गयाउद्दीन बलबन के मंत्रीकाल (१२४६-६६ ई.) में पंजाब के लाहौर और मुलतान दोनों शहर मंगोलों के आक्रमण के सम्मुख पड़ गए। दिल्ली सल्तनत की पश्चिमी सीमा पूर्व की ओर थोड़ी और सरक गयी थी। झेलम नदी के बदले थोड़ा और पूर्व की ओर विपाशा नदी नयी सीमा बन गयी थी। बलबन ने सुलतान बनने के बाद (१२६६-८७ ई.) ताबरहिंद (भटिण्डा), सुनाम और सामाना दुर्ग की रक्षा की। विपाशा नदी पर बार-बार सैनिकों को तैनात किया। वह खुद दिल्ली में तैनात रहा। इसी के साथ उसने एक कूटनीतिक चाल के तहत एक दूत मंगोलों के पास भेजा। १२८५ ई. में मंगोलों के साथ युद्ध में बलबन के बड़े पुत्र युवराज मोहम्मद की मृत्यु हो गयी।

अलाउद्दीन खिलजी के समय (१२९६-१३१६ ई.) दिल्ली पर दो बार आक्रमण हुआ (१२९९/१३०० ई. और १३०२-०३ ई.)। सुल्तान ने विशाल सैन्य दल का गठन किया। सैनिकों के रहने के लिए सिरि नामक एक नए शहर का निर्माण किया। इस सैन्य दल की रसद (खाद्य समग्री) की पूर्ति के लिए दो दोआब के किसानों पर अतिरिक्त कर थोपा गया। अलाउद्दीन ने दुर्ग निर्माण, सैन्यगठन और मूल्य नियंत्रण कर बड़ी सफलता से मंगोल आक्रमण का मुकाबला किया।

मोहम्मद-बिन-तुगलक के शासन काल में १३२६-२७/१३२८ ई. उत्तर-पश्चिम सीमांत पर मंगोलों का आक्रमण हुआ। सुलतानों ने मंगोलों को खदेड़ कर उत्तर-पश्चिम सीमांत पर कलनौर और पेशावर सीमांत मजबूत किया। उसने मध्य एशिया पर आक्रमण की कल्पना की और सैनिकों की एक विशाल टुकड़ी तैयार की। शहर के निवासियों को उसने दक्षिण की ओर दौलतावाद भेज दिया। सैनिकों को वेतन देने के लिए दोआब क्षेत्र पर अतिरिक्त कर लगाया। अंततः उसकी मध्य एशिया पर आक्रमण की परिकल्पना व्यर्थ हो गयी। सैनिकों की इस विशाल टुकड़ी को नष्ट कर देने को बाध्य हुआ मोहम्मद-बिन-तुगलक ।

४.७.२ सुलतानों का नियंत्रण : प्रशासनिक नियंत्रण

सल्तनात का प्रधान खुद सुलतान होता था। युद्ध के नियम-कानून, न्याय, शासन-प्रशासन सारी क्षमता सुल्तान के हाथों में होती थी। इन सभी कामों को देखना एक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। इसीलिए सुलतान मंत्रियों और कर्मचारियों को नियुक्त करते थे। सभी को सुलतान के अधीन काम करना पड़ता था। सुलतान का आदेश ही अंतिम हुआ करता था। इस प्रकार जिस प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माण हुआ था। उसके केन्द्र में था सुलतान। इसी को शासन व्यवस्था कहा जाता है।

कभी-कभी सुलतान की गद्दी के लिए झगड़े हुआ करते थे। इसलिए जिसको गद्दी मिलती उसकी कोशिश होती कि उसपर कोई प्रश्न न उठा सके । इसके लिए सुल्तान अपने को सबसे अलग रखते थे। न्याय में काफी सख्ती बरती जाती थी। न्याय-प्रक्रिया, अमीर-गरीब, अभिजात या साधारण मनुष्य में किसी प्रकार का भेद भाव नहीं होता था।

जो सुलतान जितनी बेहतरी से इन सभी क्षेत्रों को संभालता। उसका शासन उतना अधिक टिकता था। बलबन के शासन से सुलतानों की शक्ति और मर्यादा में वृद्धि होती रही। सुलतान का निर्णय ही अंतिम होता था। उससे आगे कोई कुछ नहीं बोल सकता था क्योंकि किसी भी तरह का विरोध करने पर उसे सजा दी जाती। अतः अभिजात (अमीर) वर्ग के लोग अब सुलतानों की शक्ति व मर्यादा पर प्रश्न नहीं उठाते थे। अलाउद्दीन के शासनकाल में विरोधियों का बड़ी कठोरता से दमन किया गया था। लेकिन, सुलतानों का शासन अलग हो जाने पर अभिजात वर्ग की शक्ति में वृद्धि हो जाती है।

कुछ बातें

सल्तनत के नियम कानून

गयासुद्दीन बलबन चालीस चक्र अथवा बदेगान-ई-चिह्न लगाने के सदस्य थे। बाद में जब वह सुल्तान बना, तब उसने ऐसे कई नियम लागू किए जिससे कोई उसके अधिकारों को लेकर प्रश्न न कर सके। ऐसा सुनने में आता है कि बलबन खूब चमकीले कपड़े पहन कर दरबार में आया करता था। किसी तरह की हँसी-मजाक या हल्की बातों को बर्दाशत नहीं करता था। दरबार में काफी गंभीरता से प्रशासन संबंधी काम-काज देखता था। सुलतान को दरबार-चलाते देख अतिथियों को डर लगता था। अलाउद्दीन और मोहम्मद-बिन-तुगलक दोनों की नीति एक ही थी। चमकीले ढंग से सजे सभा में सबसे कीमती पोशाक धारण किए हुए गंभीर सुलतान को देखकर कोई भी पहचान सकता था।

सुलतान को अभिजात वर्ग के अलावा उलेमा के साथ भी अच्छे सर्म्पक रखने पड़ते थे। जिस प्रकार राजा को परामर्श दिया करते थे पुरोहित, उसी प्रकार सुलतानों को परामर्श देते थे उलेमा। वैसे सुलतान उलेमा की बात नहीं मानते थे। सुलतानों की प्रजा में हिंदू-मुसलमान सभी थे। इसलिए सुलतान सुचारू ढंग से शासन करने के लिए जो जरूरी समझते वही करते थे। इस बात पर उलेमा के साथ सुलतानों की ठनती थी। सुलतान उलेमा को बीच-बीच में दण्ड भी दिया करते थे।

वैसे अपनी शक्ति बरकरार रखने के लिए सुलतान को आमिर और उलेमाओं के समर्थन की जरुरत होती थी। इसीलिए कई तरह के उपहार और सम्मान प्रदान कर सुलतान उन्हें अपनी ओर रखते थे।

सैनिकों के हाथों में भू-कर और प्रशासनिक दायित्व- इक्ता व्यवस्था

सल्तनत का शासन शुरू में पूरी तरह सैन्य शक्ति पर निर्भर था। परवर्ती सुलतान भी सैन्य शक्ति को प्रशासन का प्रधान स्तंभ मानते थे। लेकिन उन्होंने धीरे-धीरे एक सुदृढ़, केन्द्रीय प्रशासन तैयार किया। निर्दिष्ट क्षेत्रों के अधिकारियों को सुलतान के आदेश पर कर वसूली का अधिकार मिलता था।

दिल्ली के सुलतानों ने साम्राज्य का आयतन क्रमश: बढ़ाया था। अधिकार में आए नये क्षेत्रों से कर वसूली की जरूरत थी। शांति बनाए रखने की भी जरूरत थी। सुलतानों ने जिन राज्यों पर विजय पायी, उन राज्यों को एक-एक प्रदेश के रूप में मान लिया गया। इन प्रदेशों को इक्ता कहा जाता था। इक्ता के अधिकार में होता था एक सेनापति। उसको इक्तादार या मुक्ति या वालि कहा जाता था। इक्ता को छोटा और बड़ा दो भागों में विभाजित किया गया। छोटे इक्ता का शासक सिर्फ सैन्य दायित्व का पालन करता था और बड़े इक्ता के शासकों को सैन्य दायित्व के साथ-साथ प्रशासनिक दायित्व का पालन भी करना पड़ता था। सैन्य वाहिनी की देखभाल करना, अतिरिक्त कर सुलतान तक पहुँचाना शांति बनाए रखने इत्यादि का दायित्व भी बड़े इक्ता के शासक को लेना पड़ता था। इक्तादार पूर्णत: सुलतान के नियंत्रण में थे।

कुछ बातें

उलेमा

अरबी भाषा में इल्म का अर्थ होता है ज्ञान। अलिम माने ज्ञानी। विशेषत: इस्लामी शास्त्र के पंडितों को आलिम कहा जाता है। आलिमा का बहुबचन है उलेमा। इसीलिए उलेमाओं अथवा उलेमाओं की बातें करना ठीक नहीं है।

कुछ बातें

सिजदा और पाईबस

ये दोनों फारसी प्रथाएँ थीं। बलबन अपने को फारस की किंमबदंती नायक का एक उत्तराधिकारी मानता था। राजदरबार में वह चमक-दमक पूर्ण अनुष्ठान किया करता था। और सुलतानों के पदचुंबन को पाइबास कहा जाता था। ये प्रधान सुलतानों की सर्वभौम सत्ता का प्रतीक थीं।

कुछ बातें

इक्ता व्यवस्था की बातें

मध्य एशिया के इस्लामी साम्राज्य में सैन्य अधिकारियों को इक्ता दिया जाता था। इक्ता कुछ निर्दिष्ट नियम के लिए दिया जाता था। नौवीं शताब्दी में इस व्यवस्था की उत्पत्ति हुई थी। उस समय राजकोष में काफी मात्रा में कर इकट्ठा हुआ था। दूसरी तरफ युद्ध करके भी ऐसा धन सम्पदा इकट्ठा नहीं हो पा रहा था। इसलिए सेनापतियों को वेतन के बदले इक्ता दिया जाता था। ग्यारहवीं शताब्दी में सेल्यूज तुर्की साम्राज्य में इक्ता व्यवस्था का प्रचलन मिलता है। इस समय साम्राज्य का प्रायः आधा हिस्सा इक्ता के रूप में व्यवस्थित था। कहीं-कहीं यह व्यवस्था भी वंशानुक्रमिक हो जाती है। अर्थात पिता के मरने पर पुत्र को वही दायित्व मिलता था। तुर्की शासनकाल में इक्ता व्यवस्था के बदले उसी तरह की एक अन्य व्यवस्था का भी पता चलता है। उसे डिमार कहा जाता है। इरान के ईल-खान के शासन के समय (१२५०-१३५३ ई.) इक्ता प्रथा का पता चलता है। मिश्र में भी बारहवीं-तेरहवीं शताब्दीं में मुक्ति का पता चलता है। दिल्ली के सुलतानों ने साम्राज्य विस्तार कर वसूली और शांति बनाए रखने के लिए इक्ता व्यवस्था में काफी फेर-बदल किया था। इक्तादार या मुक्ति एक पूरे प्रदेश के शासक हो सकते थे। अथवा सिर्फ एक कर संग्रह करने वाला जो अपने भरण-पोषण के लिए जमीन के टुकड़े से कर वसूलते थे।

सल्तनत के विभिन्न क्षेत्र के शासक कई बार केन्द्रीय सत्ता हथियाने की कोशिश करते थे। जलालुद्दीन खिलजी अथवा बहलोल लोदी की तरह कई शासक पहले क्षेत्रीय शासक ही थे। बाद में सत्ता हथियाकर सुलतान बने।

४.७.३ सुल्तानों का नियंत्रण : आर्थिक नियंत्रण और जनकल्याण

राजकोष की आय बढ़ाने के लिए अलाउद्दीन खिलजी ने कई आर्थिक सुधार किए थे। पिछले सुल्तानों द्वारा दिए गए इक्ता को जब्त कर लिया। धर्मगत कारणों से दी गई सम्पत्ति और जमीन को वापस ले लिया। सारी जमीन जब्त कर ली गयी। कर भी बढ़ा दिया गया। इसके अलावा सुलतान ने सल्तनत के खर्च को कम करने की कोशिश भी की। अलाउद्दीन ने दोआब क्षेत्र (गंगा-यमुना नदी की मध्यवर्ती क्षेत्र) के निवासियों से उत्पन्न फसल का आधा हिस्सा कर के रूप में वसूल किया। जमीन काफी उर्वर थी। अतः

फसल अच्छी होती थी। भू-कर के अलावा गृहकर, पशुओं को चराने वाले क्षेत्र पर कर, जजिया कर इत्यादि विभिन्न प्रकार के कर उगाहने का निर्देश दिया।

कुछ बातें

जजिया कर और तुरुष्क दण्ड

गैर-मुस्लिमों से मुसलमान शासक जजिया कर वसूलते थे। यह प्रतिव्यक्ति कर था। इसके बदले गैर-मुस्लिमों को जीवन, अधिकार और सम्पत्ति की सुरक्षा प्रदान की जाती थी। आठवीं शताब्दी में अरब सेनापति मोहम्मद-बिन-कासिम ने सिंधु प्रदेश में पहली बार जजिया कर लगाया था।

दिल्ली सल्तनात में ब्राह्मण, नारी, नाबालिग और दासों को जजिया कर देना पड़ता था। सन्यासी, अंधे, लँगड़े और पागल यदि गरीब होते, तो उन्हें जजिया कर नहीं देना पड़ता था। अलाउद्दीन खिलजी खराज के साथ ही जजिया कर लेता था। उसका उद्देश्य था गैर मुस्लिमों की आर्थिक और राजनैतिक शक्ति का ह्रास करना। क्योंकि वे साम्राज्य में असंतोष और विद्रोह को जन्म देते थे। गयासुद्दीन तुगलक (१३२०-२४ ई.) ने इस रूप में जजिया लागू किया जिससे गैर-मुस्लिम प्रजा एकदम दरिद्र न हो जाये, और एकदम सिर भी ऊँचा न हो जाये। फिरोज शाह तुगलक ने व्यतिक्रम में ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगा दिया था।

जजिया कर की ही तरह किसी-किसी हिन्दू राजा ने भी एक प्रकार का कर लागू किया था। यह कर वे अपनी मुसलमान प्रजा पर लगाते थे। उस कर को तुरष्क दण्ड (तुर्को/ मुसलमानों पर लगाया गया कर) कहा जाता था।

चित्र ४.३
सुलतान अलाउद्दीन खिजली के एक सोने की मुद्रा के दोनों पहलू

बाजार मूल्य नियंत्रण

अलाउद्दीन खिलजी की शासन व्यवस्था पूरी तरह सैन्य शक्ति पर निर्भर थी। इसी बीच उसने एक विशाल सेना गठित कर ली, और इन सैनिकों का वेतन निश्चित कर दिया। उसने बाजार के सभी नित्य प्रयोजनीय वस्तुओं की कीमत निश्चित कर दी। उसके शासनकाल में दिल्ली में चार बड़े बाजार थे। इन बाजारों में खाद्य सामग्री, घोड़ा, कपड़े इत्यादि बेंचे जाते थे। बाजार मूल्य के नियंत्रण के लिए उसके 'शाहना-इ- मंडी' और 'दिवान-

ए-रियासत' नाम से कर्मचारी नियुक्त किए। सुलतान द्वारा तय किए गए मूल्य से अधिक लेने अथवा ग्राहक को वजन में ठगने पर दण्ड की व्यवस्था थी। अलाउद्दीन ने शासन व्यवस्था शुरू की। जरूरत पड़ने पर प्रजा को सुलतान की ओर से खाद्य सामग्री और दैनन्दिन उपयोग की वस्तुएँ दी जाती थी।

मुहम्मद-बिन-तुगलक के आर्थिक प्रयोग की बात आपने पहले ही पढ़ ली है। उसके परवर्ती सुलतान फिरोज शाह तुगलक इस्लाम की रीति नीति और उलेमाओं के निर्देश पर शासन चलाते थे। वैसे काफी जनकल्याण का काम भी उसने किया था। फिरोज ने राजस्व संस्कार किया था। सिर्फ इस्लामी रीति के अनुसार जो कर वसूल सकता है, सिर्फ वही कर लिया जाता था। दूसरे कर छोड़ दिए गए।

फिरोज शाह तुगलक ने कई नए नगर बसाए, मस्जिद, मदरसा, अस्पताल और बगीचे का निर्माण कराया। उसने गरीबों के आर्थिक सहयोग की व्यवस्था की। बेकारी की समस्या के समाधान के लिए उसने एक दफ्तर खोला था। वहाँ से नौकरियाँ दी जाती थी। उसने कृषि की उन्नति के लिए सिंचाई व्यवस्था का विकास किया। कई तालाब खोदे गए। इसके अलावा जिस जमीन पर खेती नहीं होती थी, उस जमीन का सुलतान ने संस्कार किया।

कुछ बातें

खराज, खमस, जजिया और जकात

फिरोज शाह के शासन काल में चार तरह के कर वसूले जाते थे। ये हैं खराज कृषि की जमीन पर लगाया गया कर। खमस- युद्ध में लूटी गयी धन सम्पत्ति का एक अंश। जजिया- गैर मुसलमानों पर लगाया कर। जकात- मुसलमानों की सम्पत्ति पर लगाया गया कर।

४.८ प्रादेशिक शासन

मुहम्मद-बिन तुगलक के शासन काल के उत्तर काल से ही दिल्ली सल्तनात कमजोर होने लगा था। केन्द्रीय शासन के विरूद्ध विद्रोह का बिगुल बजाकर कई प्रादेशिक शक्तियों का उत्थान हुआ। ऐसी उल्लेखनीय शक्तियाँ थी बंगाल का इलियासशाही और हुसैनाशाही शासन और दक्षिण भारत की विजयनगर और बहमनी साम्राज्य।

४.८.१ बंगाल का इलियासशाही और हुसैनशाही शासन

१३४२ ई० में समसुद्दीन इलियसशाह ने लखनौती के सिंहासन पर कब्जा किया। उसने बंगाल के तीन प्रधान राज्य लखनौती, सतगाँव और सोनारगाँव को संयुक्त कर बंगाल में स्वाधीन रूप से इलियासशाही शासन शुरू किया। इलियास शाह ने पूर्व बंगाल और कामरूप को अपने शासन में शामिल किया। उस समय दिल्ली पर फिरोज शाह तुगलक का शासन था। उसने इलियास की राजधानी पाण्डुआ पर अधिकार कर लिया।

कुछ बातें

दुर्भेद्य एकडाला दुर्ग

फिरोज शाह तुगलक ने जब पाण्डुआ पर आक्रमण किया, तब इलियास शाह ने एकडाला दुर्ग में आश्रय लिया। इस दुर्ग का आज कोई नामो-निशान नहीं है। यह दुर्ग गंगा की दो सहायक नदियों- चिरामती और बलिया से घिरा था। फिरोज शाह ने सैनिकों समेत लौट जाने की बात सोची। उस समय इलियास शाह की सेना एकडाला दुर्ग से निकलकर फिरोज शाह पर पीछे से आक्रमण करने के लिए बढ़ी। फिरोज शाह तैयार था। युद्ध में दिल्ली का सुलतान विजयी हुआ। लेकिन अंतत: फिरोज शाह एकडाला दुर्ग पर कब्जा नहीं कर पाया। इसीलिए बंगाल पर इलियास शाह का ही शासन बना रहा।

चित्र ४.४ : समसुद्दीन इलियास शाह की एक मुद्रा के दोनों पहलू

याद रखें

- सुलतान समसुद्दीन इलियास शाह (१३४२-'५८ ई०) बंगाल का प्रथम स्वाधीन सुलतान था। उसने दिल्ली सल्तनात के अधिकार से अलग इस स्वाधीन शासन का निर्माण किया था।
- सुलतान गयासुद्दीन आजम शाह फारसी काव्य का विद्वान था। उसके शासन काल में बंगाल में सामुद्रिक व्यवसाय का काफी विकास हुआ था।
- सुलतान जलालुद्दीन मोहम्मद शाह (यदु)(१४१५-'१६, १४१८-'३३ ई०) जन्म से हिंदू था। उसने इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। उसके शासनकाल में बंगाल की राजधानी मालदह के हजरत पाण्डुआ से गौड़ आ गयी।
- बहुतों का विश्वास है कि परवर्ती इलियासशाही के सुलतान, सुलतान समसुद्दीन इलियास शाह के वंशज थे।
- इलियास शाही और हुसैनशाही शासन के बीच बंगाल में अबिसीनिया के सुलतानों ने शासन किया था। ये अफ्रीका के अबिसीनिया या यूथोपिया से आए थे। बंगाल में इन्हें हबसी कहा जाता था।
- अफगान नेता शेरशाह के आक्रमण से १५३० ई० में स्वाधीन सल्तनात का शासन खत्म हुआ।

कुछ बातें

अलाउद्दीन हुसैन शाह और श्रीचैतन्य

वृंदावन दास ने चैतन्य भागवत में लिखा है कि सुलतान हुसैन शाह ने गौड़ जाकर श्रीचैतन्य के संबंध में एक आदेश दिया। उस आदेश के अनुसार चैतन्य देव सबको लेकर कीर्तन करें अथवा मन करे तो एकाकी रहें। किसी ने उन्हें परेशान किया चाहे वह काजी हो अथवा कोतवाल, उसे मृत्युदण्ड दिया जाएगा।

तालिका ४.२ : एक नजर में इलियास शाही और हुसैनशाही शासन

शासन	शासनकाल	प्रधान शासक
इलियासशाही	१३४२-१४१४/१५ ई०	समसुद्दीन इलियासशाह, सिकंदर शाह, गयासुद्दीन आजम शाह
राजा गणेश का वंश	अनु. १४१४/१५-१४३५ ई०	राजा गणेश, जलालुद्दीन मोहम्मद शाह(यदु)
परवर्ती इलियासशाही	अनु. १४३५-१४८६ ई०	नसीरूद्दीन महमूद शाह, रूकनुद्दीन बरवक शाह
हुसैन शाह	१४९३-१५३८ ई०	अलाउद्दीन हुसैन शाह, नसीरूद्दीन नुसरत शाह

अलाउद्दीन हुसैन शाह मध्यकाल के बंगाल का एक महत्वपूर्ण श्रेष्ठ शासक था। उसका छब्बीस वर्ष का शासनकाल (१४९३-१५१९ ई०) उसकी उदारनीति के कारण विख्यात है। उसके शासन काल में हिंदुओं को महत्वपूर्ण प्रशासनिक पद दिए जाते थे। अलाउद्दीन का वजीर, प्रधान बौद्ध, उसका प्रधान अंगरक्षक और टकसाल का अध्यक्ष सभी हिंदू थे। सुलतान हुसैन शाह खुद भद्र, विनायी और सभी धर्मों के प्रति समान श्रद्धा रखनेवाला था। ऐसा पता चलता है कि हुसैन शाह श्रीचैतन्य का भक्त था। दो मशहूर वैष्णव भाई रूप और सनातन में एक को हुसैन के दफ्तर में व्यक्तिगत सचिव (दबीर-ई-खास) का पद मिला था। आम जनता में हुसैन शाह बांग्ला भाषा और साहित्य की चर्चा के उत्साही थे। उसके शासन काल में बांग्ला भाषा और साहित्य काफी उन्नत हुआ।

इलियासशाही और हुसैनशाही के दौरान बांग्ला संस्कृति का काफी विकास हुआ था। उस समय बांग्ला भाषा और साहित्य, स्थापत्य आदि क्षेत्रों में काफी विकास हुआ था। उस समय सुलतान भी अन्य धर्मों के प्रति उदार थे। सुलतानों की धर्मगत उदारता ने बंगाल में सभी धर्म के लोगों में आपसी सहयोग बढ़ाया था। उस समय बंगाल में श्रीचैतन्य के नेतृत्व में भक्ति आंदोलन की लहर उठी थी।

४.८.२ दक्षिण में विजयनगर और बहमनी साम्राज्य का उत्थान

कहा जाता है कि संगम नामक एक व्यक्ति के पुत्रों नें १३३६ ई० में तुंगभद्रा नदी के किनारे विजयनगर साम्राज्य की सथापना की। उनमें से दो हैं हरिहर और बुक्का। विजयनगर पर १३३६ से १६४५ ई० के बीच कुल चार राजवंशों ने शासन किया था। उन चारों वंशों का नाम है-संगम, सालुभ, तुलुभ और अराविडु।

हरिहर और बुक्का द्वारा प्रतिष्ठित पहला संगम राजवंश ने प्राय डेढ़ सौ वर्षों तक शासन किया था। देवराय द्वितीय इस वंश का सर्वश्रेष्ठ राजा था। संगम वंश के कमजोर शासक वीरूपक्ष को हटाकर नरसिंह सालुभ ने विजयनगर साम्राज्य पर सालुभ वंश की प्रतिष्ठा की। किन्तु शासक की अयोग्यता के कारण सालुभ वंश का पतन हो गया। सालुभ राजवंश के सेनापति का पुत्र वीर सिंह सालुभ राजवंश का उन्मूलन कर तुलुभ वंश के शासन की प्रतिष्ठा की। इस वंश का कृष्णदेव राय विजयनगर साम्राज्य का विख्यात शासक था। उसके शासन काल में विजयनगर साम्राज्य की काफी ख्याति हुई थी। उस समय साम्राज्य का विस्तार हुआ था। आंतरिक और बाहरी व्यवसाय और वाणिज्य का प्रसार भी हुआ था। इसके अलावा कला, साहित्य, संगीत और दर्शनशास्त्र की उन्नति का भी परिचय मिलता है। कृष्णदेव राय खुद भी साहित्यकार था। तेलगु भाषा में रचित 'अमुक्तमाल्य' ग्रन्थ में उसने राजा के कर्तव्यों की बातें लिखी हैं।

मोहम्मद-बिन-तुगलक के शासनकाल में हसन गंगू ने १३४७ ई० में अलाउद्दीन हसन वहमन शाह नाम से दक्षिण में बहमनी साम्राज्य की स्थापना की। उसने गुलबर्ग में राजधानी स्थापित कर उसके नाम रखा अहसनावाद। प्रशासन की सुविधा के लिए बहमन शाह ने अपने साम्राज्य को चार प्रदेशों में बाँट दिया। ये चारों प्रदेश थे-गुलबर्ग, दौलतावाद, बरार और बिंदर। प्रत्येक प्रदेश में एक-एक कर प्रादेशिक शासक नियुक्त किए गए।

अलाउद्दीन हसन बहमन शाह की मृत्यु (१३५८ ई०) के बाद उसका पुत्र मोहम्मद शाह गुलबर्ग का शासक बना। बहमनी वंश का सुल्तान ताजउद्दीन फिरोज शाह (१३९७-१४२२ ई०) एक वीर योद्धा था। कला के प्रति भी-उसका रूझान था।

चित्र ४.५ : गुलबर्ग के दुर्ग का एक अंश, उत्तर कर्नाटक

कुछ बातें

राजा कृष्णदेव राय

पुर्तगाली पर्यटक पेज राज कृष्णदेव राय के शासनकाल में विजयनगर साम्राज्य में आया था। उसने राजा की खूब प्रशंसा की है। पेज ने कहा है-

"अनेक राजाओं में वे सर्वाधिक पंडित और एक महानतम शासक साथ ही न्यायी, साहसी, और सर्वगुण-सपन्न थे।"

इसके बाद बहमनी साम्राज्य की राजधानी हो गया बिदर शहर। बहमनी साम्राज्य के शासक मोहम्मद तृतीय के शासन काल (१४६३-१४८२ ई०) में उसके मंत्री महमूद गवान ने बहमनी राज्य का गौरव बढ़ाया। वह एक दक्ष योद्धा था। उसके आदेश पर बना बिदर शहर का मदरसा बहुत विख्यात है।

महमूद गवान की मृत्यु (१४८१ ई०) के बाद बहमनी साम्राज्य का केन्द्रीय शासन बिखर गया। और पाँच स्वाधीन सल्तानात की उत्पत्ति हुई। वो चारों स्वाधीन सल्तानात थे- अहमदनगर, बीजापुर, बरार, गोलकुंडा और बिदर।

चित्र ४.६ महमूद गवान का मदरसा, विदर (पंद्रहवीं शताब्दी)

कृष्णदेव राय की मृत्यु के बाद तुलुभ वंश के शासन काल में ही विजयनगर साम्राज्य का बहमनी साम्राज्य के परवर्ती पाँचों सल्तानात की संयुक्त शक्ति के साथ युद्ध हुआ। १५६५ ई० में बानीहाट के युद्ध में विजयनगर पराजित हुआ।

विजयनगर और बहमनी साम्राज्य पहले से ही एक दूसरे के शत्रु थे। यह शत्रुता एक निरंतर युद्ध में बदल गयी थी। मुख्यत: राजनैतिक, सामरिक, वाणिज्यिक और आर्थिक क्षमता की प्रतिष्ठा के लिए ही यह लड़ाई हुई थी।

इस युद्ध के बाद तुलुभ शासन कमजोर हो गया। परवर्ती काल में अराविडु वंश को सत्ता मिली। इस वंश का प्रथम शासक था तिरूमल और अंतिम उल्लेखनीय राजा था वेंकट द्वितीय।

सोचकर बोलें

विजयनगर और दक्षिण के सल्तानात में तीन क्षेत्रों को लेकर समस्या थी। ये क्षेत्र थे-तुंगभद्रा नदी का उपकूलवर्ती (किनारे का) क्षेत्र, कृष्णा और गोदावरी नदी का दोआब क्षेत्र और मराठावाड़ा क्षेत्र। इस इलाके की जमीन उर्वर थी। व्यवसाय और वाणिज्य भी इस इलाके में सुगम था। याद रखें कि इन क्षेत्रों के लिए युद्ध सिर्फ विजयनगर और बहमनी साम्राज्य के बीच ही नहीं हुआ। उसके पहले भी इन इलाकों के लिए चालुक्य और चोल राजाओं के बीच तथा यादव और हयसोल राजाओं के बीच युद्ध हुआ था।

कृष्णा नदी के उत्तर और दक्षिण दोनों तरफ के शासक 'सुलतान' उपाधि धारण करते थे। दिल्ली के सुलतानों के अनेक नियम कानून वे मानते थे। विजय नगर के शासक अपने को हिंदू राई (राजा) में सुलतान कहते थे। राजा देवराय द्वितीय ने अपनी सेना को तुर्की युद्ध पद्धति का प्रशिक्षण दिलवाया। उसके शासन काल में उत्तर और दक्षिण के बीच अच्छा खासा सांस्कृतिक संबंध था।

अब यह सोचकर बताइए कि विजयनगर और दक्षिण के अन्य सल्तनात के बीच के संघर्ष को क्या हिन्दू और मुसलमानों शासकों के बीच का धार्मिक संघर्ष कहा जा सकता है?

मानचित्र : विजयनगर और बहमनी

मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं

याद रखे

- कृष्णा और तुंग भद्रा नदी के दोआब क्षेत्र को रायचूर दोआब कहा जाता है।
- बहमनी साम्राज्य के देशी अभिजातों को दक्षिणी कहा जाता था। इस क्षेत्र के बाहर से आए हुए जिन अभिजातों को दरबार में स्थान मिलता उन्हें परदेशी कहा जाता था। अर्थात् 'देश' का अर्थ लोग सिर्फ अपना इलाका ही समझते थे।

विदेशी पर्यटकों के विवरण में विजयनगर

विजयनगर साम्राज्य में अनेक विदेशी पर्यटक आए। इनमें इटली के पर्यटक निकोलो कन्टी, फ्रांस के अब्दूर रज़्ज़ाक, पुर्तगाली पर्यटक पेज और नूनिज, दुआर्त का बारबोसा प्रमुख है। इनमें सभी विजयनगर की संपदा देखकर दंग रह गए। विजयनगर साम्राज्य सात प्राचीरों से घिरा था। कृषि ही सामान्य जनता की जीविका का प्रधान साधन था। साम्राज्य की आय का प्रमुख साधन था राजस्व। कृषि के अलावा व्यापार-वाणिज्य और कला जगत में भी काफी उन्नति हुई थी। पुर्तगालियों के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध था। वैसे पर्यटकों ने यह भी बताया है कि अमीरों और गरीबों के जीवनयापन में बहुत अंतर था।

किसी देश के बारे में विदेशी पर्यटकों की बातें क्या पूर्णतः मानी जा सकती है? पक्ष-विपक्ष में तर्क दें।

कुछ बातें

पर्यटक पेज के विवरण में विजयनगर

"...... यह शहर रोम की तरह बड़ा शहर है। बहुत सुंदर है। शहर और मकानों के बगीचे में बहुत सारे पौधों के कुँज है। स्वच्छ पानी की अनेक झीलें शहर में हैं। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर पोखर हैं, राजभवन के पास ही ताड़ वन है और अन्य फलों के पेड़ भी हैं। इस शहर में असंख्य लोग रहते हैं। रास्ते पर और गली कूचों में इतने लोग और हाथी चला करते हैं कि उनके बीच से पैदल अथवा घुड़सवार सैनिकों की जाना असम्भव है। इस शहर की तरह खाने पहनने की व्यवस्था पृथ्वी पर किसी शहर में नहीं है। यहाँ चावल, गेहूँ और अन्य फसल प्रचुर परिमाण में मिलता है। रास्ते पर अथवा बाज़ार में बोझा ढोने वाले इतने साँड़ चला करते हैं कि उनके बीच जाना लगभग असंभव होता है, या तो बहुत देर रूके रहना पड़ता है या तो दूसरे रास्ते से जाना पड़ता है।"

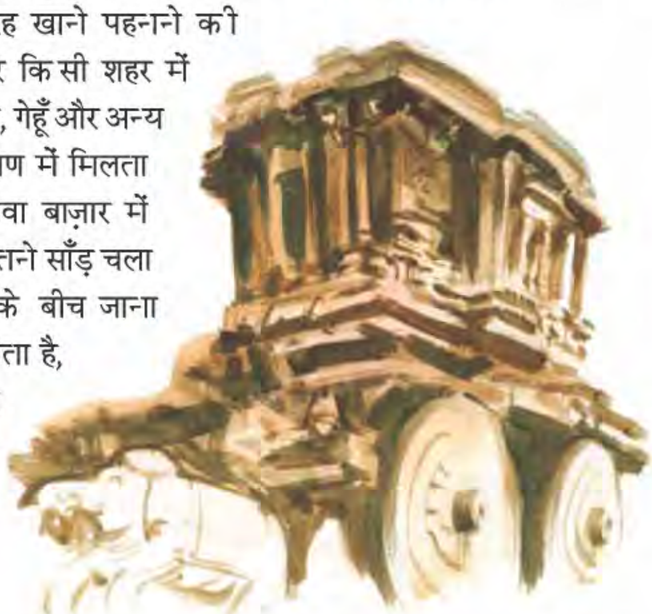

चित्र ४.७

विजयनगर साम्राज्य की राजधानी हम्पी के एक रथ मंदिर का बनाया हुआ चित्र

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

१. निम्नलिखित शब्दों में जो शब्द बेमेल है उसे रेखांकित करें **पूर्णांक : १**

(क) इल्तुतमिश, रज़िया, इब्नबतूता, बलबन।

(ख) तावरहिंद, सुनाम, सामाना, झेलम।

(ग) खराज, खमस, जजिया, अमीर, ज़कात।

(घ) अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा, पंजाब, विदर।

(ङ) बारबोसा, महमूद गवान, पेज, नूनिज।

२. 'क' स्तंभ के साथ 'ख' स्तंभ को मिलाएँ **पूर्णांक : १**

'क' स्तंभ	*'ख' स्तंभ*
खलीफा	बांग्ला
बलवन	दूरवाश
खिलजी विद्रोह	बाबर
रुमी कौशल	तुर्कान-इ-चिलगानी
राजा गणेश	इलबादी तुर्की अभिजा की क्षमता का अवसान

३. संक्षेप (३०-५० शब्दों) में उत्तर दें : **पूर्णांक : १**

(क) दिल्ली के सुलतान को कब खलीफा के अनुमोदन की जरूरत पड़ती थी?

(ख) सुलतान इल्तुतमिश के सामने तीन प्रधान समस्याएँ कौन-कौन सी थी?

(ग) रज़िया सुल्तान के समर्थक कौन थे? विरोधी कौन थे?

(घ) अलाद्दीन खिलजी ने मंगोल आक्रमण का सामना कैसे किया था?

(ङ) इलियासशाही और हुसैनशाही के शासन काल में बंगाल की संस्कृति का परिचय दें।

४. विस्तार से (१००-१२० शब्दों में) उत्तर दें : **पूर्णांक : ५**

(क) ४.२ मानचित्र देखकर उससे अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण आक्रमण का विवरण दें।

(ख) दिल्ली के सुलतानों के साथ उनके आभिजात्य वर्ग का कैसा संबंध था? बताएँ।

(ग) इक्ता क्या है? सुलतानों ने इक्ता व्यवस्था क्यों चलायी थी?

(घ) अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में दिल्ली के बाजार मूल्य नियंत्रण पर आपकी क्या राय है ? लिखें।

(ङ) विजयनगर और दक्षिण के राज्यों के बीच के संघर्ष को क्या धार्मिक लड़ाई कहा जा सकता है ? तर्क दें।

५. **कल्पना कर लिखें (१००–१५० शब्दों में) :**

(क) यदि आप सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में दिल्ली के एक बाज़ार में जाते, हो आपको कैसा अनुभव होता ? लिखें।

(ख) मान लें कि आप अलाउद्दीन हुसैन शाह के दरबार के एक कर्मचारी हैं। उस युग की धार्मिक स्थिति के संबंध में यदि आप एक किताब लिखते तो उसमें क्या लिखते।

(ग) मान लें कि आप राजा देवराय द्वितीय के शासनकाल में पुर्तगाल से विजयनगर साम्राज्य में घूमने आए हैं। इस देश की स्थिति देखकर आप अपने देश के किसी मित्र को चिट्ठी लिखेंगे तो उसमें क्या लिखेंगे ?

पंचम अध्याय

मुगल साम्राज्य

५.१ मुगल कौन थे?

सोलहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताव्दी तक मुगलों ने भारत पर राज किया। ईसा की अठारहवीं शताव्दी से ही उनकी शक्ति काफी कम हो गई थी। भारतवर्ष में विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं। इतने वर्षों तक वहाँ शासन करना बहुत कठिन है। मुगलों ने दक्षता के साथ वह काम किया।

एक तरफ मुगल नेता चंगेज खान एवं दूसरी तरफ तुर्की नेता तैमूर लंग के वंशधरों को हम लोग मुगल के नाम से जानते हैं। मुगल तैमूर के वंशज होने पर गर्व करते थे। अपने आप को वे तैमूरीय समझते थे। जबकि चंगेज खान के प्रति उनमें श्रद्धा नहीं थी। भारतवर्ष के पहले मुगल बादशाह जहीरूद्दीन मोहम्मद बाबर (१५२६-३० ई०)

कुछ बातें

तैमूर लंग और बाबर

सन १३९७ ई० में तैमूर लंग ने उत्तर भारत पर आक्रमण किया। इसलिए मुगल मानते थे कि उत्तर भारत पर शासन करना उनका अधिकार है। भारतवर्ष में आने से पहले एशिया के कुछ अंचलों में मुगलों का शासन था। इससे पहले चौदहवीं शताब्दी में मगोल साम्राज्य के पतन का लाभ उठाते हुए तैमूर ने अपने साम्राज्य की प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने मध्य एशिया के कई अंचलों को जीता। ये अंचल हैं पूर्व ईरान या खुरासान, ईरान, ईराक एवं तुर्की के कुछ भाग। पंद्रहवी शताब्दी में तैमूरीय शासकों की शक्ति में कमी आयी। इसका प्रधान कारण उनके वंशजों में साम्राज्य विभक्त करने की रीति थी। १४९४ ई० में तैमूर वंशी बाबर मात्र तेरह वर्ष की उम्र में फरगना प्रदेश का शासक बना। परवर्ती समय में उजबेग और सफाबियों की तरह मध्य एशिया की राजनीति में सफलता न पाकर बाबर अंततः भारतवर्ष की ओर अग्रसर हुए।

शब्दों के अर्थ

शफाबि---सफाबि इरान का एक राजवंश था। ईसा की सोलहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक उन्होंने शासन किया।

उजबेग—उजबेग महल एशिया की एक तुर्की भाषी जाति थी। ईसा की सोलहवीं शताब्दी के मध्य तक उन्होंने एशिया में एकाधिक राज्य कायम कर लिया था।

चित्र ५.१
अठारहवीं शताब्दी में बने इस चित्र के मध्य में तैमूर लंग हैं। साथ में उनके वंशधर हैं। इसमें हैं प्रथम छः मुगल सम्राट।

बादशाह कौन ?

मुगल सार्वभौम शासकों के लिए 'पादशाह' अथवा 'बादशाह' शब्द प्रयोग करते हैं। तुम लोगों ने पहले देखा है कि दिल्ली के शासक अपने को सुलतान कहते थे। पर मुगल 'सुलतान' शब्द युवराजों के लिए प्रयोग करते थे। जैसे जहाँगीर का नाम था सलीम। जब वे युवराज हुए तब उन्हें सुलतान सलीम कहा जाता था। 'बादशाह' उपाधि प्रयोग करके मुगल बताना चाहते थे कि, उनके शासन करने की क्षमता दूसरों के अनुमोदन पर निर्भरशील नहीं है।

शब्दों के अर्थ

बादशाह— बादशाह या पाहशाह या पादिशाह शब्द फारसी हैं। 'पाद' अर्थात् प्रभु एवं 'शाह' अर्थात् शासक या राजा, ये दो शब्द यहाँ जुड़े हैं। प्रश्न उठ सकता है कि प्राय: एक ही अर्थ वाले दो शब्द अगल-बगल प्रयोग करने का कारण क्या है? बहुत शक्तिशाली शासक बताने के लिए एक साथ दो शब्द प्रयोग होते हैं। १५०७ ई० में काबुल में रहते हुए ही बाबर ने पादशाह की उपाधि धारण की।

सार्वभौम शासक— सार्वभौम शासक मतलब सर्व भूमि पर जिसका आधिपत्य है। सर्व भूमि या पूरी पृथ्वी पर तो किसी एक व्यक्ति का आधिपत्य हो नहीं सकता। अर्थात समझना होगा कि जिसका आधिपत्य एक विराट अंचल पर हो और जो अपनी शक्ति द्वारा वहाँ शासन करते हों, वही सार्वभौम शासक कहलाते हैं। यह बात केवल उसी शासक के समझ लेने से नहीं होगी, सभी के उसे मान लेने पर ही उसका अधिकार टिक पायेगा।

५.२ मुगल साम्राज्य की स्थापना और विस्तार : युद्ध और मैत्री

भारत में मुगल साम्राज्य का स्थायित्व केवल युद्ध पर टिका नहीं था। एक तरफ भारतवर्ष के शक्तिशाली राजनैतिक दलों के साथ मुगलों का संघर्ष हुआ। फिर उनके साथ मैत्री भी हुई। हमने पहले ही जाना है कि, पानिपत की पहली लड़ाई (सन १५२६) में बाबर ने अफगानी शक्ति को पराजित किया। अफगानों के अलावा भी इस समय भारत में एक महत्वपूर्ण राजनैतिक दल था राजपूतों का। राजपूत शक्ति भी बाबर से पराजित हुई। परवर्ती काल में राजपूत मुगलों के अनुगामी बन गये।

कुछ बातें

मुगल रणकौशल

पानीपत और खानवा के युद्ध में बाबर के रणकौशल में एक तरफ कमान और बंदूकधारी सेना एवं दूसरी तरफ द्रुतगामी घुड़सवार तीरंदाज वाहिनी के संयुक्त आक्रमण पर निर्भर थी। घुड़सवार वाहिनी का एक अंश शत्रुओं पर दोनों तरफ से और पीछे से भी आक्रमण करता था एवं कमान और बंदूकधारी सेना सामने से गोलियाँ वरसाती थीं। इस रणकौशल का प्रयोग तुरस्क के अटोमान सेनावाहिनी ने १५१४ ई० में चलदिरान के युद्ध में फारस की राजशक्ति सफावियों की सेनावाहिनी को परास्त किया। फिर अटोमानो से सीख कर वही कौशल अपना कर १५२८ ई० में जाम के युद्ध में सफाबियों ने उजबेग को हराया।

एक नजर में बाबर के अमल में हुए दो महत्वपूर्ण युद्ध

खानवा का युद्ध (१५२७ ई०)– मेवाड़ के राजा संग्राम सिंह (राणा सांगा) राजपूतों के नेता थे। युद्ध शुरू होने के पहले बाबर ने मुगल योद्धाओं से कहा कि यह युद्ध उनके धर्म की जंग है। वे धर्मयोद्धा या गाजी हैं। दरअसल इस तरह उनहोंन सभी को एकजुट करने की चेष्टा की थी। वहीं उत्तर भारत से बाबर को हटाने के लिए कुछ मुसलमान शासकों ने राजपूतों को सहयोग दिया। इसलिए यह युद्ध धर्मयुद्ध नहीं था।

घाघरा का युद्ध (१५२९ ई०)— अफगानों के विरूद्ध बाबर ने यह युद्ध किया। अफगानों को सहयोग दिया बंगाल के शासक नुसरत शाह ने। इस युद्ध में विजयी होने के बाबजूद भी बाबर बिहार पर पूरा अधिकार नहीं कर पाया।

शब्दों के अर्थ

सामरिक अभिजात– सामरिक अभिजात उन्हें कहा जाता था जो वंशानुगत रूप से युद्ध का परिचालन करते थे। इसके अतिरिक्त वे लोग महत्त्वपूर्ण पद भी प्राप्त करते अधिकाशतः इनका राजपरिवारों के साथ पारिवारिक संबंध होता।

मुगल उत्तराधिकार नीति

बाबर के साथ उसके सामरिक आभिजात्यों का पारिवारिक एवं वंशगत सहयोग था। शासक वर्ग के साथ आभिजात्य वर्गों का यह योग मुगल शासन की अन्यतम विशेषता है। बाबर के पुत्र हुमायूँ के शासन (१५३०-४०, १५५५-५६ई०) में यह लोग मगर बहुत हद तक टूट चुका था। उसके बुरे वक्त में उसके भाईयों ने भी उसकी सहायता नहीं की।

तैमूरीय नीति के अनुसार उत्तर सूरियों में जो अंचल के बँटवारे की प्रथा थी, हुमायूँ ने वह नहीं मानी। बाबर ने भी शासक के तौर पर हुमायूँ को ही नियुक्त किया था। सीधे-सीधे शासन का दायित्व न प्राप्त करने के कारण वे भी साम्राज्य रक्षा करने की ताकीद अनुभव नहीं की। इसलिए अंततः एकजुट होकर भी अफगानों के विरूद्ध मुगल विजयी नहीं हो पाये।

कुछ बातें

बाबर की प्रार्थना : सच फिर भी कहानी

एक बार हुमायूँ बहुत बीमार हो गया था। वे अभी अफगानिस्तान के बदखशान से भारतवर्ष आए ही थे कि बाबर के पास हुमायूँ की बीमारी के खबर पहुँची। वे बहुत चिंतित हो गए। हुमायूँ जब दिल्ली पहुँचे तब वे इतने अस्वस्थ थे कि घर के अंदर पड़े थे। कहा जाता है कि इस वक्त बाबर को किसी ने सलाह दी कि, हुमायूँ की सबसे प्रिय वस्तु को यदि ईश्वर को उत्सर्ग किया जाय तो उसे बचाया जा सकेगा। बाबर ने अपना जीवन उत्सर्ग कर देना चाहा था। इसके बाद की कहानी को इतिहास नहीं कहा जा सकता। कहा जाता है कि बाबर की प्रार्थना की वजह से हुमायूँ ने जीवन पाया। इसके बाद ही बाबर बीमार हो गए और अंततः मर गए। कहानी होने पर भी इससे यह मालूम होता है कि हुमायूँ बाबर का प्रिय पुत्र था। इसलिए उन्होंने हुमायूँ को शासक के तौर पर मनोनीत किया था।

कुछ बातें

मुगल-अफगान संघर्ष

मुगलों के विरोधी हमेशा एकजुट थे। मुगलों के दो प्रधान विरोधी शक्ति राजपुत एवं अफगानों में विरोध था। इनमें बिहार के अफगानों के नेता शेर खान हुमायूँ का सबसे महत्वपूर्ण राजनैतिक प्रतिद्वंदी था। हुमायूँ लगातर दो बार शेर खान से पराजित हुए थे। सन १५३९ ई० में बिहार के चौसा के युद्ध और १५४० ई० में कन्नौज के पास बिलग्राम के युद्ध में उससे पराजित होकर हुमायूँ देश छोड़कर भागना पड़ा था। इस समय फारस के शाह ताहमस्प ने हुमायूँ को आश्रय दिया। हुमायूँ के इस तरह भाग-भाग फिरने के वक्त ही अकबर का जन्म (१५४२ ई०) हुआ। इसी दौरान दिल्ली-आग्रा में शेर खान ने 'शाह' की उपाधि धारण की। शेर शाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र ईसलाम शाह सत्ता में आया। ईसलाम शाह के बाद जो राजनैतिक अस्थिरता उपस्थित हुई, उसी अवसर का लाभ उठाकर हुमायूँ देश में वापस आ गया। पुराने किले के पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिरकर उनकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह (१५४०-'४५ ई०) के सुधार कार्य

शेरशाह की प्रशासनिक व्यवस्था, राजस्व व्यवस्था और जन कल्याणकारी कार्यों के साथ सुलतान अलाउद्दीन खिलजी और सम्राट अकबर की शासन व्यवस्था में बहुत मेल था। शासन परिचालन और राजस्व व्यवस्था में शेरशाह ने कुछ सुधार किये थे।

- शेर शाह कृषकों को पट्टे देते थे। इस पट्टे में कृषक का नाम, भूमि पर कृषक का अधिकार, कितना राजस्व देना होगा प्रभृति लिखा होता था। इसके बदले में कृषक राजस्व देना कबूल कर कबूलियत नाम से एक दूसरी दलील राष्ट्र को देते थे।
- यातायात व्यवस्था की उन्नति के लिए शेरशाह ने सड़क बनवाया। उन्होंने बंगाल के सोना गाँव से उत्तर-पश्चिम सीमान्त में पेशावर तक एक विस्तृत सड़क का निर्माण कराया। रास्ते का नाम था 'सड़क-ए-आजम'। यही रास्ता परवर्ती काल में 'ग्रैंड ट्रंक रोड' नाम से विख्यात हुआ। इसके अलावा आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तक एक सड़क का निर्माण हुआ। लाहौर से मुलतान तक और एक रास्ते का निर्माण हुआ।
- पथिक एवं व्यवसायियों की सुविधा के लिए रास्तों के किनारे अनेक सरायों का निर्माण किया गया।
- शेरशाह ने घोड़ों के माध्यम से डाक-व्यवस्था की उन्नति का प्रयास किया था।
- सेना वाहिनी पर नियंत्रण रखने के लिए 'दागना' और 'हुलिया' की प्रथा शेरशाह ने शुरू की।

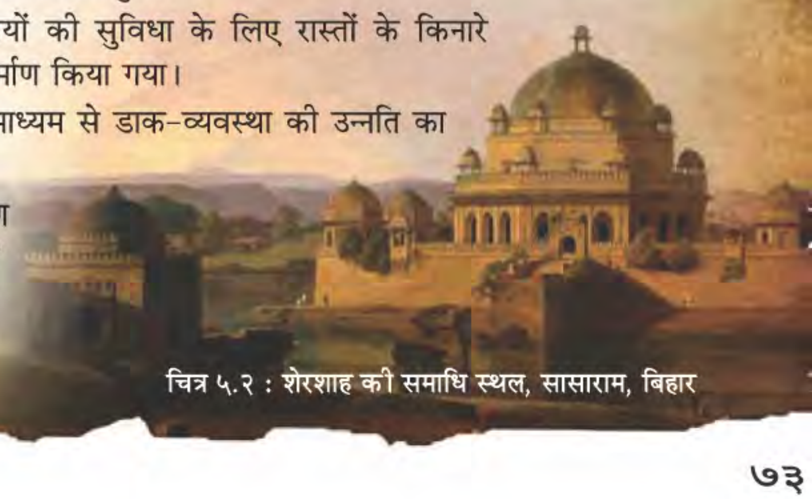

चित्र ५.२ : शेरशाह की समाधि स्थल, सासाराम, बिहार

अकबर ने जब शासन भार संभाला (१५५६-१६०५ ई०), तब उसकी उम्र तेरह वर्ष थी। अर्थात उस वक्त वे तुम लोगों की उम्र के ही थे। जरा सोचो इस उम्र में साम्राज्य चलाना कितना कठिन काम है। अकबर को सहायता की थी उनके अभिभावक बैरम खान ने। अट्ठारह वर्ष की उम्र में अकबर ने पूर्ण रूप से साम्राज्य का दायित्व संभाला। किन्तु वह तो बाद की बात है। जब वे पहली बार सिंहासन पर बैठा, तब दिल्ली में शेरशाह के एक रिश्तेदार ने अफगानी शासन वापस लाने की परिकल्पना की। उसका नाम था आदिल शाह। उसका प्रधानमंत्री हेमू ने दिल्ली शहर को दखल कर लिया। तुमने देखा है कि उस युग में दिल्ली एवं आगरा शासन क्षमता के केन्द्र थे। दिल्ली दखल करने का मतलब है साम्राज्य का अधिकार छीन लेना। बैरम खान के सहयोग से अकबर ने १५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई में आफगानों को हराया था। अकबर ने एक-एक करके मध्य भारत और उत्तर-पश्चिम सीमान्त के पास के कुछ छोटे राज्यों, चित्तौड़, गुजरात, बंगाल इत्यादि अंचलों को जीत लिया। इसके बाद, मेवाड़ के राजा प्रताप सिंह का अकबर के साथ संघर्ष हुआ। मुगलों के विरूद्ध इन सभी दलों का प्रतिरोध लेकिन बहिरागतों के साथ भारतीयों का संघर्ष कहना ठीक नहीं होगा। जिन लोगों ने मुगलों का विरोध किया था, उन्होंने एकजुट होकर भारतवर्ष के लिए लड़ाई नहीं की।

चित्र ५.३ :

बादशाह अकबर के शासन काल में एक सोने की मुहर के दो पहलू।

कुछ बातें

मुगलों का मेवाड़ अभियान

राजपूत राजाओं की सुरक्षा व्यवस्था में बहुत महत्वपूर्ण था चितौड़ का दुर्ग। सन १५६८ ई० में अकबर ने चित्तौड़ का दुर्ग जीत लिया। उससे पहले ही राजा उदय सिंह चित्तौड़ छोड़कर चले गये थे। इसके बाद दूसरे राजपूतों से सुसंपर्क स्थापित होने पर भी, उदय सिंह के पुत्र राजा प्रताप सिंह ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। १५७६ ई० में अकबर ने हल्दी घाटी के युद्ध में राणा प्रताप को पराजित किया था। इस युद्ध के समय अकबर ने अजमेर पहुँचकर राजा मान सिंह की ५००० सैनिक समेत राजा प्रताप के विरूद्ध भेजा था। राजा मान सिंह भी राजपूत थे। अर्थात मुगलों के विरूद्ध राजपूत शक्ति मिलकर नहीं लड़ी। राजा प्रताप ने चित्तौड़ तक की पूरी फसल नष्ट कर दी थी जिससे मुगल सैनिकों को खाना न मिले। वे अपनी राजधानी कुंभलगढ़ से ३००० सैनिक लेकर युद्ध क्षेत्र पहुँचे। राणा की तरफ कुछ अफगान सरदार भी थे। राणा युद्ध में पराजित हुए। पराजित होने के बाद भी बार-बार राणा प्रताप सिंह मुगलों के विरूद्ध खड़े हुए थे।

कुछ बातें

अकबर के नवरत्नों में एक बीरबल

अकबर के दरबार में अति विशिष्ट लोगों के नौ–लोगों के समूह को ही कहा जाता था नवरत्न। इनमें एक थे राजा बीरबल। बीरबल की बुद्धि के अनेक किस्से तुमने पढ़े होंगे। उनकी अनेक कहानियाँ होने के बावजूद भी बीरबल सच में बहुत बुद्धिमान थे। बीरबल का जन्म मध्य प्रदेश के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनका नाम था महेश दास। अपनी बुद्धि के बल पर ही उन्होंने अकबर की सभा में स्थान प्राप्त किया था। अकबर ने उनका नाम बीरबल रखा। यहाँ वीर एवं बल बुद्धि का दम, रूप में प्रयोग किया जाता है। उन्हें 'राजा' की उपाधि भी दी गई। अकबर के समय वे वजीर–ए–आजम अथवा प्रधानमंत्री हुए।

चित्र ५.४ :

बादशाह अकबर का चित्तौड़ दुर्ग अभियान। ये दोनों चित्र अकबरनामा से लिये गए हैं।

कुछ बातें

अबुल फजल और अब्दुल कादिर बदौनी

अकबर के शासन काल में एक प्रसिद्ध इतिहासकार थे अबुल फजल अल्लामी (१५५१-१६०२ ई०)। उन्होंने अकबर के गुणों के बारे में ही लिखा था। किन्तु किसी भी समय को जानने के लिए केवल उसकी अच्छी बातों को जानना ही काफी नहीं है। उस युग की समस्याओं को भी जानना पड़ता है। इस तरह की आलोचना पाई जाती है उस युग के एक और इतिहासकार अब्दुल कादिर बदौनी (१५४०-१६१५ ई०) के लेखन में। ये दोनों ही मुगल दरबार में १५१४ ई० में आये थे। लेकिन अबुल फजल अकबर के प्रिय पात्र हो उठे थे। एक ही घटना के दो तरफ के विवरण इनकी लेखनी में पाए जाते हैं।

चित्र ५.५ : अबुल फजल बादशाह अकबर को अकबर-नामा देते हुए।

अभी हमलोग भारत का जो मानचित्र देखते है, तब वैसा नहीं था। 'देश' कहने से वे लोग कुछ अंचल समझते थे। ये संघर्ष दरअसल विभिन्न अभिजात दलों के बीच हुआ था। इन लोगें ने व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा और राजनैतिक शक्ति के लिए लड़ाइयाँ लड़ी।

अकबर ने केवल युद्ध के माध्यम से ही शासन की प्रतिष्ठा नहीं की। उन्होंने स्थानीय शासकों के मुगल दरबार में महत्वपूर्ण पद देने की कोशिश की थी। अकबर स्थानीय लोगों के लिए मात्र आक्रमणकारी के रूप में प्रतिष्ठित नहीं होना चाहते थे। मुगल उत्तर भारत को जीत कर दक्षिण में भी पहुँच गए थे। इधर उत्तर-पश्चिम सीमांत के अंचल जैसे काबुल, कश्मीर, कंधार, सिन्धु प्रदेश एवं पूर्व बलुचिस्तान भी मुगलों के शासन के अहाते में आ गए थे। भारत में विदेशी आक्रमण इसी ओर से अधिक होते थे। इसलिए साम्राज्य की सुरक्षा के लिए इन अंचलों पर मुगलों का प्रभाव होना जरूरी था। उस समय की यातायात व्यवस्था बिल्कुल उन्नत नहीं थी। मुगल सेना को बहुत दुर्गम रास्ते पार करने पड़े थे।

अकबर की मृत्यु के समय (१६०५ ई०) भारत का एक विशाल क्षेत्र मुगलों के अधिकार में चला आया था। किन्तु इसके बाहर दक्षिण भारत का अंचल और उत्तर-पूर्व भारत में मुगल बलशाली नहीं थे। बंगाल में मुगलों की सामरिक सफलता बलवती होते हुए भी उनका आधार डाँवाडोल था।

मानचित्र ५.१ :
सत्रहवीं शताब्दी के अंत में मुगल साम्राज्य

वहाँ आफगानों को पूरी तरह से हटाकर मुगल शासन को अच्छी तरह प्रतिष्ठित करने में और कुछ एक अधिक वर्ष लग गए।

अकबर के पुत्र और उत्तरसूरी जहाँगीर के समय (१६०५–१६२७ ई०) बंगाल के स्थानीय हिन्दू जमींदार और अफगानों ने भी बार–बार मुगलों के विरूद्ध विद्रोह किया। ये विद्रोही 'बारह भुइयाँ' के नाम से परिचित थे। इनमें प्रतापादित्य, चाँद राय, केदार राय, ईशा खान मुख्य रूप से उल्लेखनीय थे। जहाँगीर ने बंगाल के जमींदार को अपनी तरफ खींचने की कोशिश की। जहाँगीर के समय में ही बंगाल मुगल साम्राज्य से अच्छी तरह जुड़ गया। उसके शासन में मेवाड़ के राणा ने भी मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। पर मुगलों का सभी राजनैतिक एवं धार्मिक दलों के साथ संबंध ठीक नहीं रहा। इस संबंध में आठवें अध्याय में हम और भी जानेंगे।

सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम दिनों तक जहाँगीर ने अकबर की राष्ट्रीय

चित्र ५.६ :

जहाँगीर के शासन में एक सोने की मुहर के दो पहलू।

नीति का ही लगभग अनुसरण किया। दक्षिण में मुगल साम्राज्य का विस्तार होता रहा। फलतः नए-नए मनसबदार मुगल शासन व्यवस्था में शामिल होते रहे। इसके अलावा पहले से ही राजपूत तो थे ही। फिर मुगल दरबार के अभिजात्यों में रस्स-कस्सी तो चलती ही थी। दरबारी आभिजात्यों के बीच द्वेद्वों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वालों में नूरजहाँ, शहजादा खुर्रम (परवर्तीकाल के शाहजहाँ), नूरजहाँ के परिवार के सदस्य आदि थे।

शाहजहाँ के शासन (१६२७-१६५८ ई०) के शुरू में ही खान जहाँ लोदी ने विद्रोह किया था। मुगलों द्वारा वे पराजित हुए। बुंदेलखंड के विद्रोह का दमन किया गया और अहमदनगर के अभियान में भेजा गया। शाहजहाँ ने उजबेगियों

कुछ बातें

बलख एवं बदख्शान

मध्य एशिया में बलख एवं बदखसान बुखरा के उजबेग शासक नदर मोहम्मद के अधीन थे। उसके पुत्र अब्दुल अजीज ने विद्रोह किया और अपने पिता को पराजित किया। नजर मुहम्मद ने शाहजहाँ से मदद मांगी। बाद में पिता-पुत्र के संबंध अच्छ हो जाने पर भी शाहजहाँ ने बलख पर आक्रमण किया। याद रखो, मध्य एशिया में मुगलों का प्राचीन निवास समरकन्द था। उन्होंने बार-बार इस अंचल पर शासन करने की कोशिश की।

चित्र ५.७ :

मुगलों का दौलतावाद अभियान। यह चित्र अब्दुल हामिद लाहिड़ी की 'पादशाहनामा' से लिया गया है।

से बलख जीतने की परिकल्पना की। पर वे सफल नहीं हुए। शाहजहाँ के शासन में ही मुगलों ने कंधार पर नियंत्रण खो दिया।

शाहजहाँ के जीवनकाल में ही उनके बेटों में सिंहासन को लेकर संघर्ष आरम्भ हो गया था। उनमे दारासिकोह और दूसरे भाइयों को हटाकर औरंगजेब बादशाह हुए। औरंगजेब के शासनकाल (१६५८-१७०७ ई०) में दक्षिण के बीजापुर और गोलकुंडा बड़ी कठिनाई से मुगलों के अधीन आए। फलतः मराठे और दक्षिणी मुसलमान अभिजात्य लोगों ने मुगल शासन में योग दिया। परिणाम स्वरूप मनसबदारी व्यवस्था में विचित्रता बढ़ गई। लेकिन उसके साथ-साथ मनसब प्राप्त करने के लिए अभिजात्यों के बीच रस्सा-कस्सी शुरू हुई। कृषि व्यवस्था में समस्याएँ दिखाई दे रही थी। मथुरा में जाट कृषकों ने एवं हरियाणा में सतनामी कृषकों ने विद्रोह किया। सिखों और मराठों की तरह आंचलिक शक्तियों ने मुगलों के विरूद्ध विद्रोह किया। राजपूतों से संघर्ष एवं दक्षिण में लगातार चलने वाले युद्धों से साम्राज्य का आकार जिस परिमाण में बढ़ा था, समस्याएँ भी बढ़ी थी। मुगलों के साथ जिन आभिजात्य वर्गों का सहयोग था, वह बहुत हद तक नष्ट हो गया।

चित्र ५.८ :

औरंगजेब और दाराशिकोह के बीच सामूगढ़ का युद्ध। इस युद्ध में औरंगजेब जीता।

मुगल साम्राज्य को उन्होंने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए प्रयोग करने की चेष्टा की।

शासन के शुरूआत में ही औरंगजेब ने उत्तर-पूर्व और सीमांतवर्ती क्षेत्रों में साम्राज्य विस्तार की ओर ध्यान दिया। पहले ही असम के अहोम शासकों का दमन करने के बावजूद वह अधिक दिनों तक स्थायी नहीं रहा। मुगलों ने चट्टगाँव बंदरगाह दखल करके बंगाल को पुर्तगाली समुद्री डाकुओं से बचाया। सामुद्रिक वाणिज्य का रास्ता प्रशस्त हुआ। उत्तर-पश्चिम सीमांत में कभी युद्ध तो कभी मैत्री द्वारा अफगान प्रभावित अंचल में शांति स्थापना की औरंगजेब ने। लेकिन मुगल सेना का एक बहुत बड़ा अंश यहाँ व्यस्त रहा। दूसरे युद्धों में जैसे मराठों के विरूद्ध उनका उपयोग नहीं किया जा सका।

५.३ मुगलों की राजपूत नीति और दक्षिण नीति : अकबर से लेकर औरंगजेब तक

५.३.१ मुगलों और राजपूतों के बीच संबंध

मुगल बादशाह हुमायूँ समझ गए थे कि हिंदुस्तान में सत्ता हथियाने के लिए राजपूतों के साथ अच्छा संबंध बनाये रखना होगा। क्योंकि राजपूत ही उत्तर भारत के विशाल अंचल के जमींदार थे। बाद में इसी अवधारणा के आधार पर बादशाह अकबर राजपूतों को युद्ध एवं मैत्री के माध्यम से मनसबदारी व्यवस्था के अंतर्गत ले आए। मुगल बादशाह और शाहजहाँ के साथ कुछ राजपूत परिवार के लड़कियों का विवाह भी हुआ। इस दृष्टि से अकबर ने कुछ नया नहीं किया। इससे पहले भी मुसलमान शासकों के साथ हिन्दू राजपरिवार की लड़कियों का विवाह होता था। अकबर ने अपनी पत्नियों को अपना-अपना धर्म पालन करने का अधिकार दे रखा था। उन्होंने हिन्दुओं पर लगने वाले तीर्थ-कर और जजिया कर खत्म कर दिया था। युद्ध बंदियों को जबरन मुसलमान धर्म कबूल करवाना भी उन्होंने निषिद्ध कर दिया। इससे साम्राज्य की गैर-मुसलमान प्रजा प्रसन्न हुई थी। पर मेवाड़ के राणा प्रताप सिंह ने मुगलों की अधीनता स्वीकार नहीं की। इसके बारे में हमने पहले ही पढ़ा है।

अकबर की नीतियों की वजह से मुगलों ने वीर राजपूत योद्धाओं का साथ पाया था। राजपूतों को भी अपने क्षेत्र से बाहर समग्र मुगल साम्राज्य में गर्व से काम करने और वीरता दिखाने का मौका मिला। मुगलों की अधीनता

कुछ बातें

आयतन

आयतन शब्द का अर्थ है इलाका, क्षेत्र, स्वदेश। जैसे राजा भारमल, भगवंतदास और मान सिंह के वंशजों का आयतन आधुनिक जयपुर शहर के पास अंबर या आमेर का क्षेत्र।

चित्र ५.१

मुगल दरबार में बादशाह अकबर राजपूतों का स्वागत कर रहे हैं। यह चित्र 'अकबरनामा' से लिया गया है।

स्वीकार कर लेने के कारण अपने क्षेत्रों पर अधिकार कायम रख पाते थे। पर किसी राजपूत राज्य में उत्तराधिकार को लेकर संघर्ष होने पर मुगल उस राज्य को सामरिक रूप से पूरी तरह अपने हाथ में ले लिए थे। इसके बाद मुगल बादशाह की इच्छानुसार तथा शासक गद्दी पर बैठता था।

कुछ बातें

मारवाड़

राजस्थानी भाषा में 'वाड़' शब्द का अर्थ है एक विशेष अंचल। मारवाड़ शब्द 'मरूवाड़' (मरू अंचल) से आया हैं।

सत्रहवीं शताब्दी में जहाँगीर और शाहजहाँ ने अकबर की राजपूत नीति का ही अनुसरण किया था। जहाँगीर के शासन में मेवाड़ में मुगलों का दबदबा कायम हुआ था। राणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह ने बड़ा मनसब प्राप्त किया था। शाहजहाँ के शासन में राजपूत सरदार सुदूर मध्य एशिया में भी युद्ध करने गए। इस समय भी राजपूतों को बड़े मनसब दिये जाते थे।

औरंगजेब के समय सबसे अधिक संख्या में राजपूत ही मुगल मनसबदारी व्यवस्था के अंतर्गत थे। आमेर के मिर्जा राजा जयसिंह औरंगजेब के विश्वस्त आभिजात्यों में से एक थे। मारवाड़ के राठौड़ राजपूत राजा जशवंत सिंह पहले बादशाह के विरोधी थे। पर बाद में उन्हें मोटी रकम का मनसब मिला। उनकी मृत्यु के बाद मारवाड़ उनके पक्ष में था। राठौर युद्ध मुगलों के लिए लाभदायक नहीं रहा। इसके बाद, अकबर द्वारा जजिया कर हटा लेने के बाद फिर उसे लागू कर दिया (१६७९ ई०)। अर्थात अकबर से लेकर औरंगजेब तक मुगलों की राजपूत नीति में बहुत मेल था। फिर कुछ-कुछ क्षेत्रों में अनमेल भी था।

५.३.२ मुगल राजशक्ति और दक्षिण

बहमनी राज्य के टूट जाने पर दक्षिण में कई सल्तनत राज्यों के उत्थान की कहानी हमने पहले ही पढ़ी है। ये सब मुगलों के भारत आने के पहले की बातें हैं। अकबर के शासन काल में एक तरफ जब उत्तर भारत में मुगल क्रमश: शक्तिशाली हो रहे थे, दक्षिण में तब सुलतानी राज्य एक-दूसरे से लड़ रहे थे। याद रखो विजयनगर की पराजय के बाद सुलतानी राज्यों के समय राज्यविस्तार करने के बहुत मौके थे।

उस समय से दक्षिण में बड़े-बड़े ज़मीन के मालिक मराठे सरदार और सैनिक बहुत महत्वपूर्ण हो उठे थे। दक्षिण के सुलतानी राज्यों में पुराने अभिजात्य और बाहर से आए नए अभिजात्यों के बीच संबंध बिल्कुल अच्छे नहीं थे। इस बीच भारत के पश्चिमी उपकुल में पुर्तगालियों ने पाँव रखा।

इस स्थिति में मुगलों ने दक्षिण में प्रभाव बढ़ाने की सोची। दक्षिण था दिल्ली और आगरा से बहुत दूर। अकबर ने समझा था कि दक्षिण के राजपूत भी दूसरे राजपूतों की तरह मुगलों से मित्रता कर लेंगे। किन्तु वास्तव में ऐसा हुआ नहीं।

सोलहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में दक्षिण के राज्य थे बीजापुर, गोलकुन्डा, अहमदनगर, बरार, विदर्भ और खानदेश। १५९६ ई० से १६०१ ई० तक मुगलों ने बरार, विदर्थ और खानदेश को जीत लिया। खानदेश का महत्वपूर्ण असीनगढ़ का किला भी मुगलों के कब्जे में आ गया। अहमदनगर के प्रधानमंत्री

मलिक अम्बर के प्रयासों से दक्षिण के राज्यों ने मुगलों के विद्रोह किया।

जहाँगीर मराठा शक्ति का महत्व नहीं समझ पाए थे। उन्होंने उन्हें अपनी तरफ मिलाने की कोशिश की। अकबर के समय दक्षिण में मुगलों की जो स्थिति थी जहाँगीर ने उसी को कायम रखने की कोशिश की। १६३६ ई० में अहमदनगर राज्य मुगलों के अधीन हुआ। इसी वर्ष शाहजहाँ ने बीजापुर और गोलकुंडा से संधि करके समस्या का समाधान करने की कोशिश की। बाद में मुगलों ने ही इस संधि को तोड़ा। फलस्वरूप मुगलों के प्रति दक्षिण के शासकों की आस्था नहीं रही।

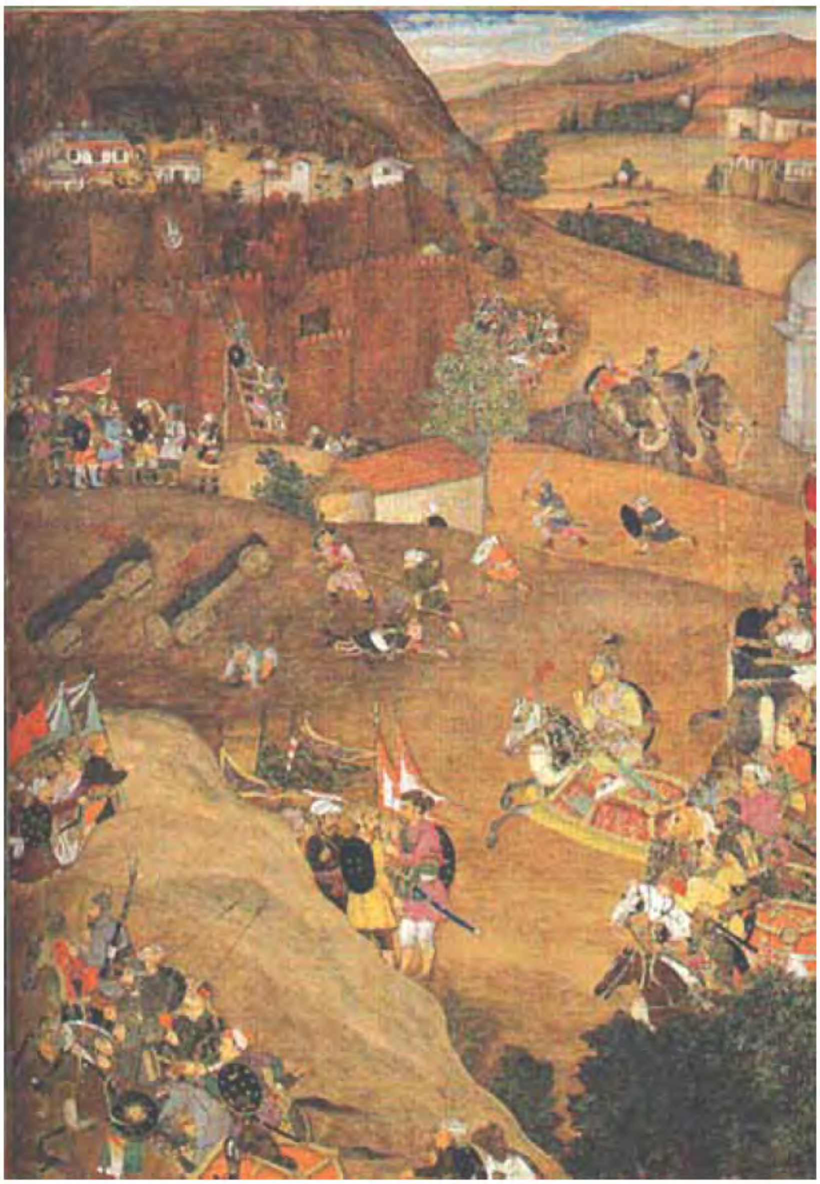

चित्र ५.१० :

मुगल सेना गोलकुंडा के एक दुर्ग पर आक्रमण कर रही है (१७वीं शताब्दी)। यह चित्र पादशाहनामा से लिया गया है।

कुछ बातें

दक्षिणी क्षेत्र

१७ वीं शताब्दी में औरंगजेब के समय मराठों की शक्ति काफी बढ़ गई थी। औरंगजेब ने सोचा था कि दक्षिण के राज्यों को जीत लेने पर वहाँ से ढेर सारा राजस्व प्राप्त होगा। इसके साथ मराठों का दमन करना भी आसान हो जाएगा। औरंगजेब के समय मुगलों ने बीजापुर और गोलकुंडा पर अधिकार किया था। मुगल साम्राज्य का क्षेत्र इतना बड़ा कभी नहीं हुआ था। लेकिन बादशाह ने जो सोचा, वह नहीं हुआ। इसके बदले बहुत वर्षों तक होने वाले युद्ध के कारण मुगलों की बहुत आर्थिक क्षति हुई। दक्षिण के युद्धों में हुई यह क्षति फिर पूरी नहीं हुई। मराठा नेता शिवाजी को भी स्वाधीन राजा मान लेना पड़ा। पच्चीस वर्षों तक लगातार युद्ध करके औरंगजेब अंततः उसी दक्षिण में मरे (१७०७ ई०)।

मानचित्र ५.२ :

मुगल साम्राज्य (अनुमानतः १७००ई०)

१८ वीं शताब्दी के पूरे मुगल साम्राज्य की सीमा।

५.४ बादशाही शासन : प्रशासनिक आदर्श

मुगल साम्राज्य का प्रशासनिक आदर्श था मूलत: विभिन्न दलों को साम्राज्य के साथ जोड़कर एक स्थायी भारतीय साम्राज्य तैयार करना। अकबर का प्रशासनिक आदर्श तैमूरीय, फारसी एवं भारतीय राजतंत्र का मिश्रण कहना उचित होगा। इस आदर्श में बादशाह ईश्वर की इच्छानुसार शासन करेंगे एवं प्रजा के प्रति उसका पितृवत प्रेम रहेगा। अर्थात उसका शासन करने का अधिकार किसी दूसरे शासक द्वारा प्रदान किया हुआ नहीं है। सबके प्रति सहनशील एवं सबके लिए शक्ति के इस पथ को 'सुलभ-ए-कुल' कहते हैं। इस आदर्श के आधार पर अकबर ने एक धर्म की स्थापना की, जिसे 'दीन-ए-ईलाही' कहते हैं।

प्रथम मुगल सम्राट बाबर का शासनकाल युद्ध-विद्रोह में बीता था। प्रशासन की तरफ वे उस तरह से ध्यान नहीं दे पाये। मुगल शासन के दौरान अफगान शासक शेर शाह की प्रशासनिक व्यवस्था सुव्यवस्थित थी जिसका परवर्ती काल में अकबर ने अधिकांश अनुसरण किया था। अकबर ने अपने साम्राज्य को कई देशों में बाँटा था। प्रदेशों को 'सूबा' कहा जाता था। सूबों को फिर कई सरकारों एवं सरकारों को परगनों में बाँटा गया था।

अकबर ने सामरिक व्यवस्था में एक महत्वपूर्ण संयोजन किया था। वह था उनकी मनसबदारी व्यवस्था। अकबर की शासन व्यवस्था में प्रशासनिक पदों को मनसब कहा जाता था। और पदाधिकारियों को मनसबदार कहा जाता था। मनसबदारों का कर्तव्य था राजा के लिए सेना तैयार रखना, सेना की देखभाल करना और युद्ध के समय सेना को भेजना। पदों के अनुसार मनसबदारों के विभिन्न स्तर थे। सबसे ऊपरी पद केवल राजपरिवार के सदस्यों के लिए थे। उच्च पदों पर आसीन मनसबदारों को अमीर कहा जाता था। मनसबदारों को युद्ध के घोड़ों के पर्यवेक्षण के लिए समय-समय पर राजधानी में हाजिर करना पड़ता था।

कुछ बातें

मनसबदार और जागीर

- मनसबदारों को दो तरह से वेतन दिया जाता था – नगद अथवा राजस्व बरत देकर। राजस्व के इस बरत को जागीर कहा जाता था। जो जागीर पाते थे जागीरदार कहलाते थे। इस व्यवस्था को जागीरदारी प्रथा कहा जाता था। जो राजस्व वसूला जाता था, उसका एक अंश देकर जागीरदार अपना भरण-पोषण करते एवं घुड़सवारों की देख-रेख करते थे। पर जागीर का मतलब जमीन नहीं होती। कृषि भूमि, बंदरगाह अंचल, बाज़ार इन सबसे राजस्व वसूलने का अधिकार बरात की हैसियत से दिया जाता था।
- बादशाह मनसबदारों को स्वयं ही नियुक्त करते थे। उनकी पदोन्नति भी उन्ही पर निर्भर थी।
- जागीरदारों की बदली भी की जाती थी।
- मनसबदारी और जागीरदारी प्रथा वंशानुगत नहीं थी।

राजस्व व्यवस्था एवं जावती

भारतवर्ष कृषि प्रधान देश था। इसलिए अच्छी तरह शासन चलाने के लिए भूमि राजस्व व्यवस्था पर नियंत्रण रखने की जरूरत है। अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल से ही राजस्व का परिमाण निर्धारित करने के लिए जमीनों की पैमाईश या जरीप करने की व्यवस्था थी। बाद में शेरशाह के समय में भी जमीनों की मपाई होती थी। अकबर ने नए तरह से जमीनों को मपवाया। जमीन मापने के आधार पर एक तालिका तैयार करवाई थी अकबर ने देखा कि इस तालिका की प्रधान समस्या यह थी कि राजधानी के फसलों के मूल्य से दूसरी जगहों की फसलों के मूल्य हर वक्त नहीं मिलते ते। राजधानी की फसलों का मूल्य दूसरी जगहों के फसलों के मूल्य से अधिक थी। राजधानी के मुताबिक चलने पर कृषकों को और अधिक राजस्व देना पड़ता। इसलिए अकबर ने प्रत्येक वर्ष एवं प्रत्येक जगह का अलग हिसाब चलवाया। प्रत्येक जगह का उत्पादन, बाजार में फसलों का मूल्य इत्यादि विभिन्न प्रकार के तथ्यों को सरकार को देने का दायित्व कानून का था। राजस्व वसूलने एवं कानून को तथ्यों को मिला देने वाले कर्मचारियों को करोड़ी कहा जाता था। पहले के दस वर्षों के तथ्यों के आधार पर शुरू किए गए इस व्यवस्था को

'दहसाला व्यवस्था' कहा जाता था। 'दह' मतलब दस। अकबर ने १५८० ई० में दहशाला व्यवस्था प्रचलन करने में सहायता की थी उनके राज्यमंत्री राजा टोडरमल के नाम पर ही इस व्यवस्था का नाम टोडरमल व्यवस्था हुआ। हालांकि मुगल साम्राज्य में सर्वत्र जावती व्यवस्था शुरू नहीं की गयी थी।

राजस्व जो वसूलते थे, उन्हे निर्देश दिया जाता था कि वे कृषकों पर अत्याचार न करें। सरकार बुरे वक्त में कृषकों को ऋण देती थी। कभी-कभी जरूरत के अनुसार राजस्व से मुक्त भी किया जाता था। अकबर की राजस्व व्यवस्था में राष्ट्रीय स्वार्थ जिस प्रकार देखा गया था, कृषकों की सुविधाओं का खयाल भी रखा गया था। हालाँकि विद्रोही कृषक को राष्ट्र कठोर दंड देता था।

चित्र ५.११ : अश्वारोही शाहजहाँ (मूल चित्र कलाकार प्रयाग द्वारा बनाया गया)।

मुगल कारखाने में सिर्फ बादशाह के चित्र नहीं बनाया जाता था, पशु–पक्षी और उद्भिज का भी चित्र बनाया जाता था। इन चित्रों को प्राय: कई कलाकार मिलकर बनाया करते थे। रंगों के उपयोग और कला की रक्षक दक्षता भी दिखती थी चित्रों में। (१) जहांगीर और सूफी (कलाकर : विचित्र), (२) चिनार पेड़ पर गिलहरी (कलाकर : अबुल हसन), (३) नीलगाय और (४) गिरगिट (कलाकर : मनसूर)

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

१। रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए : **पूर्णांक १**

(क) घाघरा के युद्ध में बाबर का प्रतिद्वन्द्वी था .... (राणा संगा/ इब्राहिम लोदी/ नुसरत खान)।

(ख) बेलगाँव का युद्ध हुआ था .... (१५३९/ १५४०/ १५४१) ई० में।

(ग) जहाँगीर के शासन काल में सिख गुरु .... (जयसिंह/ अर्जुन/ होमु) को मृत्यु दण्ड दिया था।

(घ) राजपूत शासकों में .... (प्रतापसिंह/ मानसिंह/ यशवंत सिंह) ने मुगल सम्राटों के साथ संधि नहीं की।

(ङ) अहमदनगर के प्रधानमंत्री थे .... (टोडरमल/ मालिक अंबर/ बैरम खान)।

२। निम्नलिखित कथन के साथ नीचे के व्याख्याओं में कौन सी व्याख्या उपयुक्त है? **पूर्णांक १**

(क) **कथन :** मुगलों को तैमूर के वंशज के रूप में गर्व था।

व्याख्या- १ : तैमूर ने भारत में मुगल शासन की स्थापना की।

व्याख्या- २ : तैमूर ने कभी उत्तर भारत पर आक्रमण कर दिल्ली पर कब्जा किया था।

व्याख्या- ३ : तैमूर एक सफारी शासक था।

(ख) **कथन :** हुमायूँ को एक समय भारत छोड़कर चले जाना पड़ा था।

व्याख्या- १ : वह अपने भाई से युद्ध हार गया था।

व्याख्या- २ : वह शेर खान से युद्ध हार गया था।

व्याख्या- ३ : वह राणा सांगा से युद्ध हार गया था।

(ग) **कथन :** महेश दास का नाम बीरबल हुआ।

व्याख्या- १ : उसकी शरीरिक क्षमता काफी अधिक थी।

व्याख्या- २ : वह काफी बुद्धिमान था।

व्याख्या- ३ : उसने मुगलों के खिलाफ काफी वीरता प्रदर्शित की।

(घ) **कथन :** औरंगजेब के शासनकाल में बंगाल के समुद्री व्यापार में उन्नति हुई।

व्याख्या- १ : उसने पुर्तगाली जलदस्युओं को हराया था।

व्याख्या- २ : उसने शिवाजी को हराया था।

व्याख्या- ३ : बंगाल में व्यवसाय कर माफ कर दिया था।

(ङ) **कथन :** अकबर के शासनकाल में जरीब की पद्धति को जावती कहा जाता था।

व्याख्या- १ : जावत का अर्थ है फसल के मूल्य बाजार के लिए ठीक करना।

व्याख्या- २ : जावत का मतलब केवल बादशाह कर वसूल कर सकता है।

व्याख्या- ३ : जावत का अर्थ हुआ भू-कर निर्धारण करना।

३। संक्षेप में (३०-५० शब्दों में) उत्तर दीजिए : **पूर्णांक ३**

(क) मुगल अपने को क्यों बादशाह कहते थे ?

(ख) हुमायूँ अफगानों से क्यो हार गए थे ?

(ग) औरंगजेब के शासनकाल में क्यों मुगलों के अभिजात्य वर्ग के बीच खींच तान बढ़ गयी थी ?

(घ) उलह-ई-इल क्या है ?

(ङ) मुगलों के प्रशासन में सूबा का परिचय दो।

४। विस्तार से (१००-१२० शब्दों में) उत्तर दीजिए : **पूर्णांक ५**

(क) पानीपत के प्रथम युद्ध, खानवा के युद्ध और घाघरा के युद्ध की तुलना करें। पानीपत के प्रथम युद्ध में यदि मुगल विजयी न होते तो उत्तर भारत पर कौन शासन करते ?

(ख) शेर शाह के प्रशासन में कौन-कौन सी मानवतावादी बातों का परिचय मिलता है ? लिखो।

(ग) मुगलों की राजपूत नीति में क्या-क्या समानता और असमानता है ? विश्लेषण करें।

(घ) दक्षिण के आक्रमण का मुगल शासन पर क्या प्रभाव पड़ा था ?

(ङ) मुगल सम्राटों की क्या कोई उत्तराधिकारी नीति थी ? उत्तराधिकार के मामले ने कैसे उनके शासन को प्रभावित किया था ?

५। कल्पना करके लिखो (१००-१५० शब्दों में)

(क) अगर आप अकबर की तरह भिन्न-भिन्न धर्म सम्प्रदाय के लोगों वाले देश के सम्राट होते तो आपकी धर्म नीति क्या होती ?

(ख) मान लें कि आप सम्राट औरंगजेब हैं। आप कैसे दक्षिण की समस्या का सामना करेंगे ?

(ग) मान लें कि आप सत्रहवीं शताब्दी के एक मराठा मनसबदार हैं। आपकी जागीरदारी की आय कम हो गयी है। मुगलों और मराठों के बीच युद्ध शुरू हो गया है। ऐसे में आप क्या करेंगे अैर क्यों ?

षष्ठ अध्याय
नगर, व्यापारी और व्यवसाय

६.१ मध्ययुगीन भारत के शहर

शहर, नगर शब्दों से सभी परिचित है। 'नगर' शब्द संस्कृत से आया है। फिर 'शहर' शब्द फारसी का है। सल्तनत और मुगल काल में भारत में अनेक गाँव थे फिर अनेक शहर या नगर भी हुए थे। उसका कोई आर्थिक लेन-देन, व्यवसाय-वाणिज्य का मुख्य केन्द्र था। राजनैतिक एवं प्रशासनिक कारणों से शहर का जन्म हुआ। फिर कुछ-कुछ शहरों का जन्म धार्मिक स्थान या मंदिर-मस्जिद को लेकर हुआ। यहाँ पर हम उसी शहरों का इतिहास जानेगें। किस तरह एक शहर तैयार होता है, किस तरह उसका विकास होता है। कभी शहर का महत्त्व कम हो जाता है, कभी बढ़ जाता है। मध्ययुग के भारत के शहरों में से कोई-कोई शहर आज भी है, लेकिन उसके आकार तथा प्रकृति में अनेक बदलाव हुए है। इन शहरों का अधिकांश विकास १३ वीं शताब्दी से लेकर १८ वीं शताब्दी के मध्य हुआ। इनमें से हमने यहाँ दिल्ली शहर को लिया है। बहुत पहले से ही भारत की राजनीति एवं अर्थनीति में दिल्ली महत्त्वपूर्ण हो उठा था। इसके अलावें और भी अनेक उल्लेखनीय शहर थे। जैसे कि, बंगाल का पांडूआ, गौड़, नवद्वीप चट्टगाँव, पंजाब का लाहौर, उत्तर भारत का आगरा, मुगल सम्राट अकबर द्वारा निर्मित राजधानी फतेहपूर सिकरी, दक्षिण का बुरहनपुर, गोलकोण्ड, या बीजापुर एवं पश्चिम का अहमदाबाद, सूरत इत्यादि। इसी आधार पर हम दिल्ली शहर की कथा विशेष रूप से पढ़ेगें।

व्यवसाय वाणिज्य से घिरा तैयार हुआ और किसी अन्य शहर की कथा आप लोग जानते हैं? आवश्यकतानुसार घर के बड़ों या शिक्षक/शिशिकाओं की सहायता लें।

६.१.१ सुलतानों की राजधानी दिल्ली : तेरहवीं शताब्दी से सोलहवीं शताब्दी के अंत तक

भौगोलिक दृष्टि से दिल्ली अरावली पर्वत श्रृंखला के एक छोर और यमुना नदी से जुड़े हुए समतल क्षेत्र के संयोग स्थल पर स्थित है। यहाँ अरावली पर्वत के पत्थरों द्वारा जमीन के ढालानुसार सुरक्षित दुर्ग का निर्माण करना सहज था। और यहाँ यमुना नदी प्रधान (मुख्य) जलपथ एवं शहर के पूर्व की ओर प्राकृतिक सीमा थी। इसीलिए बहुत युगों से एक तरह राज्यों, दूसरी तरफ व्यापारी लोग इस प्रदेश (अंचल) की तरफ आकर्षित थे।

कुछ बातें

अनेक कालों की दिल्ली

दिल्ली शहर अनेको बार बना बिगड़ा। महाभारत में इन्द्रप्रस्थ नाम के एक नगर की कथा है। उसी को कोई कोई आधुनिक दिल्ली नगर का आदि रूप मानते हैं। मौर्य शासकों के अनेक वंशधर काल के ई० पू० के प्रथम शतक में दिल्ली नाम पाया गया। इसके अनेक वर्षों बाद ११ वीं शताब्दी में राजपुत शासकों की एक खानदान दिल्ली पर शासन करता था। उनको हटाकर चौहान राजपुतों ने 12 वीं शताब्दी में दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित किया। 11 वीं शताब्दी में मोहम्मद गोरी का सेनापति कुतुबुदिन ऐबक ने दिल्ली में सल्तनत शासक को स्थापित किया। आजतक मध्य युग की दिल्ली के सात नागरिक बस्तियों के चिह्न पाये गये हैं।

जरा सोच कर देखिए तो, यह दिल्ली शहर इतनी महत्वपूर्ण क्यों थी?

मध्य युग की दिल्ली शहर की उत्पत्ति एवं विकास दो रूपों में हुआ। एक है १३वीं –१४वीं शताब्दी की दिल्ली, दूसरा है। १७ वीं शताब्दी की मुगल सम्राट शाहजहाँ द्वारा निर्मित शाहजहाँनावाद यहाँ पर हम इन दो रूपों में दिल्ली शहर का किस प्रकार बदलाव हुआ है इसका अध्ययन करेगें।

कुतुबुदिन ऐबक के शासन काल में राजपुत शासकों के शहर किला राई को केन्द्र करके दिल्ली शहर का निर्माण हुआ था। यही था सल्तनत युग की पहली दिल्ली का कुतुब दिल्ली। बाद में गियासुद्दिन बलवन के शासन काल में यमुना नदी के उस पार एक शहर तैयार हुआ था। बलवन का पौत्र १३वीं शताब्दी में यमुना नदी के किनारे एक किला का निर्माण किया। जलालुद्दिन के शासन काल में इसे घेर कर एक 'नया शहर' (शहर – इ– नत) का निमार्ण हुआ। इस शहर में धनी या उच्च वर्ग के लोग आकर भीड़ करते थे। उनके साथ गायक और संगीतकार होते थे।

सुलतान अलाऊद्दिन खिलजी के समय मुगलों के आक्रमणों से नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए सीरिया में शकुपोकु केल्ला शहर को बनाया गया था। सुलतान गियासुद्दिन तुगलक अपने अनुचरों को साथ लेकर, टहलने के लिए पुराने शहर से दूर गियासुद्दिन तुगलकावाद को बनाया। फिर भी यह कभी भी पूर्णरूप से एक राजधानी या वाणिज्य का केन्द्र नहीं बना। मोहम्मद बिन-तुगलक के समय कुतुब दिल्ली (पुरानी दिल्ली) सीरि और उसके अपने बनाने जहाँपनाह को एक प्राचीर द्वारा घेरकर वृहत्तर शहर के तौर पर तैयार करने की चेष्टा की थी।

किन्तु यह कार्य पूरा नहीं हुआ। इतना कुछ होने के बाद भी सल्तनत शासक काल में पहली दिल्ली (पुरानी दिल्ली या कुतुब दिल्ली ने कभी भी अपना महत्त्व नहीं खोया।

मानचित्र : दिल्ली के सात शहर

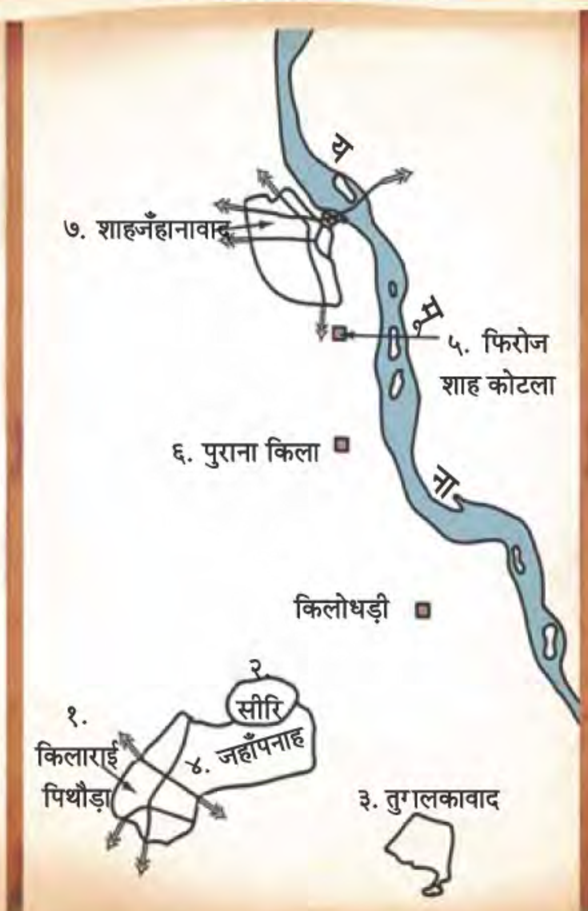

मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है।

कुछ बातें

इल्तुतमिश का 'नया शहर'

इल्तुतमिश के शासनकाल (१२११-१२३६ ई.) में दिल्ली शहर के उत्थान का सुन्दर वर्णन इतिहासकार ईसामी ने किया है। वे लिखते है यह दीपक की लौ के पास जिस प्रकार पतंग का झुण्ड उठ जाता है, उसी प्रकार अरब, ईरान, चीन, मध्य एशिया या वाईजानटाईन से अभिजात व्यक्ति विभिन्न प्रकार के शिल्पी-कारीगर वैध, रत्न व्यवसायी साधु-संत सभी आकर इलतुतमीश के 'नये शहर' में भीड़ किए।

शहर का नाम	प्रतिष्ठाता	राजवंश	समय
१. किलाराई पिथौड़ा	पृथ्वीराज	चौहान (राजपूत)	अनुमानतः ११९० ई०
२. सिरि	अलाऊद्दिन खिलजी	खिलजी (तुर्की)	अनुमानतः १३०३ ई०
३. तुगलकावाद	गियासुद्दिन तुगलक	तुगलक (तुर्की)	अनुमानतः १३२१ ई०
४. जहाँपनाह	मोहम्मद -बिन-तुगलक	तुगलक (तुर्की)	अनुमानतः १३२५ ई०
५. फिरोजावाद (फिरोजशाह कोटला)	फिरोजशाह तुगलक	तुगलक (तुर्की)	अनुमानतः १३५४ ई०
६. दीन-पनाह, शेरशाह (पुराना किला)	हुमायूँ शेरशाह	मुगल पर (अफगान)	अनुमानतः १५३३ ई० अनुमानतः १५४० ई०
७. शाहजहाँनावाद	शाहजहाँ	मुगल	अनुमानतः १६३८ ई०

जिस समय दिल्ली में सल्तनत शासन थोड़ा-थोड़ा मजबुत हो उठा, उस समय मध्य एशिया में एक जाति थी मंगोल। इनकी कहानी हमने पहले ही जान (पढ़) ली है। यह मंगोल जाति ईराक के बगदाद शहर को बहुत ही हानी पहुँचाई। बगदाद मुस्लिम सभ्यता का एक बहुत बड़ा केन्द्र था। बगदाद की दुरावस्था के कारण दिल्ली का महत्त्व बढ़ गया। मध्य और पश्चिम एशिया से लोग आकर दिल्ली में रहना शुरू कर दिये। दिल्ली सूफि साधकों का अन्यतम पवित्र स्थान बन गया। इसी कारण दिल्ली का नाम 'हजरत-ई-दिल्ली' हो गया। उस समय सूफी साधकों में सबसे विख्यात साधक थे शेख निजामुद्दिन ओलिया। सूफी साधकों की कथा हम सातवें अध्याय में पढ़ेगें।

कुछ बातें

दिल्ली अभी दूर है

दिल्ली शहर को लेकर अभी कहानी खत्म नहीं हुई। इसके मध्य एक विख्यात कहानी शेख निजामुद्दिन ओलिया तथा गियासुद्दिन तुगलक। (शासनकाल १३२०-१३२४ ई०) को लेकर है। एक बार सुलतान गियासुद्दिन तुगलक ने निजामुद्दिन ओलिया को शहर से बाहर निष्कासित कर दिया था। फिर भी निजामुद्दिन नहीं गये। इसके बाद सुलतान एक युद्ध यात्रा के लिए बांग्लादेश गये। जाते समय वह यह सारांश देकर गये कि उनके राजधानी लौटने से पहले निजामुद्दिन पूर्णरूप से शहर छोड़कर चले जायें। निजामुद्दिन के शिष्य पंथ को लेकर चिंता में पड़ गये। निजामुद्दिन ने सिर्फ इतना ही कहा, 'अनुज दिल्ली दूर अस्ते' (दिल्ली अभी बहुत दूर है)। युद्ध यात्रा से लौटने के क्रम लें सुलतान गियाजुद्दिन के स्वागत के लिये बनाया गया मंच का तम्बु टूट गया। इससे दबकर गियासुद्दिन की मृत्यु हो गई। सुलतान अब राजधानी नहीं लौट सके। इस घटना के साथ ही दिल्ली में निजामुद्दिन के जयजयकार की ध्वनि गूँज उठी।

१४वीं शताब्दी के दूसरे भाग में दिल्ली की तस्वीर बदल गई। पहले की तरह अब अरावली शिलाखण्डों के बीच का शहर न होकर फिरोजशाह तुगलक के फिरोजावाद शहर की नींव रखी जिसका मुख्य केन्द्र था फिरोजशाह कोटला। कोटला का अर्थ होता है 'दुर्ग'। यह शहर यमुना नदी के किनारे था। इस परिकल्पना के द्वारा शहर की जल समस्या का निदान किया गया। नदी के रास्ते समानों को लाना शहरों के निवासियों के पास पहुँचा देना सहज हो गया और उसके कारण खर्च भी कम हो गया। सुलतानों की पुरानी दिल्ली धीरे-धीरे नष्ट होने लगी। फिरोजावाद के पतन के फलस्वरूप इसकी क्षतिपूर्त्ति को पूरा करना संभव हो पाया कि नहीं यह निश्चित रूप से बताया नहीं जा सकता। इसी कारण फिरोजशाह तुगलक ने दिल्ली के शहर के पतन का ढाँचा ही बदल दिया था। इसके बाद से नदी के किनारे ही मुगलों और अफगानों ने अपने अनेक शहर बसाए और किला निर्माण किया।

सल्तनत काल में दिल्ली में अनेक बाजारों का पता चला है। यहा पर देश-विदेश के अनेक व्यापारी विभिन्न तरह के पन्ना लाते थे। व्यवसाय वाणिज्य की बातों को और भी विस्तार से जानेगें।

दिल्ली शहर की ओर भी कई विशेषताएँ थी जैसे मिश्रित प्रकार की बसती। यहाँ पर कोई धार्मिक या जातिगत परिचय पर आश्रित होकर बसती का उत्थान हुआ। साधारणत: एक ही पेशे के कारीगर जात-धर्म-निर्विशेष कार्यों से एक साथ एक ही मोहल्ले में रहते थे। शहर के गठन के दौरान सब समय परिकल्पना की विशेष दबाव नहीं थी। कई एक दशकों के बाद शहर की अवस्था बदल जाने के कारण जात-पाँत पर आधारित मुहल्लों के गठन का अवसर कम था। शहर के आस-पास कसवा या शहरतली का निर्माण हो गया था। इन्हें ही छोटा शहर कहा जाता था। 'कसवा' शहरों की तरह दिवारों से घिरी नहीं होती। गाँव तथा शहरतली की कोई निर्दिष्ट सीमा नहीं थी।

जिस इलाके में आप रहते है, वहाँ का बाजार-हाट कैसा है। एकदिन घुमकर देखों।

दिल्ली शहर की प्रधान समस्या थी जल का अभाव। इतने लोगों के लिए वर्षा का पानी इक्टठा करके रखना संभव नहीं था। सुलतानों के द्वारा कई 'हौज' या तालाबों के खुदवा देने के बाद भी पानी की समस्या ज्यों की त्यों थी। नजदीक के शहर धीरे-धीरे यमुना नदी के तरफ बढ़ते रहे। नदी की क्षण-क्षण में अपनी धारा को परिवर्तित करने के कारण पानी की समस्या रह ही जाती थी। सुलतान फिरोजशाह शहर के जल को लाने के लिए घाटियाँ खुदवायी। इसको छोड़कर शहर की जनसंख्या वृद्धि के कारण शहर में जल अभाव और स्थल अभाव दिखाई दिया।

कुछ बातें

मध्य युग में जल संरक्षण व जल संग्रह

'हौज' या तालाब (जलधारा) दिल्ली शहर की जल संग्रह करने के महत्त्वपूर्ण अंश थे। सुशासक के प्रतीक के लिहाज से जनसाधारण के लिए सुलतान जलधारा की खुदायी करवाते और सुधार करते। सुलतान इलतुतमिश ने हौज-ई-शामसी या 'हौज-ई-सूलतानी' की खुदायी करवायी, ईबन बतुता ने इस आठकोना जलधारा का वर्णन किया है। अलाऊद्दिन खिलजी ने और भी बड़ा चारकोना जलधारा। 'हौज-ई-अलाई ' की खुदवायी करवायी। बाद में इसका नाम हौज-ई-खास हो गया। गयासुद्दीन तुगलक नयी बनी तुगलकावाद में और कई जलाशयों का निर्माण करवाया, यहाँ पर ऊँचे बांध द्वारा जल को संग्रह करके रखा जाता था। दूसरी उल्टी ओर तरफ सुलतानी राष्ट्र के विरोधी स्थानीय शक्ति शहर के आदिवासियों को विपत्ति में डालने के लिए 'हौज-ई-शामसी' के नालों पर ऊँचे बांध बना दिये गए। गियासुद्दिन बलवन के शासक काल में मौत के भय से शहर के लोगजन जल (पानी) लाने के लिए तालाब के पास तक नहीं जा पाते थे। फिरोज तुगलक ने इन सब नालों के ऊपर बने बांध को तोड़कर जल प्राप्ति को स्वाभाविक किया।

चित्र ६.१

हौजे-ई-खास जलाशय। (दक्षिणी दिल्ली)। पीछे मद्रास सुलतान फिरोज शाह तुगलक की समाधि।

सोचकर देखियें तो मध्ययुग के शहरों की मिट्टी के ऊपर जलधाराएँ इतनी महत्वपूर्ण थी कि नहीं ?

दिल्ली के साथ उत्तर भारत के अन्य भागों से आवागमन के लिए विभिन्न रास्ते थें। मोहम्मद-बिन-तुगलक के समय दिल्ली और दौलातवाद के बीच रास्ते का निर्माण किया गया। किन्तु इन सारे रास्तों पर मौत तथा लूट-पाट के भय से आवागमन बंद करा दिया। सुलतान कोशिश करते रहे इन रास्तों को खुला रखने के लिए।

सल्तनत शासन काल के साढ़े तीन सौ वर्षों के दौरान दिल्ली सरकार की ग्यारह बार शासन केन्द्र के बदलाव हुआ। इसके फलस्वरूप किसी की जगह स्थायी भाव से शहर की नींव मजबुत नहीं हुई। सुलतानों की दिल्ली मोटे रूप से तीन सौ वर्षों तक टीकी रही। १५०५ ई० में सुलतान सिकन्दर लोदी के समय आगरा शहर का विकास शुरू हुआ। सल्तनत साम्राज्य की राजधानी आगरा हो गई। इसके बाद प्राय: एक सौ तीस-चालीस वर्षों से भी अधिक समय तक दिल्ली शहर की राजनैतिक महत्त्व कम होता गया।

फिर भी सूफी साधकों के इतिहास के केन्द्र के हिसाब से इस शहर को हिन्दुस्तान के जनजीवन में मर्यादा प्राप्त होती रही। भारत में मुगल साम्राज्य का प्रतिष्ठा बाबर ने पानीपथ के प्रथम युद्ध में इब्राहिम लोदी को हराकर आगरा तथा दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित किया। शेरशाह के शासन काल में यमुना नदी के पश्चिम की तरफ स्थित किला-ए-कुहना (पुनारा किला) राजधानी थी। १७ वीं शताब्दी के मध्य में मुगल बादशाह शाहजँहा के समय यमुना नदी के पश्चिम में शाहँजाहानावाद नगर के पतन होने से दिल्ली पुन: राजनैतिक केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हो गया।

कुछ बातें

दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य

विश्व का बड़ा से बड़ा साम्राज्य साधारणत: कोई एक राजवंश के नाम से परिचित है। भारत वर्ष का मौर्य, गुप्त, चोल, मुगल, चीन का मांचू, ईरान का सफाबी, तुर्की का अष्ठामान, यूरोप का फ्रांस हैप्सवर्ग, मैक्सिकों का आजटेक और दक्षिण अमेरिका का इनका साम्राज्य किसी न किसी राजवंश के नाम पर ही है। प्राचीन विश्व के एथेन्स या रोम शहर को केन्द्र करके बने साम्राज्य की तरह दिल्ली सल्तनत अथवा विजय नगर साम्राज्य इस क्षेत्र में अपवाद है। इस क्षेत्र में रोम साम्राज्य या दिल्ली सल्तनत का नाम ही रह गया है। दिल्ली सल्तनत पर जिस राजवंश का ही कब्जा क्यों न रहा हो, इस शहर का महत्त्व कभी नहीं घटा। परवर्ती युग में जिस तरह मुगल शासन के दौरान बार-बार शासन केन्द्र बदला, दिल्ली सल्तनत में इस तरह नहीं हुआ। सभी शासक वंशों ने दिल्ली को ही अपनी शक्ति का केन्द्र बनाया।

१६ वीं शताब्दी मुगल साम्राज्य का शक्ति केन्द्र : आगरा फतेहपुर सिकरी-लाहौर

अकबर के शासन काल के दौरान मुगल साम्राज्य का शासक केन्द्र बार-बार बदलता रहा। दिल्ली सल्तनत की तरह यहाँ कोई भौगोलिक क्षेत्र शक्ति का केन्द्र नहीं था। मुगल शासक कहाँ अवस्थान किये वहीं महत्त्वपूर्ण था। मुगल शासन काल के दौरान आगरा, फतेहपुर सिकरी, इलाहाबाद और लाहौर प्रत्येक शहर ही अति-सुरक्षित, प्राय: दुभेद्य दुर्गनगरी अथवा शासनकेन्द्र था।

शेख सलीम चिश्ती की स्मृति में अकबर ने राजधानी फतेहपुर का निर्माण किया। फिर भी आगरा का दुर्गशहर होने का महत्त्व कभी कम नहीं हुआ। पानी के अभाव के कारण अकबर फतेहपुर छोड़कर सन् १५८५ में लाहौर आ गया। यहाँ रहकर उत्तर-पश्चिम की सीमाओं पर नजर रखना भी सहज था। इसी के फलस्वरूप सन् १५९६ ई० से आगरा से ही, मुगल शासन का संचालन शुरू हुआ।

गंगा यमुना के मिलन स्थल इलाहाबाद दुर्ग से ही गंगा-यमुना दोआब अंचल की पहरेदारी की जाती था। राजपुताना अजमेर व उत्तर-पश्चिम सिन्धु नदी के पार तैयार एक ओर दुर्ग (किला) तथा उसके कुछ पूर्व की तरफ स्थित रोहतासदुर्ग प्रस्थान के लिए महत्त्वपूर्ण था। इन केन्द्रों की सहायता से सिन्धु यमुना-गंगा वाहिका , विशाल, उर्वर, समतल अंचलों में जनगन, कृषि, शिल्प तथा दूसरी प्राकृतिक धनसम्पदा के ऊपर नियंत्रण रखा जाता।

अकबर के शासन काल के दौरान बुन्देलखण्ड की प्रधान दुर्गनगरी ग्वालियर, राजपुतानों की चितौड़, तथा रणथौर एवं दक्षिणोत्तर की असिरगढ़ दुर्ग पर भी मुगलों ने कब्जा किया था। इसलिए हिन्दुस्तान की (उत्तर भारत की) दुर्ग ही मुगलों का प्रधान शक्ति केन्द्र था।

? सोचे तो दिल्ली इतनी महत्त्वपूर्ण क्यों है।

६.१.२ शाहजहाँनावाद : मुगल राजधानी : १७वीं -१८वीं शताब्दी

दिल्ली सल्तनत युग के इन शहरों का उत्थान हुआ था, इनसे कुछ ही दूर पर यमुना नदी के पश्चिम में एक ऊँचा स्थान शाहजहाँनावाद का उत्थान हुआ था। बादशाह शाहजहाँ के सुलतानों के शासन काल के दिल्ली शहर को ध्वंशावशेष को राजधानी के रूप में चुन लिया था। उन्होंने एक नयी जगह शहर का निर्माण करके सारभौमिक शासक के रूप में अपने को प्रतिष्ठित करना चाहा था। इस शहर को बनाते समय इस्लाम व हिन्दू शास्त्र के अनुसार परिकल्पना की गई थी। इससे यह प्रमाणित होता है कि ये मुगल शासक तत्कालीन समय में भारतीय बन गये थे।

कुछ बातें

मुगलों की राजधानी परिवर्तन : आगरा से शाहजहाँनावाद दिल्ली

यमुना के पार आगरा शहर टूट कर क्रमश: क्षतिग्रस्त हो चुका था। शहर के रास्ते भी संकरे हो गए थे। आगरा का किला अब मुगल बादशाहों के रंगीन कार्यक्रमों के लिए पर्याप्त नहीं था। इसीलिए शाहजहाँनावाद (शाहजहाँ का शहर) का निर्माण किया गया। इस तरह भारत की राजनीति के दिल्ली शहर के इस महत्त्व को भी स्वीकार किया गया। 'शाहजहाँनावाद' का निर्माण सन् १६३८ ई० में हुआ। १६४९ ई० में शाहजहाँ आगरा से यहाँ आ गये।

चाँदनी चौक की कथा

शाहजहाँ की पुत्री जहाँशाह ने लाल किला से जहाँशाह बेगम चौक तक विस्तृत बाजार के उत्तर की तरफ एक सराय और बगीचा एवं दक्षिण की तरफ एक स्नानागार का निर्माण करा दिया था। ज्ञानश्रुति के अनुसार, चाँदनी रात में पानी में चाँद की चमकिली किरणों के पड़ने के कारण उस स्थान का नाम 'चाँदनी-चौक' पड़ा। फिर यह भी कहानी है कि उस बाजार के सोना चाँदी के रूपयों की झलक के लिए चाँदनी चौक नाम का जन्म हुआ।

इस शहर का मुख्य स्थापत्य है लाल पत्थर से निर्मित 'किला मुबारक' (लालकिला के नाम से विख्यात) और जामा मस्जिद। शाहजहाँनावाद शहर को घेर कर पत्थर का एक बहुत ऊँचा तथा विशाल घेरा तैयार किया गया। इसके अंदर सत्ताइस स्तंभ और अनेक छोटे-बड़े दरवाजे बनाये गये, जिसमें सात बड़े दरवाजे थे। बड़े दरवाजे आज भी है।

कुछ बातें

दिल्ली का लाल किला

लालकिला का आयतन आगरा दुर्ग के दो गुणा है। इसके पूर्व की तरफ यमुना नदी, पश्चिम की तरफ परीक्षा। दुर्ग के चार बड़े दरवाजे है, जो एकसठ बुरूज धान दुर्ग के मध्य एक भाग में घर राजपरिवार का निवास स्थान, दूसरी तरफ विभिन्न दफ्तर। उस समय ६१ लाख रु० खर्च करके इसे बनाया गया था। उस समय दुर्ग तथा शहर के मध्य से नालों द्वारा जल का निष्कासन होता। इन जल निष्कासित नालों को कहा जाता नहर-ए-वहशत् (स्वर्ग का गढ़ा) इस्लामी रीतियों के अनुसार इन्हें साम्राज्य की स्मृद्धि का प्रतीक माना जाता।

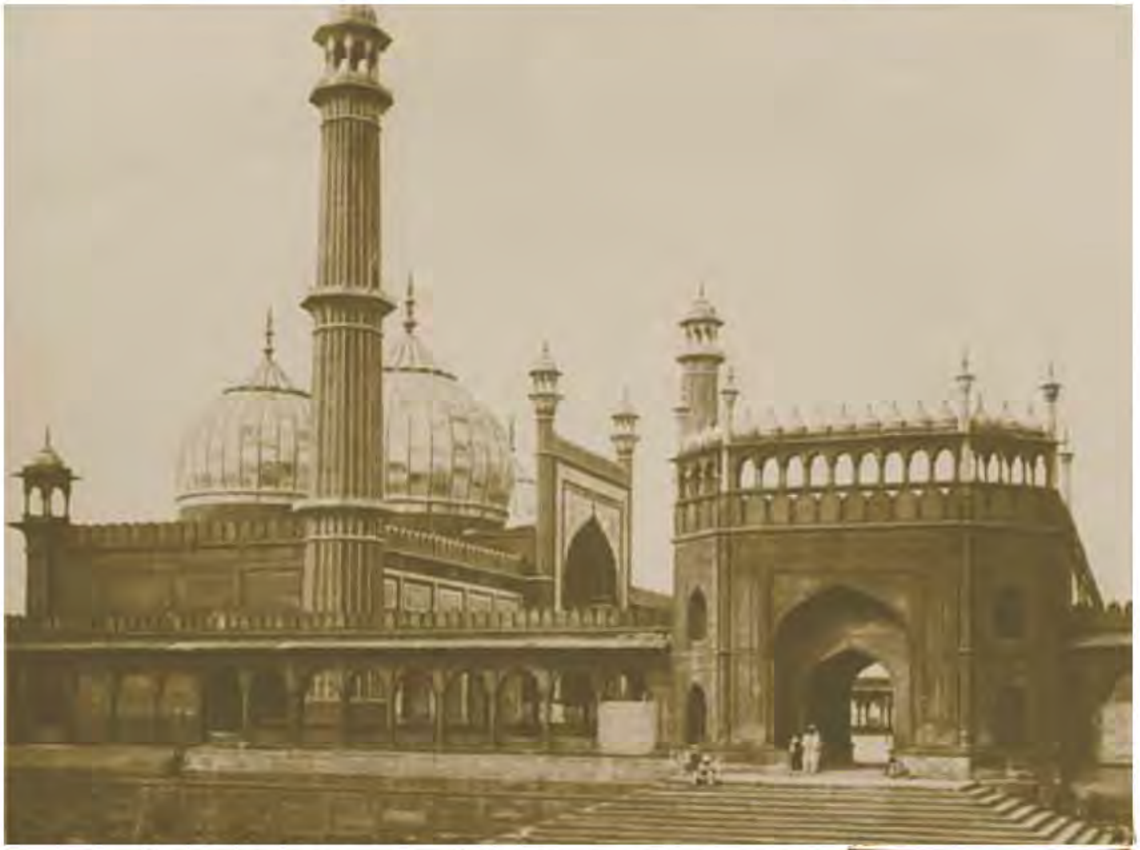

शाहजहाँनावाद की नागरिक बस्तियाँ भी मिलन सार प्रकृति की थी। यहाँ पर विभिन्न श्रेणी के मनुष्य विभिन्न प्रकार के घरों में रहा करते थे। धनी व्यापारी लोग टाली से सजाये ईंटों या पत्थरों के घरों में रहते थे। साधारण निवासी लोग अपने दुकान के ऊपर या पीछे निर्मित घरों में रहते थे।सबसे बड़े और सुन्दर घरों को 'हवेली' कहा जाता था। इससे निम्न घरों को मकान या काठी कहा जाता था। सबसे छोटे घरों को कोठरी कहा जाता था। इसके अलावे अलग से बंग्लों था। बड़े-बड़े घरों के आस-पास मिट्टी या सरकंडे द्वारा निर्मित बहुत छोटे-छोटे झोपड़े थे। इन झोपड़ो में साधारण सैनिक, दास-दासी, कारीगर प्रमुख लोग रहते थे। कहा जाता है कि इन झोपड़ों में आग लगने से अनेक लोग तथा गाय आदि पशु मारे जाते थे। फिर भी बस्ती इलाकों में कोई विभाजन नहीं था। उच्चपदस्थ अधिकारी और गरीब कारीगर एक ही मोहल्ले के आस-पास रहते थे। शहजहाँनावाद की दो प्रधान राजपथ था। राजपथ को बाजार कहा जाता, क्योंकि इसके दोनों तरफ क्रम से दुकाने थी।

चित्र ६.२

मस्जिद-ए-जहान नूमा (जामा मस्जिद पुरानी दिल्ली। यह चित्र अनुमानतः १८७०ई० की एक आलोक चित्र।

किसी-किसी उत्सव में सम्प्रदाय विशेष के लोग एक होकर पर्व मनाया करते थे। जैसेकि दीपावली के समय हिन्दू-मुसलमान एक साथ दिल्ली के प्रख्यात सूफी साधक शेख नासिरूद्दिन के 'चिराग-ए दिल्ली (दिल्ली प्रदीप) दरगाह में दीवाली (प्रकाश उत्सव) के उत्सव को मनाते थे। मोहरम में शिया और सुन्नी सम्प्रदाय के लोग समान रूप से सरिक होते।

शाहजहाँनावाद राजधानी शहर के रूप में बहुत दिनों तक स्थायी भाव से रहा, जिसका कुछ-कुछ अवशेष आज भी है। सुलतानों की राजधानी से इसकी उम्र अधिक थी। इससे यह लगता है कि शासक के हिसाब से मुगलों ने भी स्थायित्व को अर्जन करने में सफल रहे।

६.२ व्यापार और व्यापारी

अब हम मोटे तौर पर ११वीं शताब्दी से शुरू करके १८वीं शताब्दी के मध्य तक भारत के व्यवसाय वाणिज्य की कथा पढ़ेगें। भारतवर्ष जैसे विशाल देश विभिन्न व्यवसायी संप्रदाय के लोगों ने देश के विभिन्न प्रांतों में अपने समानों को सजाकर व्यापार किया था। उस समय रेलमार्ग या आकाश मार्ग द्वारा यातायात के माध्यम थे। यह सब मार्ग अनेकों के लिए दुविधा पूर्ण था, रास्ते में घटने वाली विभिन्न प्रकार की आपदा-विपदा की आशंका भी थी। फिर भी व्यवसायी लोग देश के एक प्रांत से दूसरे प्रांत तक पालतू जानवरों के पीठ पर लादकर, या नावों और जहाजों के माध्यम से समानों को लेकर बेचने-खरीदने के लिए जाया करते थे। इन सब व्यवसायियों के मध्य जिस तरह भारतीय व्यवसायी थे, उसी तरह भारत के बाहर से भी अनेक विदेशी व्यापारी भारत में व्यापार के लिये आते थे व्यवसाय वाणिज्य के कारण व्यवसायी रास्तों के किनारे, नदी या समुद्रों के पार विभिन्न तरह के हाट, मंडी, गंज, छोटे-बड़े शहरों का जन्म हुआ।

दिल्ली सल्तनत काल के व्यवसाय वाणिज्य का विस्तार हुआ था। इसके विभिन्न कारण थे। १३वीं शताब्दी से १४वीं शताब्दी तक दिल्ली के सुलतानों ने कई नये शहरों का निर्माण किया या पुराने शहरों में नयी तरह से घरों का निर्माण किया। विभिन्न तरह के मनुष्यों के आवागमन के फलस्वरूप किस तरह मध्य युग के भारत में शहरों का निर्माण हुआ इसका सुन्दर वर्णन उस समय के लेखापत्रों में मिलता है। इन सब शहरों में सुलतानों ने या उनके अभिजातों, सैनिकों या साधारण मनुष्यों ने निवास करना शुरू कर दिया फलस्वरूप यह शहर जनबहुल हो उठा। शहरों के किला, मस्जिद, बाजार, रास्ता-घाट, सराय, स्नानघर, जल सरोवर व्यवस्था इत्यादि के निर्माण करने में अनेक कच्चामाल और श्रमिकों की जरूरत पड़ती। यह सब श्रमिक विभिन्न धर्मों एवं जाति के थे। इनमें से कोई भारतीय तथा कोई भारत के

बाहर से आया हुआ व्यक्ति था। अनेक श्रमिक युद्धों में पराजित तथा बंदी-बनाये हुए दास थे। शहरों के नित्य प्रयोजन युक्त चीजें और घरों के निर्माण हेतु कच्चे मालों के लिए दिया जाने वाला आयात और निर्यात से वाणिज्य का विकास हुआ।

फिर, उस युग के सुलतान अपने समग्र प्रयोजनों के लिए विशाल सेनावाहिनी तैनात रखते थे। सुलतान अलाऊद्दिन खिलजी के समय से इनके (सेनावाहिनी) के भरण पोषण के लिए राष्ट्र के कृषकों से नगर कर वसुलते थे। उस नगद रूपयें को जुटाने के लिए कृषक व्यवसायियों के पास अपने लिए पैदा किये अनाजों को बेचने के लिए बाध्य थे। इसी अनाजों को लेकर वाणिज्य चलता था। इसे छोड़कर, सुलतान और अभिजात्य लोगों के विलास-वासना के लिए प्रयोजन युक्त मूल्यवान चीजों के व्यवसाय इस युग की एक वाणिज्यिक विशेषता रही।

६.२.१ देश का आंतरिक वाणिज्य

देश में दो तरह का वाणिज्य होता था। प्रथम ग्राम और शहर का वाणिज्य एवं दूसरा शहर के बीचों-बीच वाणिज्य। जनबहुल शहरों में आदिवासियों की जरूरत को पूरा करने के लिए ग्राम से शहर में जिन पदार्थों का आयात किया जाता था वे कम कीमत की होती थी। लेकिन ज्यादा परिमाण इन सभी वस्तुओं को ग्राम से शहर लाया जाता था। इन सभी वस्तुओं में विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ रहते थे जैसे : तेल, घी, अनाज, फल, नमक इत्यादि। शहर के बाजारों में इनकी ही बिक्री होती थी।

जिन सभी चीजों के बारें में यहां कहा गया है, उनमें से किन-किन चीजों की बिक्री अभी भी होती है?

वहीं एक शहर से दूसरे शहर में निर्यात मूलतः अधिक कीमती एवं शौकीन वस्तुओं का ही होता था और इन वस्तुओं की तैयारी केवल धनी और अभिजात वर्ग के लिए ही किया जाता था। इन सभी जगहों पर सभी जाति एवं धर्म के लोग ही कारीगर के रूप में कार्य करते थे। सुलतानों की राजधानी दिल्ली शहर में साम्राज्य के लिए विभिन्न क्षेत्रों से कीमती शराब एवं वस्त्रों का निर्यात किया जाता था। इसके अलावा बांग्लादेश, कौरमण्डल और गुजरात का सूती और रेशम के कपड़े की मांग चारों ओर थी। इस युग में प्रथम चरखा काटकर सूता बनाने का कार्य शुरू हुआ था।

सल्तनत काल के दूसरे हस्तकला वाणिज्य था। इसमें चमड़ा काठ और धातु से तैयार वस्तु गलीचा इत्यादि। इस काल में भारत में सर्वप्रथम कागज बनाने का कार्य शुरू हुआ। एक समय देखा गया कि दिल्ली के मिठाईवाला कागज को मोड़कर मिठाई ब्रिकी करना शुरू किया।

इस समय सम्पर्क व्यवस्था अर्थात् यातायात व्यवस्था में काफी उन्नति हुई। रास्ते के दोनों किनारे यात्रियों के लिए सरायखाना बनाया गया। जिसमें

यात्री और व्यापारी अपने सामानों को रखकर आराम करते थे। कर की वसुली एवं व्यापार वाणिज्य की सुविधा के लिए दिल्ली के सुलतान तंका (चाँदी का सिक्का) नाम की दो प्रकार की मुद्रा का प्रचलन प्रारंभ किया। जिसका महत्त्व काफी था

६.२.२ देशी और विदेशी वाणिज्य

भारत में तैयार किए गए वस्तुओं की मांग भारत के अलावा बाहर के देशों में था। व्यापार जलपथ और स्थल पथ के जरिए होता था। गुजरात और मालावार (केरल) बन्दरगाहों से पश्चिम की ओर अरब सागर, फारस उपसागर और लोहित सागर के तटवर्ती देशों में मूलत: वस्त्र, मसाला, और खाद्य पदार्थों का आयात होता था। सुलतान काल में युद्धबन्दी दास को भारत से पश्चिम एशिया में भेजा जाता था। और उन सभी देशों से घोड़ा कांच की सामग्री और कपड़े को लाया जाता था। सभी भारतीय शासक घोड़े के निर्यात के प्रति उत्साही थे, क्योंकि भारत में अच्छा नश्ल के घोड़े का जन्म नहीं होता था। सुलतान काल और मुगल काल के प्रथम में गुजरात ब्रोच और काम्बे बन्दरगाह पर इस वाणिज्य का प्रवेश द्वार था। अलाउद्दीन खिलजी ने जब गुजरात पर जीत हासिल किया तो दिल्ली सुलतान के साथ पश्चिम एशिया का फारस उपसागर और लोहित उपसागर में प्रत्यक्षता सम्पर्क स्थापित हुआ। सिन्धु प्रदेश से विशेष प्रकार के कपड़े, मछली उन देशों में निर्यात किया जाता था। मुगल काल में सूरत बन्दरगाह भारत का प्रधान बन्दरगाह था। इसके साथ पश्चिम एशिया के देशों के साथ अच्छा सम्पर्क था।

पूर्व की ओर भारतीय सामग्री की मांग बंगोपसागर के आस-पास के क्षेत्र में खासकर दक्षिण-पूर्व एशिया में था। गुजरात से उन सभी देशों में रंगीन कपड़ा जाता था, बंगाल से सूती कपड़ा, रेशम वस्त्र और चीनी का निर्यात होता। इसके बदले में गुजरात में दक्षिण-पूर्व एशिया से मसाला आता था। मालद्वीप से निर्यात किया हुआ कड़ी उस काल में बंगाल में मूद्रा के रूप में व्यवहार किया जाता था। इस तरह भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न देशों के साथ जल मार्ग द्वारा वाणिज्यिक सम्पर्क तैयार हुआ था।

सड़क मार्ग से भारतीय सामग्री के व्यापार प्रधानत मध्य एशिया और पश्चिम एशिया के विभिन्न स्थानों पर होता था। मुलतान शहर इस वाणिज्य का केन्द्र था। सड़क मार्ग से मध्य एशिया से मूल्यवान धातु जैसे सोना, चांदी और रत्नों का निर्यात होता। मुद्रा बनाने से इन सभी धातुओं की काफी मांग थी। इसका अलावा गहनों के लिए भी धातुओं की मांग थी। अलेकजेन्द्रीय, ईरान और चीन से ब्रोकड और रेशम आता था। यह पदार्थ काफी मूल्यवान था एवं इसकी मांग समाज के उच्च वर्ण के लोगों में काफी था।

कुछ बातें

रूपये-पैसे की कहानी

सल्तनत काल में सोने की मुहर, चांदी, तंका और तामार जितल प्रधान मुद्रा था। उस समय के अंत तक उत्तर भारत में एक ही प्रकार के चांदी और तांबे से मिश्रित मुद्रा का प्रचलन था। शेरशाह सोना, चांदी और तांबा यह तीन प्रकार की मुद्रा को चलवाया, जिसका अनुशरण मुगलों ने भी किया।

मुगल शासन में सोने की मुद्रा मोहर और अशर्फी नाम से परिचित था। इस युग की प्रधान मुद्रा चांदी से तैयार रूपया था। इसी से ही व्यापार-वाणिज्य होता और प्रजा कर देती थी। इसके अलावा तांबे से तैयार मुद्रा भी था। दक्षिण भारत के विजयनगर में सोना से तैयार होन प्रधान मुद्रा था। विजयनगर साम्राज्य के बाद दक्षिण प्रांत के दूसरे राज्यो में भी यह मुद्रा चालू था।

भारतीय व्यापार जगत्

व्यापारी

करवानी, नायक, बनजारा खाद्य को वहन करके लाते थे। शाह और मुलतानी दूर के व्यापार में दक्ष थे। ये सूद का व्यापार भी करता था। मुलतानों में ज्यादातर हिन्दू थे, लेकिन मुसलमान व्यापारियों की बाते भी जानी जाती है। बड़े-बड़े व्यापारी संगठन के अलावा छोटे-छोटे फेरीवाला भी था। सूफी साधकों में भी कुछ-कुछ छोटे-बड़े व्यापार करते थे।

सर्राफ

यह लोग आज बैकों के जैसे उस समय पैसे के विनिमय का कार्य करते थे। धातु की मुद्रा कितना खरा है, इसका भी परीक्षण करते थे।

दलाल

यह क्रेता और विक्रेता के बीच संपर्क बनाएं रखते थे। इतना ही नहीं वस्तुओं की कीमत भी तय कर देते थे।

बीमा व्यवस्था

व्यापारी दूर दराज में व्यापार करने हेतु जोखिम उठाकर खाद्य को भेजते थे।

कुछ बातें

हुण्डी

तुर्की शासन के समय कागज का प्रयोग शुरू हुआ। हुण्डी नाम की कागज को चालू किया गया था। व्यापारी किसी भी एक स्थान पर पैसे इक्ट्ठा कर कागज को खरीद लेते थे और दूसरी जगह जरूरत के अनुसार बेच देते थे। इससे व्यापारियों को एक जगह से दूसरे जगह पैसे ले जाने में सुविधा होती थी।

? अब सोचकर बताओं तो इस विराट और विभिन्न व्यापार जगत के लोग कौन थे ?

चित्र ६.३

मध्य युग के आफगानिस्तान के एक बाजार की गोदाम में खरीद बिक्री होती हुई बाबरनामा का चित्र।

कुछ बातें

युद्ध और वाणिज्य

मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में एक पुर्तगाली फादर आन्तोनियों मनसेराट ने मुगलों की युद्ध यात्रा का विवरण लिखा है। उनके लेख से यह पता चलता है कि विशाल आकार के मुगल सैनिकों के भरण-पोषण के लिए सैनिक यात्रा मार्ग के दोनों किनारे सम्राट के प्रतिनिधि रसद इक्टठा करने के लिए फैल जाते थे। स्थानीय व्यापारियों को उत्साह दिया जाता था ताकि वे सैनिक के साथ बाजार में आकर वस्तुओं की बिक्री कर सके। युद्ध को केन्द्र करने मध्ययुग के भारत में खाद्य पदार्थ का व्यापार होता था।

मध्य युग के समुद्र के व्यापार में देश के व्यापारी ही व्यापार करते थे भारतीय व्यापारियों में गुजराती, मारवाड़ी, तमील ओड़िया, तेलगु और बंगाली व्यापारियों का काफी नाम है। ये व्यापारी धर्म से हिन्दू मुसलमान और जैन थे। फारसी, और दक्षिण पूर्व एशिया के व्यापारियों के साथ इनका व्यापार होता था। इनमें से कुछ व्यापारी धनी थे जिन्हें व्यापारी सम्राट कहा जाता था। बड़े-बड़े व्यापारियों के पास अपना जहाज होता था और दूसरे व्यापारी दूसरों की जहाज को लेकर वस्तुओं को भेजते थे।

कुछ बातें

रास्ते की खोज

उत्तर भारत में गंगा और जमुना नदी प्रधान जल मार्ग था। आगरा, इलाहाबाद, वाराणसी, पटना, राजमहल हुगली और ढाका इत्यादि शहरों में नदियों के माध्यम से जुड़ा हुआ था। उत्तर पश्चिम लाहौर से शुरू करने दक्षिण सिंधु नदी के मोहाना तक का क्षेत्र जलपथ से जुड़ा हुआ था। उत्तर भारत से गुजरात जाने का दो रास्ता था। एक राजपुताना अजमेर होते हुए दूसरा

मध्य भारत से बुरहानपुर जाता था। भारत के पूर्व और पश्चिम तट के मध्य सम्पर्क सूत्र का महत्त्वपूर्ण सड़कपथ गुजरात सूरत से औरंगाबाद, गोलकुण्डा होते हुए बंगोपसागर के मसुलीपटनम तक था।

मध्य युग के लोग कैसे अपने व्यापार को करने के लिए दूर जाते थे इसका उदाहरण चिश्ती सूफी साधक 'गेसू दराज' की जीवनी में मिलती है। बचपन में वे दिल्ली से मुहम्मद बिन तुगलक की नई राजधानी दौलतावाद चला गया। सात वर्ष के बाद १३३५ ई० में वे दिल्ली लौट आए और वहां पर तिरसठ साल रहे। १३९८ ई० में तैमूरलंग ने जब दिल्ली पर आक्रमण किया तो वे पुनः दक्षिण लौट आया।

६.३ भारत में विदेशी व्यापारियों का आगमन

यूरोप से जलमार्ग द्वारा भारत आने का साहस सर्वप्रथम पुर्तगालियों ने किया। उनका प्रधान उद्देश्य था भारत और दक्षिण-पूर्व एशिया के मसालों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना। यूरोप में भारत के मसालों विशेषकर गोलमरिचों की माँग बहुत अधिक थी। पुर्तगालियों ने सोचा कि भारत से मसालों को खरीद कर यूरोप के बाजारों में बेचने से अत्यधिक लाभ होगा। यही सोचकर पुर्तगाल के राजदूत वासकों-डी-गामा अफ्रीका के उत्भाल अंतरिप होते हुए सन् १४९६ ई० में भारत के दक्षिणी मालावार के कालिकोट बन्दरगाह पहुँचा। कालिकोट बंदरगाह अरब सागर के किनारे था। इसके साथ पश्चिम एशिया के बंदरगाहों से बहुत ही अच्छा सम्पर्क था। इसके फलस्वरूप विभिन्न देशों के व्यवसायी यहाँ पर व्यवसाय के उद्देश्य से आते थे।

वासकों-डी-गामा के बाद पुर्तगाल के नव-सेनापति ड्यूक आफ अल्वोकार्क भारत आये। वह अरब सागर के वाणिज्य से अरबियों को हटा कर अपना आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश की। उसी के माध्यम से गोवा में पुर्तगालियों की प्रधानता स्थापित हुई।

यूरोप के व्यवसायी सिर्फ व्यापार नहीं करते थे। वे समुद्र पर भी अपना अधिकार जमाने की कोशिश करते थे। उनके जहाज उत्तम किस्म के थे और उनमें अग्निशस्त्र रहता था। इसी के बल पर वे अरब सागर एवं हिन्द महासागर पर शक्तिशाली हो गये। समुद्र के भीतर चलने वाले जहाजों के ऊपर विभिन्न तरह के नियम कानून लागू करने की चेष्टा करने पर भी पुर्तगालियों को अवश्य ही कोई विशेष असफलता नहीं मिली।

कुछ बातें

नये देश की खोज यूरोपीय व्यक्तियों द्वारा

१५वीं शताब्दी के अंत तक यूरोपीय लोग समुद्री अभियान में निकल चुके थे। वे यूरोप के बाहर जो महादेश थे वहाँ जाकर व्यापार वाणिज्य के माध्यम से धन अर्जन करना चाहते थे। इस तरह वे अफ्रीका, एशिया, उत्तर और दक्षिण अमेरिका पहुँचे। यह सब अभियान पालतोला जहाजों के माध्यम से होता। उत्साही अभियानकारी यूरोप के विभिन्न देशों के राजाओं तथा अभिजात्य वर्ग के लोगों के समर्थन से यह अभियान शुरू करते। पहले स्पेन एवं पुर्तगाल देश के निवासी इस अभियान में सक्रिय थे। इसके बाद इंग्लैड, हालैण्ड, फ्रांस आदि देशों के व्यवसायी तथा सरकार इस कार्य में उत्साही हो उठे।

मानचित्र ६.२ : वासको-डी-गामा का भारत खोज

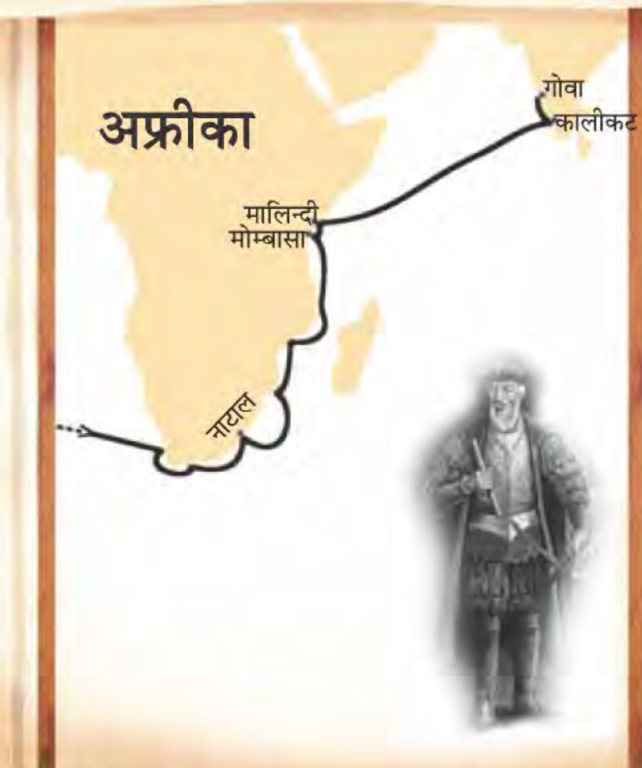

मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं

कुछ बातें

ईस्ट इंडिया कम्पनी

१६०० ई० में इंग्लैड में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी का उत्थान हो चुका था। १६०२ ई० में डच ईस्ट इंडिया कम्पनी तैयार हुई। १६६४ ई० में पेरिस में फ्रांस ईस्ट इंडिया कम्पनी तैयार हुई।

कुछ बातें

बंगाल के व्यापारिक कोठियाँ

बंगाल के बैण्डेल में पुर्तगालियों को अपनी घाँटी बनायी थी। चुचुड़ा में डच ने चंदन नगर में फ्रांसों ने, श्रीरामपुर के दिनमारों ने और कलकत्ते में अंग्रेजों ने अपनी कोठियों का निर्माण किया था।

१७वीं शताब्दी के यूरोप के अनेक व्यापारिक कम्पनियों का पतन हो गया। इसके मध्य मुगल काल के अंग्रेजी, डच या उलन्दाज, फ्रांसीसी, दिनमार जैसे प्रमुख व्यवसायी भारत में व्यापार करने आये थे। भारत के विदेशी व्यापारियों के उलंदाजों ने पश्चिम भारत के सूरत तथा दक्षिण भारत के मसूलिपटनम बंदरगाहों पर अधिकार स्थापित किया था। मसुलिपटनम के प्रति वे इसलिए आकर्षित हुए क्योंकि दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में दक्षिण भारत के सूती कपड़ों की बहुत मांग थी। दूसरी-तरफ सूरत भारत के पश्चिमी उपकुल के अरब सागर का प्रधान बंदरगाह था। कुछ समय बाद डच भी बांग्लादेश चले आयें।

अंग्रेजी व्यवसायियों ने पहले मसुलिपटनम तथा बाद में सूरत में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित की। इंग्लैण्ड के राजा जेम्स प्रथम (शासनकाल -१६०३-१६२५ ई०) का दूत टाम्स रो मुगल जहाँगीर के राजसभा में आया था। उसी की कोशिश से आगरा, पठान, और बरहनपुर में अंग्रेजों की कोठियाँ स्थापित हुई। मुगल बादशाह शाहजहाँ ने दासों का व्यापार करने के अपराध

में पुर्तगालियों को हुगली से भगा दिया था। (१६३२ ई०)। इसके फलस्वरूप उलंदाज, अंग्रेज और फ्राँसीसी को बंगाल के व्यापार करने का अवसर मिल गया।

यूरोपीय व्यापारी भारतीय दलालों के माध्यम से काम करत थे। वे भारतीय दलालों को दादन। (अग्रिम धन या कच्चा माल) दे देते थे, जिसके द्वारा भारतीय कारीगर यूरोपीय व्यापारियों के आवश्यकतानुसार समानों को बनाकर देते थे। यूरोपीय कम्पनियों के यातायात के फलस्वरूप बांग्लादेश के कृषक किसी-किसी क्षेत्र में धान को छोड़कर अफिम और रेशम की खेती करना शुरू कर दिया। इस तरह बाजार में फसल बेचकर लाभ कमाने के लिए जो खेती की जाती थी, उसे वाणिज्यिक खेती कहा जाता है।

रेखाचित्र ६.१ यूरोपीय व्यापारियों का वाणिज्य

कुछ बातें

उलंदाज और दिनमार

नीदरलैण्ड देश के लोगों को डच कहा जाता है। यह बांग्ला भाषा में उलंदाज के नाम से परिचित हैं। उलंदाज शब्द पुर्तगाली शब्द हलंदाज शब्द से आया है। नीदरलैण्ड देश होलैण्ड नाम से भी जाना जाता है। दिनमार से डेनमार्क के लोगों को समझा जाता है।

तुम्हारा घर जहाँ है उसके आस-पास क्या पुरानी कोठी है, जैसे कि नील कोठी देखते हो या उसकी कहानी सुनते हो ?

यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ धीरे-धीरे अनेक घाटियाँ बनानी शुरू कर दी। कम्पनियों के कोठियों में यूरोपीय व्यवसायी अपनी तरह से घर बनाते। कोठियों को वे अस्त्र -शस्त्र की सहायता से किले की तरह सुरक्षित रखते। यहाँ उनके रहने का घर तथा माल रखने का गोदाम रहता। अपने जहाजों से वे यूरोप में माल भेजते। भारतीय जहाज की तुलना में यूरोप में माल बड़े होते तथा समुद्री नवयुद्ध के पर्दर्शी भी होते थे।

इस तरह १७वीं शताब्दी में भारत का गुजरात, उत्तर और दक्षिण कोरोमण्डल एवं बंगाल यूरोपीय व्यापारियों का प्रधान अंचल (स्रोत) बन गया। यह चार अंचल (स्रोत) यथाक्रम सूरत, मसुलियट्टनम पल्लिकट और हुगली यूरोपीयों का प्रधान वाणिज्यिक घाटियाँ थी। इन सब अंचलों के कारीगर अलग-अलग वहाँ के गाँवों में रहते थे। कोरोमण्डल अंचल के गाँवों में सुता काटने, ताँती, कपड़ा धोने और रंग करने के कामों में नियुक्त श्रमिकों की संख्या कृषकों से अधिक थी।

मुगल शासक व्यापारियों को व्यापार करने के लिए प्रोत्साहित करते। सामानों के ऊपर से कर हटाकर कोठियाँ बनाने की अनुमति देकर वे व्यापारियों सुविधा प्रदान करते। मुगल अभिजातों में कोई-कोई तो पूरी तरह से व्यापार करते थे। फिर भी यह प्रयास बहुत ही सीमित था। मुगल सम्राट, राजपुत एवं अभिजात वर्ग के लोग अपने प्रयोजन एवं शौख को मिटाने के लिए अपने कारखाने में कारीगरों से विभिन्न प्रकार के शौखियाँ चीजे, अस्त्र, विलासद्रव (शराब) को बनवाया करते। किन्तु ये सब कभी भी व्यापार के उद्देश्य से तैयार नहीं किया गया। उस यूरोप में जब व्यवसाय-वाणिज्य को केन्द्र कर अर्थनीति तैयार हुई, उस समय भारत के कृषि ही अर्थनीति का प्रधान केन्द्र थी।

मानचित्र ६.३: ई० सत्रहवीं शताब्दी के भारत में कुछ घाटी
सिंधु
दिल्ली
आगरा
गंगा
यमुना
पटना
वाराणसी
सा मु ग मा ल ज्य
चन्दननगर(फ)
श्रीरामपुर(दि)
कलकत्ता(ब्रि)
नर्मदा
सुरात(ब्रि)
दिउ(प)
दमन(प)
बेसिन(प)
गोदावरी
बम्बई(बि)
चोल(प)
पिपली(ब्रि)
हैदराबाद
विशाखापटनम(ब्रि)
इयानन
कृष्णा
मसुलिपटनम(ब्रि)
गोवा(प)
पुलीकट(उ)
मद्रास(ब्रि)
माहे(फ)
पण्डिचेरी(फ)
कालीकट(प)
नेगापटनम(उ)
कोचीन(उ)
प— पुर्तगाली
उ— उलंदाज
ब्रि— ब्रिटिश
फ— फारसी
दि—दिनमार
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

१। **निम्नलिखित नामों में से कौन नाम बेमेल है। उसके नीचे चिह्न लगाईए :** **पूर्णांक १**

(क) शाहजहाँनावाद, तुगलकवाद, किलाराई पिथौड़ा, दौलतावाद

(ख) तंका, मोहर, हुण्डी, जितल।

(ग) नील, गोलमरिच, सूतीवस्त्र, चाँदी।

(घ) करयानी, कसवा, बनजारा, मुलतानी।

(ङ) पान्डुआ, बरहनपूर, चट्टगाँव, गोड़।

२। **'क' स्तंभ को 'ख' स्तंभ से मिला कर लिखें :** **पूर्णांक १**

'क' स्तंभ	*'ख' स्तंभ*
सीरि	डेनमार्क के निवासी
दिनमार	शेख नासिरूद्दीन
सर्राफ	अलाऊद्दीन खिलजी
हौज	मुद्रा विनिमययोग्य
चिराग-ए-दिल्ली	जल-संरक्षण

३। **संक्षेप में उत्तर दीजिए (३०-३५ शब्दों में)** **पूर्णांक ३**

(क) किस तरह मध्ययुग में भारत में शहरों का निर्माण हुआ ?

(ख) कैसे सुलतानों के समय की पुरानी दिल्ली का धीरे-धीरे क्षय हुआ ?

(ग) किस तरह और कहाँ शाहजहाँनावाद शहर का निर्माण हुआ ?

(घ) यूरोपीय कोठियाँ किस प्रकार की थी ?

(ङ) मुगल सम्राट किस तरह व्यवसाय -वाणिज्य को प्रोत्साहित करते थे ?

४। **विस्तृत (१०० से १२० शब्दों में)** **पूर्णांक ५**

(क) १३वीं शताब्दी में क्यों दिल्ली एक महत्त्वपूर्ण शहर बना ?

(ख) शाहजहाँनावाद के नागरिकों का चरित्र कैसा था ?

(ग) दिल्ली सल्तनत काल में व्यापार-वाणिज्य का विस्तार क्यों हुआ ?

(घ) मध्य युग में भारत देश के आंतरिक का रेखाचित्र देखकर उस युग के विदेशी वाणिज्य के संबंध में तुम्हारे विचार क्या है ?

(ङ) यूरोपीय कम्पनियों के आयात निर्यात का रेखाचित्र देखकर उस युग के विदेशी वाणिज्य के संबंध में तुम्हारे विचार क्या है?

कल्पना करके लिखिए (१००-१५० शब्दों में)

(क) यदि तुम सल्तनत काल की दिल्ली के एक निवासी होते तो किस तरह तुम प्रत्येक दिन आवश्यक जल की प्राप्ति करते?

(ख) मानो तुम एक यूरोपीय कम्पनी के व्यापारी हो। व्यापार के लिए तुम्हें बम्बई से सूरत होते हुए आगरा मुगल दरबार में जाना होता। तुम किस रास्ते से होकर जा सकते हो?

(ग) १८वीं शताब्दी के शुरूवात में बंगीय सागर के भागीरथी मुहाने से तुम नाव खेते हुए नदी के रास्ते क्रमशः उत्तर की ओर जा रहे हो। रास्ते में तुम कहाँ यूरोपीय कोठियाँ देखोगें?

रूई की धुनाई, सूते को रंग करना और कपड़ा तैयार करना

मछली पकड़ना और पक्षी पकड़ना

मुगल शिल्पकारों की दृष्टिकोण से भारतवर्ष की जीवन और जीविका

आगरा का दुर्ग निर्माण (१)

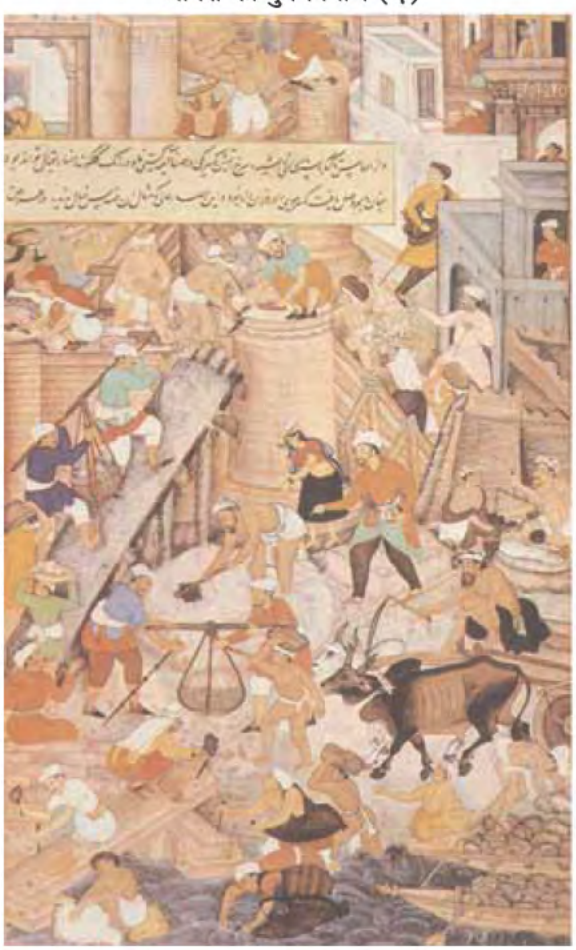

आगरा का दुर्ग निमार्ण (२)

सप्तम अध्याय जीवनयात्रा और संस्कृति

७.१ जीवनयात्रा

सुलतान, बादशाह, राजा-वजीर देश पर शासन किये। उनकी बाते विभिन्न पुस्तकों में लिखी हुई मिलती है। लेकिन देश के असंख्य साधारण गरीब लोगों के बारे में विशेष तौर पर कुछ भी नहीं लिखा गया। लेकिन वहीं गरीब लोगों द्वारा किये गए खेती-बारी और उद्योग से जो पैसे की आय होती थी, उसी आय से ही राजा और बादशाहों का शासन चलता था। इसलिए देखा जा सकता है कि सुलतानी काल और मुगल काल में साधारण लोगों का जीवन कैसा था।

देश के अधिकांश लोग गाँव में ही रहते थे। स्थानीय जरूरत को पूरा, करना ही खेती का मूल लक्ष्य था। निर्दिष्ट कुछ स्थानों की तुलना में बड़े उद्योग देखने को मिलते थे। कच्चे माल का आयात और तैयार माल का निर्यात करने की सुविधा हेतु नदी के किनारे पर ही उद्योगों को लगाया जाता था। पश्चिम बंगाल और गुजरात में यह सुविधा होने के कारण ही वहां उद्योग नगरी (शिल्पांचल) हो पाया, देश के शासक किसानों की खेती में से अपने लिए हिस्सेदारी करवाते और उसके बदले में साधारण लोगों को शांति से रहने की व्यवस्था प्रशासन की ओर से करवाते थे।

गंगा की समतल भूमि से उत्पन्न फसलों में से आम की मांग सबसे अधिक थी। अंगूर, खजूर, जामुन, केला, कटहल, नारियल जैसे फसलों की भी खेती होती थी विभिन्न प्रकार के फूल, चंदन की लकड़ी, घृतकुमारी और विभिन्न प्रकार के औषधीय जड़ी-बूटियाँ भारत में होती थी। मिर्च, आदि एवं विभिन्न मसालों की भी खेती होती थी। इतना ही नहीं बल्कि विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षियों का पशु-पालन भी होता था।

कृषि को आधार बनाकर गाँव में कूटीर उद्योग चलता था। चीनी एवं विभिन्न प्रकार के सुगंधित इत्तर बनाने का उद्योग भी विख्यात था, क्योंकि यह सारे उद्योग वंश परम्परा से चली आ रही थी। इसलिए पुराने यंत्र एवं मशीनों का व्यवहार करने के कारण ही उद्योग वस्तुओं का उत्पाद निम्न श्रेणी का होता था।

उस समय जो उद्योग चल रहे थे उनमें से वस्त्र उद्योग धातु कार्य, पत्थर का कार्य, कागज उद्योग इत्यादि महत्वपूर्ण था। राजमिस्त्री और पत्थर की कारीगरी में दक्ष कारीगरों की मांग चारों ओर थी। टाली और ईंटों का व्यवहार करके घर बनाने की पद्धति बंगाल और विभिन्न क्षेत्रों में आरम्भ हुआ।

रोजमर्रा की बुनियादी वस्तुओं की कीमत सभी समय एक समान नहीं था। देश में अकाल और युद्ध होने पर ही खाद्य पद्धार्थों की कीमतों में बढ़ोत्तरी होती थी। इतना ही नहीं सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इब्राहिम लोदी के शासन काल में सबसे कम कीमत पर ही खाद्य पद्धार्थ मिलते थे। एक बहुलोली मुद्रा (जो सुलतान बहलोल लोदी के समय चालु हुआ था) देकर भी व्यक्ति दस मन खाद्य पद्धार्थ, पाँच किलो तेल और दस गज मोटे कपड़े खरीद सकते थे।

अलाउद्दीन खिलजी और मुहम्मद-बिन-तुगलक के समय खाद्य पदार्थों की कीमतों में तुलना करने से क्या कोई अंतर देखा जा सकता है?

संक्षिप्त बातें

प्रति मन की कीमत जितल के अनुसार

खाद्य पद्धार्थ	अलाउद्दीन खिलजी	मुहम्मद बिनतुगलक	फिरोजशाह तुगलक
गेहूँ	७½	१२	८
जौ	४	८	४
धान	५	१४	—
दाल	५	—	४
मसूर	३	४	४
चीनी	१००	८०	—
बकरी का मांस	१०	६४	—
घी	१६	—	१००

कहा जाता है कि मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में पश्चिम बंगाल में वस्तुओं की कीमत बहुत ही सस्ती था। इबनबतूता ने बंगाल की चीजों की कीमतों की एक तालिका दी। जो इस प्रकार है —

एक मुर्गी	१ जितल
पन्द्रह कबूतर	८ जितल
एक भेड़	१६ जितल
तीस हाथ लम्बा अच्छा कपड़ा	२ तंका
चावल (प्रति मन)	८ जितल
एक बकरी	३ तंका
चीनी (प्रति मन)	३२ जितल

उस समय का समाज संयुक्त परिवार के आधार पर था। समाज एवं परिवार में पुरूषों की तुलना में महिलाओं का स्थान बहुत ही निम्न (नगण्य) था। हिन्दू और मुस्लिम समाज में घूंघट प्रथा और पर्दा प्रथा का प्रचलन जोरों पर था। लेकिन गरीब किसान परिवारों में चाहे महिला हो या पुरूष दोनों को कंधे से कंधा मिलाकर परिवार और खेती के लिए परिश्रम करना पड़ता था।

इन सब कार्यों अथवा क्षेत्रों में महिलाओं के लिए घूघंट और पर्दा प्रथा का विशेष प्रचलन नहीं था।

साधारण गरीब जनता की बस्तियों के लिए कुछ सामान्य उपकरण लगते थे। जैसे एक पातकुमार, डोवा अथवा तालाब रहने से ही तैयार कर लेते थे। घर बनाने के लिए एक पेड़ का तना, छप्पर लगाने के लिए पुआल। इन्हीं उपकरणों का प्रयोग कर वे आसानी से घर बना लेते थे।

सरकारी खजाना और विभिन्न प्रकार के बकाया का भुगतान करके फसल का कुछ भाग किसानों के पास रहता था। वही फसल उनके रोजमर्रा जीवन निर्वाह का आधार था। वर्ष के कुछेक ऋतुओं में किसानो के परिवार दिन-रात परिश्रम करता था। किसानों के दैनिक जीवन से सम्बंधित कुछ ही तथ्य मिल पाता है। मुगल सम्राट जहाँगीर के शासनकाल में एक ऊलन्दाज व्यवसायी ने लिखा है कि उस समय गरीब लोग यह जानते ही नहीं थे कि मांस का स्वाद कैसा होता था। उनके प्रतिदिन का भोजन था एक थाली खिचड़ी।

उसे ही खाकर वे दिनभर अपने खाली पेट को भरते थे। पहनने के कपड़े भी पर्याप्त मात्रा में नहीं था। एक जोड़ी खटियां और खाना बनाने के लिए दो एकाध बर्त्तन ही उनकी घर गृहस्थी थी। उनके बिछावन के लिए एक या दो ही चद्दर होते थे, उन्हें ही बिछा कर वे सोते थे और जरूरत पड़ने पर उससे शरीर भी ढंकते थे। गर्मी के दिनों के लिए तो यह पर्याप्त था, लेकिन शीतकाल में उन्हें अत्यधिक कष्टों को सहन करना पड़ता था। आनन्द उत्सव उनके जीवन के लिए प्राय: मुश्किल ही था।

दूसरी तरफ देखा जाए तो मुगल सम्राट अत्यंत धनी थे। उनके अनुयायी (अनुरागी)अत्यधिक सम्पत्ति के मालिक थे। दुर्ग, राजप्रासाद, मस्जिद मदरसा और ताजमहल जैसे स्थापत्य निर्माण के लिए वे पर्याप्त मात्रा में अर्थ व्यय करते थे। कीमती पोशाक, आभूषण, विभिन्न प्रकार की विलास साम्रागी के लिए वे तनिक मात्र भी चिन्ता नहीं करते थे।

उस समय के खेल-कूदों में से कुश्ती सबसे लोकप्रिय खेल था। अभिजात, साधारण लोग ही नहीं बल्कि सांधु संन्यासी भी कुश्ती के सम्बंध में अत्यधिक उत्साही थे। तीर धनूष, और तैराकी उस समय लोकप्रिय था। बंगाल में काठ से निर्मित एक प्रकार के खेल को जाना जाता है। लोकगीत, नृत्य, जादूगरी का खेल इत्यादि उस समय साधारण लोगों के लिए आनन्द का उपकरण था।

दिल्ली एवं क्षेत्रीय राज्यों में शासन व्यवस्था में परिवर्तन समय-समय पर होता रहा। लेकिन सुलतानी और मुगल काल में देश की साधारण लोगों की जीवन यात्रा प्राय: एक ही था। कठिन परिश्रम और अभाव का संसार यही उस समय के भारतीय किसानों, कारीगरों और श्रमिकों के जीवन का पर्याय था।

? इससे आप उस समय के समाज व्यवस्था के संबंध में क्या कह सकते है?

कुछ बातें

उस युग की समय सीमा

दिन-रात के समय को समझने के लिए पूरे दिन-रात को आठ पहर (फारसी में 'पास' से भाग करना पड़ता था। एक एक पहर आज के समयानुसार प्राय: ३ घण्टे के होते थे। आठ पहर फिर साठ घड़ी से (घण्टा) बंटा हुआ था। एक घड़ी का फिर तरह दिन-रात मिलाकर तीन हजार छ: सौ पल होता था। प्रहर और घड़ी का यथायथ समय समझ में आ जाता था पाँजि की सहायता से जल घड़ी को देखकर समय का निर्धारण किया जाता था। प्रमुख शहरों में घंटे की आवाज से समय बतलाने की प्रथा थी। सुलतान फिरोज शाह के समय इस कार्य के लिए एक अलग-विभाग था।

विभिन्न प्रकार की जीवन जीविका : सल्तनत और मुगल काल

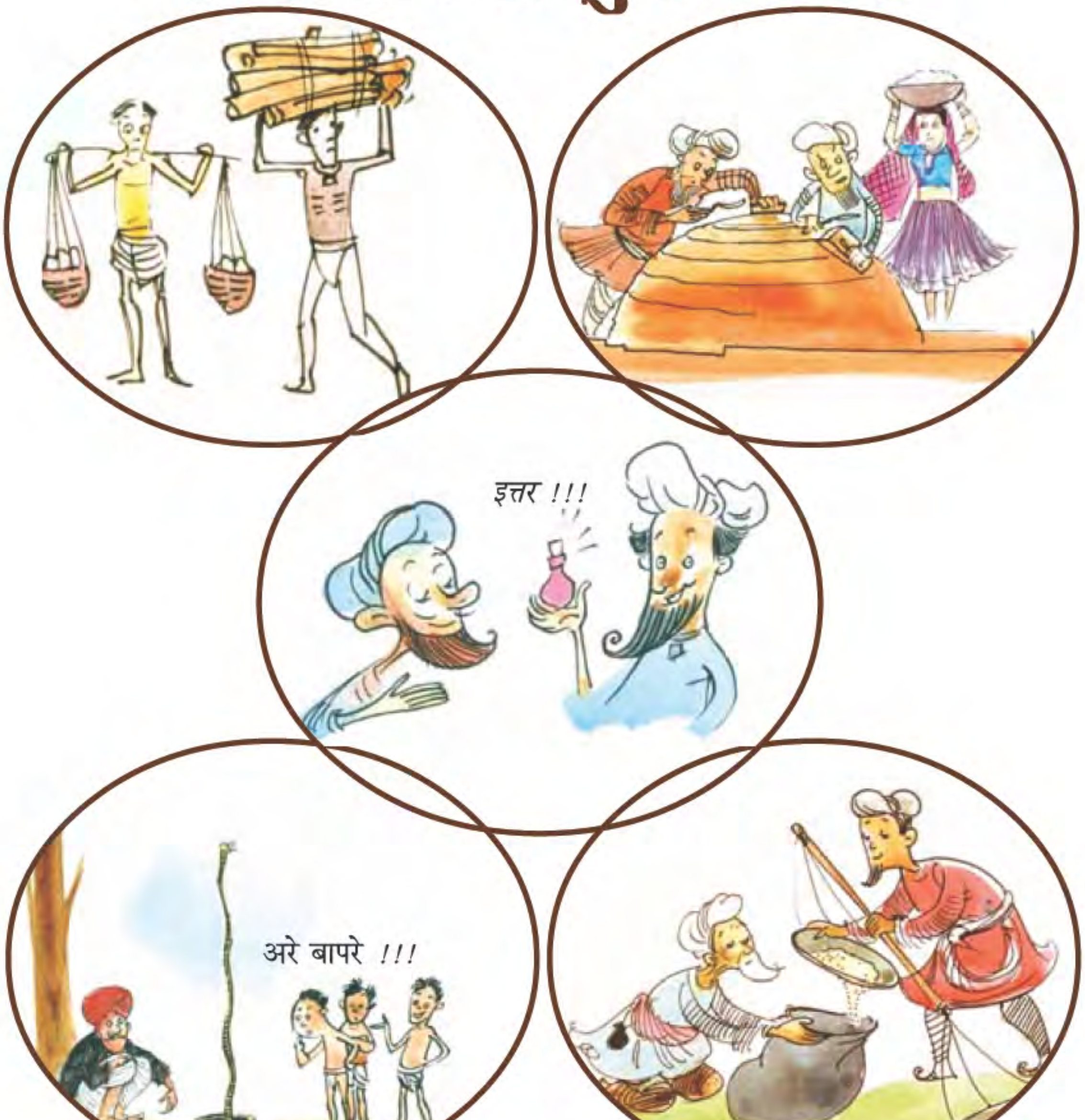

७.२ नई लोकायत धर्मीय भावना भक्ति और सूफीवाद

मध्य युगीन के भारत में जीवन निर्वाह का एक महत्वपूर्ण माध्यम भक्ति था। भारत में सल्तनत शासन काल में धर्म को लेकर कुछ सोच विचार भी हुआ था। प्राचीन काल की ब्राह्मणवाद, बौद्ध और जैन धर्म उस समय भी कायम था। लेकिन लोगों पर इन सभी का प्रभाव धीरे धीरे कम होता जा रहा था। ऐसी परिस्थिति में ही भक्तिवाद और सूफीवाद की बातें आरम्भ हुई। भगवान के साथ भक्तों के सम्बंध को आधार बनाकर ही इन धर्म प्रचारकों ने जोर दिया। इस प्रकार की सोच-विचार प्रथागत धार्मिक मतों से एकदम अलग थी।

भक्तिवाद

भक्तिवाद के मूल में भगवान के प्रति भक्त का स्नेह या भक्ति ही था। इस प्रकार की भक्ति की दो विशेषताएं थी। पहली विशेषता यह थी कि भक्त को अपने भगवान के प्रति पूरी तरह से समर्पित होना और दूसरी यह कि ईश्वर की प्राप्ति हेतु ज्ञान और योग परित्याग करके भक्त की भक्ति को महत्त्व देना। यह दूसरी विशेषता ही सर्वप्रथम दक्षिण भारत एवं उसके पश्चात् उत्तर भारत में भक्तिवाद की मूल बातों के रूप में परिणत हुआ।

भक्तिवाद की उत्पत्ति (उत्थान) का कारण क्या था? ईसा के आंठवी शताब्दी में लगभग उत्तर भारत में हर्षवर्धन के पतन के पश्चात् कुछ राजपूत राजा शक्तिशाली हो गए। क्योंकि उनको ब्राह्मण पुरोहितों ने पुरजोर समर्थन किया था। उस समय राजपूतों और ब्राह्मणों में समझौता हुआ था, जिसके परिणाम स्वरूप ही उत्तर भारत में ब्राह्मण धर्म के अलावा किसी और धर्म की स्थापना नहीं हो पाई। लेकिन उस समय देश के विभिन्न प्रांतों में कुछ-कुछ लोग भक्ति को लेकर परीक्षण निरीक्षण के कार्य में लगे हुए थे नाथपंथी, योगी इत्यादि धार्मिक समूह इसके प्रमाण है। उनमें से सबसे अधिक ख्याति लाभ किये थे दक्षिण भारत के अलवार और नयनमार साधन। उत्तर भारत में प्रचार-प्रसार होने के पहले ही ईसा की सॉतवीं शताब्दी में पूरे दक्षिण भारत में इन्हीं साधकों के जरिए भक्तिवाद लोकप्रिय हुआ था।

उस समय ब्राह्मण धर्म, बौद्ध एवं जैन धर्म के लोगों का जीवन अस्वाभाविक हो गया था। क्योंकि इस धर्म के अनुयायी अत्याधिक राजनीति पर बल देते और पूरी तरह से लोगों को यह हिदायत देते थे अवैवाहिक जीवन यापन करने के लिए। क्योंकि इनमें न तो लोगों के आदेश का महत्त्व था और न ही अच्छी तरह से रहने का मापदण्ड ही।

ऐसी परिस्थिति में सहज एवं साल भाषा में अपने ईश्वर के प्रति स्नेह भाव को अलवार एवं नयनार साधकों ने ज्ञापित किया। इससे साधारण लोग

याद रखो

मध्ययुगीन भारत में उच्च वर्ण के ब्राह्मण विभिन्न तरीके से समाज के विभिन्न श्रेणियों के सामाजिक और धार्मिक अधिकार के ऊपर निषेध लगाया था। गैर ब्राह्मणों के पास न तो कोई पवित्र धर्मग्रंथ पढ़ने की स्वाधीनता थी न ही मंदिर में जाने का अधिकार था। दूसरे वर्ण के लोगों के साथ भोजन करना एवं विवाह निषिद्ध था।

बहुत ही आकर्षित हुए। फलस्वरुप दक्षिण भारत में इस भक्तिवाद भी बाहर की राजनीति और देवता पूजन को अत्याधिक महत्त्व देते थे जिसके परिणाम स्वरूप वे भी साधारण लोग से दूर होते चले गए। दक्षिण में भक्तिवाद कभी भी समाज में बाह्मणों के महत्त्व को कम करके आंकलन करने का प्रयास नहीं करते।

ईसा के तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी में दक्षिण से भक्ति की धारा पश्चिम भारत से होते हुए क्रमश: उत्तर एवं पूर्व भारत में प्रसारित हुआ। इस समय तुर्की भारत पर आक्रमण किए। तुर्को के हाथों हारने के कारण ही राजपूत राजाओं की क्षमता क्रमश: कम हो गयी। इतना ही नहीं उसके साथ-साथ उस समय के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन से ब्राह्मणों का महत्त्व भी घटा। ईसा के तेरहवीं से लेकर पन्द्रहवीं शताब्दी तक नामदेव, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामानन्द, कबीर, नानक, चैतन्यदेव, मीराबाई आदि प्रमुख ने भक्तिकाल का प्रचार-प्रसार शुरू किये भारत के विभिन्न भागों में। इनके द्वारा गाये जाने वाले गीत, कहानी, लेख एवं कविताओं का भारतवर्ष के विभिन्न भागों में गुणगान होने लगा।

चित्र ७.१. गुरुनानक

संक्षिप्त बातें

गुरूनानक (१४६९-१५३८ ईसवी)

गुरुनानक मध्ययुग के भक्ति काल साधको में महत्त्वपूर्ण थे। किसी भी तरह का भेद-भाव किए बिना वे सभी लोगों को अपना बना लिये थे। उनके समय में ही लंगर खाना आरम्भ हुआ था। वहां पर विभिन्न धर्म और सम्प्रदाय के लोग एक साथ ही बैठकर भोजन करते थे। इस प्रकार का दृश्य सिख गुरूद्वारा और धर्मीय स्थानों पर देखने को कहीं मिलता।गुरुनानक स्वयं किसी धर्म की प्रतिष्ठा नहीं किए। लेकिन उनके दर्शन और वाणी के ऊपर विश्वास करके ही परवर्ती काल में सिख धर्म का उदय हुआ। इस धर्म में दस गुरुओं के बारें में कहा गया है, जिनमें प्रथम गुरु गुरुनानक ही थे। इनकी वाणी सिक्ख धर्मग्रंथ में लिपिबद्ध की हुई है। उनके धर्म ग्रंथ का नाम गुरुग्रंथ साहिब है। यह ग्रंथ गुरुमुखी लिपि में लिखी गई है।

लेकिन इस साधक की भक्ति की सोच-विचार में काफी अंतर था। लेकिन इनकी भक्ति दर्शन की मूल दो ही बातें थी। पहली बात यह कि बिना भेदभाव किए हुए सभी लोगों के पास संवाद वाणी को पहुँचाना। दूसरी यह कि सभी प्रकार के प्रचलित आचरण को त्यागकर अपने अनुसार ईश्वर की प्राप्ति करना। इसके (उपासक) मीराबाँई (१४९८-१५४४ ईस्वीं)। ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी के अंत में राजस्थान के एक क्षत्रीय वंश में जन्म और मेवाड़ के शासक के साथ उनका विवाह हुआ। उन्होंने अपने उपासना जीवन का महत्त्वपूर्ण समय गुजरात के द्वारका में बिताया। मीराबाई कभी भी सामाजिक बंधनों में जकड़ी नहीं रही, क्योंकि उन्होंने अपना समस्त जीवन श्रीकृष्ण अर्थात् गिरधारी के प्रति एकनिष्ठ भक्ति -भावना में समर्पित की।

मीराबाई द्वारा रचित पाँच सौ से भी ज्यादा भक्ति गीत भारतीय संगीत एवं साहित्य की अमूल्य निधि है उदाहरण के लिए उनका एक भक्ति गीत —

'मेरे तो गिरधर गोपाल
दूसरा न कोई
जाके सिर मोर मुकुट
मेरे पति सोई।'

—मेरे प्रभु गिरिधर गोपाल के अलावा और कोई नहीं है। जिसके सीस पर (ललाट) मयूर पंख का मुकुट है, वे ही मेरे पति है।

मीराबाई के उदाहरण से आपको यह नहीं समझना चाहिए कि उस समय भक्तिवाद (भक्तिकाल) पर केवल मात्र तथाकथित आय वर्ण के लोग ही विश्वास करते थे। साधकों में से अनेक ही निम्न वर्ण के लोग भी थे। जैसे संत रविदास, नाऊ, साई अथवा कसाई, साधना।

चित्र ७.२ : मीराबाई

संक्षिप्त बातें

कबीर (१४४०-१५१८ ईसवी)

वाराणसी के मुस्लिम जुलाहा (तांती) परिवार में पला बढ़ा कबीर ईसा के पन्द्रहवीं, सोलहवीं शताब्दी के एक विख्यात भक्ति साधक थे। कुछ लोग यह मानते है कि कबीर रामानंद के एक शिष्य थे। इस्लाम के एकेश्वरवाद के साथ वैष्णव, नाथ-योगी एवं तांत्रिक विश्वास भी कबीर की भक्ति चिंता में मिला था। उनके लिए सभी धर्म एक और सभी भगवान एक ही थे। इसलिए कबीर के अनुसार राम, हरि, गोविन्द, अल्लाह, साई, साहिब इत्यादि सभी एक ही ईश्वर के विभिन्न नाम हैं। इसलिए यह दर्शन उस समय के समाज में हिन्दू-मुसलमानों के मध्य विभेद और विरोध को मिटाने में मदद की थी। कबीर का मानना था कि अपनी भक्ति द्वारा ईश्वर को ढूंढ सकते है। उसके लिए मंदिर-मस्जिद में जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मूर्ति-पूजा, गंगा स्नान और नमाज पढ़कर उनके लिए व्यर्थ की बातें थी। उस समय की सामाजिक जीवन में कबीर की सोच का महत्त्व उल्लेखनीय था। उनके पद और दोहो को सुनकर आप कैसे समझेंगे कि कबीर धर्म के दिखावटीपन के विरोधी थे।

कबीर के एक दोहे का उदाहरण देखिए जैसे —

*तिल में तेल है
जैसे चमक में आग
तेरा साई तुझ में है
तू जाग सके तो जाग।*

चित्र ७.३ : कबीर

—तिल में जैसे तेल है, चमकने वाले पत्थर में जैसे है आग, उसी प्रकार तुम्हारा भगवान (साई) तुम्हारे भीतर है। यदि शक्ति है तो जगकर उठो।

पाँच सौ से भी ज्यादा कबीर के दोहों में गुरु ग्रंथ साहिब का एक भाग है। सिख श्रद्धा रखते है, उनकी नजर में कबीर का स्थान दस गुरुओं के समान ही था। कबीर के दोहो के जरिए ईश्वर की बातों को साधारण लोग सुनते थे। कारखानों के मजदूर किसान,— सभी की भाषा दोहों की भाषा थी।

लोगों का कहना है कि कबीर की मृत्यु के पश्चात् उनके मृत शरीर को लेकर भक्तों में मतभेद उत्पन्न हुआ। हिन्दुओं का कहना था कि इस्लाम धर्म की रीति नीति के अनुसार उनकी कब्र नहीं दी जा सकती। मुसलमानों का कहना था कि कबीर का अंतिम संस्कार हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार नहीं जलाया जा सकता है। इसे लेकर दोनों सम्प्रदाय चिंतित थे। तभी उस समय कबीर का मृत शरीर अदृश्य हो गया। उस अदृश्य स्थान से सफेद कपड़े के ऊपर एक मुट्ठी लाल गुलाब फूल पाया गया। इस फूल को दोनों सम्प्रदाय के लोगों ने आपस में बंटवारा कर लिया। कहानी की सच्चाई-झूठ पर विचार न करके ही हम समझते है कि किस तरह उस समय के लोगों के मन में कबीर-शांति एवं समानता के प्रतीक बन गए थे।

चित्र ७.४

गुरुनानक एवं कबीर के बीच काल्पनिक वार्तालाप का दृश्य। इससे समझा जा सकता है कि सिख संत कबीर की श्रद्धा करते थे।

सूफीवाद

अपने मतानुसार भगवान को बुलाने की इच्छा हिन्दू धर्म के अनुयायियों और बौद्ध सहजयान के मध्य ही सीमित नहीं था। ईसा के दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से ही विभिन्न धार्मिक नियम-कानून के बाहर असंख्य मुसलमान ईश्वर को अपनी इच्छानुसार अराधना करने का रास्ता ढूढ़ रहे थे। सूफी संतों ने उन्हें यह रास्ता दिखाया। सूफियों का अभिर्भाव मध्य एशिया में हुआ।

लगभग ईसा के बारहवीं शताब्दी से वे भारत आने लगे। ईसा के तेरहवीं शताब्दी के मध्य तक इस देश में सूफीवाद पर्याप्त मात्रा में लोकप्रिय हो चुका था। कुछेक के मतानुसार सूफी शब्द 'सूफ' से आया हैं। जिसका अर्थ अरबी में पशमेर का तैयार किया हुआ एक टुकड़ा कपड़ा। कहा जाता है कि एक तरह कम्बल जैसे वस्तुओं को शरीर पर सूफी साधना संत एवं सन्यासी लेते थे।

भारतीय पटल (भूमि) पर सूफीवाद का जब प्रसार-प्रसार हो रहा था, उस समय भक्तिवाद (भक्तिकाल) के अलावा भी नाथपंथी और योगी भी अपने धर्म का प्रचार कर रहे थे। ये सभी धर्म उस समय के प्रतिष्ठित धर्मों के आचरण प्रतिष्ठा के विरुद्ध थी। इसलिए अंदाजा लगाया जा सकता है कि सूफी, भक्ति एवं नाथपंथी धर्मीय धारणा एक दूसरे को काफी हद तक प्रभावित किया था। जैसाकि कहा जाता है कि सूफी जिस हठयोग का अभ्यास करते थे, वे उसे नाथपंथियों से ही सीखे थे इस देश में मूलत: सूफियों का दो समूह प्रभावशाली था। दिल्ली और गंगा-यमुना जैसे क्षेत्रों में चिश्ती एवं सिंधु, पंजाब और मुलतान में सुहरावर्दिरा। भारत में चिश्ती सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता मयुद्दीन चिश्ती थे। शेख निजामुद्दीन औलिया और बखतियार काकी इस समूह और परम्परा के अन्यतम उपासक (साधक) थे। चिश्ती सूफियों का जीवन सरल एवं सहज था। वे धर्म, अर्थ, एवं क्षमता के आधार पर लोगों का विचार नहीं करते थे।

संक्षिप्त बातें

पीर और मुरीद

दूसरे कुछ सहज धाराओं जैसे सूफी भी गुरुवादी साधन धार थी। सूफी परम्परा के प्रधान व्यक्ति कोई महत्त्वपूर्ण साधक ही होता था। वे अपने शिष्यों के साथ 'खानका' या आश्रम में रहते थे। सूफी धारा (साधना) में पीर अथवा गुरु एवं मुरीद अर्थात् शिष्यों का सम्बंध काफी महत्त्वपूर्ण था। पीर उसके धर्म भावना और दर्शन देकर जाते, जिसे खालिफा अथवा उत्तराधिकारी चुना जाता था, क्योंकि उस समय यही नियम था।

चित्र : ७.५ सूफी साधक शेख सलीम चिश्ती का दरभंगा फतेहपुर सिकरी, उत्तरप्रदेश।

चित्र : ७.६
दरवेश साधकसाधना केलिए एकसाथ एकजुट हुए है।

संक्षिप्त बातें

कुछ बातें

सूफियों की लोकप्रियता

सूफी साधक कुतुबुद्दीन बखतियार काकी ने दिल्ली में चिश्ती मतादर्श को लोकप्रिय बनाया था। इससे पूरी तरह से उलेमाओं और सूहरावर्दी का समूह क्रोधित हुए। काकी के विरुद्ध आरोप लगाया गया कि वह गैर-इस्लामिक आचरण एवं व्यवहार कर रहे थे। जैसे वे 'समा' और सूफी कीर्तिन के गीत गाते थे। इसके प्रतिवाद में जब बखतियार काकी दिल्ली छोड़कर शहर के बाहर निकले तो उनके साथ हजारों-हजार लोग भी उनके साथ बहुत दूर तक आएं। इसे ही देखकर बखतियार काकी दिल्ली लौटने का सिद्धान्त लिए।

चिश्ती सूफी अपने आप को राजनीति और राज दरबार से अलग रखते थे, क्योंकि उनका मानना था कि राज्य संचालन के कार्य में यदि संलग्न हो जाएंगे तो ईश्वर साधना किसी भी तरह सम्भव नहीं होगा। दूसरी तरफ सूहरावर्दी सूफियों में से अनेको ने दरिद्र जीवन के बदले आराम का जीवन अपना लिया था। वे सुलतान से उपहार एवं सहायता लेने में और राज्य के धर्मीय उच्च पद को ग्रहण करने में सूहरावर्दियों को किसी भी प्रकार का संकोच नहीं होता था। सूहरावर्दी सम्प्रदाय के प्रतिष्ठाता बदरिउदरीन जाकरिया ने एक समय सुलतान इल्तुतमिश का पक्ष लिया था।

संक्षिप्त बातें

वा-शरा और वे शरा

सूफी प्रधानता दो प्रकार के थे। वा-शरा अर्थात् जो इस्लामी कानून नियम (शंरा) मानकर चलते थे एवं वे-शरा अर्थात् वह सूफी जो इस कानून (नियम) को नहीं मानते थे भारत में दोनों ही मतालम्बियों के सूफी थे यायावर सूफी सम्प्रदाय कालान्दरा वे-शरा थे वहीं चिश्ती एवं सूहराकरा वा-शरा थे।

लेकिन चिश्ती हो या सूहरावर्दी मध्ययुगीन भारतीय समाज में इन सूफी साधकों का अवदान महत्त्वपूर्ण था। अपने सहज, सरल जीवन और शांत वाणी के जरिए वे हमेशा सभी लोगों को एकसाथ रखने का प्रयास करते थे। सुलतानी शासन में निवास करने वाले गैर मुसलमानी सूफियों को इस तरह के मानवतावादी बातों से काफी हद तक निश्चित थे। सहजयान धर्म इसके सम्बंध में आपलोग पहले पढ़े है। भक्ति सूफी एवं और कुछेक धर्ममत उस समय के लोगों के सम्मुख एक सरल वार्ता को पहुँचाया था। वे समझने में सफल हुए थे कि ईश्वर प्राप्ति का एक मात्र मार्ग है सच्चे मन से भक्ति की अराधना करना। संस्कृति पर भी इन भक्ति साधक और सूफी संतों का अपना प्रभाव था और इसका प्रमाण भारत के विभिन्न क्षेत्रों में देखने को मिल सकता है। दोहा, कविता, कीर्तन और विभिन्न नृत्य शैली जैसी मणिपुरी नृत्य की छाप आज भी देखने को मिल जाती है।

७.३ श्री चैतन्य और बंगाल में भक्ति काल : समाज, संस्कृति और धर्म प्रभाव

सन् सोलहवीं शताब्दी में बंगाल में भक्ति आन्दोलन का प्रचार-प्रसार श्रीचैन्तय एवं उसने सहयोगियों की योगदान से जोरदार हुआ। बंगाल विशेषकर बंगाल में वैष्णव धर्म पहले से ही था। श्रीचैतन्य उस वैष्णव परम्परा और भक्ति की भावना को एकाकार किए। जाति, धर्म, वर्ण के भेद-भाव के विरुद्ध वैष्णव भक्ति का प्रचार एक आन्दोलन के रूप में परिणत हुआ था।

नवद्वीप इस धर्म आन्दोलन का प्राण केन्द्र था। उस समय का नवद्वीप कैसा था? वहाँ के नागरिकों में अब्रह्माण की संख्या ही अधिक थी। पूरे गांव की दृश्य ही इस प्रकार का था।

सोचकर बताओ

वृन्दावन दास ने लिखा है कि चैतन्य के समय नवद्वीप में विभिन्न जातियों का समूह विभिन्न इलाकों में निवास करते थे। उनकी जीविका भी विभिन्न प्रकार की थी। शाँखरी, मालाकार, ताँती, ग्वाला, गंधवनिक, ताम्बूली बाधंकर सांप काटने चिकित्सक, और वाणिज्य इत्यादि। उस समय के नवद्वीप की सामाजिक अवस्था और श्रीचैतन्य की विना भेद-भाव किए भक्ति का प्रचार इन दोनों में क्या कोई योग सूत्र खोजा जा सकता है?

चैतन्य के जन्म के पहले से ही बंगाल में तूर्की आक्रमण के फलस्वरूप शासन व्यवस्था में परिवर्तन होना आंरम्भ हो चुका था। हुसैन शाही राजस्व के शासन काल में ब्राह्मणों का प्रभाव कम हुआ और कायस्थों का प्रभाव बढ़ा था। इसके साथ ही साथ शासन और अधिकारियों का अत्याचार भी था। इन सभी अत्याचारों से मुक्ति का रास्ता प्रचलित हिन्दू धर्म में साधारण लोग नहीं ढूंढ पाए। परिणाम स्वरुप असंख्य लोगों ने हिन्दू धर्म को छोड़कर उदार इस्लाम धर्म को अपनाया। इतना ही नहीं इसका पहले से ही विभिन्न धर्म और आस्था का प्रचलन समाज में था। तांत्रिक साधना के प्रति भी आकर्षण था। मंशा, चण्डी, और धर्म इन तीनों लौकिक देवी-देवताओं का पूजा का प्रचलन था।

लेकिन नवद्वीप का परिवेश भक्ति के प्रचार के लिए सहज नहीं था। ब्राह्मण भट्टाचार्य वैष्णवों का प्रबल विरोध करता। भक्तिवाद और वैष्णवों का वे काफी उपहास करते थे श्री चैतन्य और उसके अनुयायी केवल मात्र एक ही सामाजिक नीति को मानकर चलने पर जोर दिए थे। उस नीति को भक्ति कहा जाता है। भक्ति स्वत: स्फूर्त है। इसके लिए किसी भी तरह की आयोजन की जरूरत नहीं थी। साधारण जीवन यापन और सहज सरल आचरण को ही चैतन्य ने महत्त्व दिया। इसमें किसी भी तरह के आडम्बर का स्थान नहीं था। चैतन्य के उदार दृष्टिकोण के कारण ही वैष्णव भक्ति की लोकप्रियता बढ़ी थी।

सोचकर बताओ

श्रीचैतन्य का चित्र

कृष्णदास कविराज के चैतन्य चरितामृत पुस्तक के आधार पर चैतन्य का जन्म १४८५ ई० और उसकी मृत्यु १५३३ ई० में हुई है। चैतन्य की तस्वीर विभिन्न जगहों पर देखी जाती है लेकिन वास्तव में चैतन्य देखने में कैसे थे इसका केवल लिखित प्रमाण ही उपलब्ध है लेकिन वह भी बहुत बाद में। जिसके परिणाम स्वरुप चैतन्य की जो तस्वीर आज देखी जाती है, वास्तव में चैतन्य वैसे ही दिखते थे यह कह पाना मुश्किल है। गौतम बुद्ध और ईसामसीह के तस्वीर के संदर्भ में भी इसी तरह की बातें कही जा जाती है।

सोचकर बताओ

चैतन्य चरितामृत ग्रंथ में कृष्णदास कविराज ने लिखा है—

"नीची जाति के लोग भजन में नहीं है अयोग्य
जो भजै वही बड़े अभक्त हीन छोड़कर
कृष्ण भजने में नहीं है जाति कुल विचार"

इसने जात-पात के प्रति वैष्णव भक्ति आन्दोलन के सदंर्भ में किस प्रकार के दृष्टिकोण का प्रभाव देखा जाता है?

चैतन्य के वैष्णव भक्ति के प्रचार और प्रसार का एक परिकल्पित संरचना देखा जाए। जैसे—

- चैतन्य के नेतृत्व में नवद्वीप में जो वैष्णव समूह संगठित हुए थे उनमें जातिगत विचार नहीं था।
- चैतन्य घर-घर जाकर नृत्य-गीत की व्यवहार व्यवस्था करवाएं और उसके साथ ही विशाल शोभायात्रा निकालकर नगर कीर्तिन की भी व्यवस्था किए।
- चैतन्य स्वयं उच्च वर्ण के ब्राह्मण होने के बावजूद विभिन्न क्षेत्रों के लोग और तथा कथित निम्न जाति के लोगों के साथ व्यक्तिगत जन सम्पर्क तैयार किए थे।
- किसी भी प्रचलित लोक धर्म का चैतन्य ने विरोध नहीं किया। भक्ति प्रचार को ही उन्होंने एक मात्र धर्म के रूप में ग्रहण किया।
- नवद्वीप के प्रभावशाली जगाई मसाई के अत्याचार का चैतन्य और इसके अनुयायी नित्यानंद ने विरोध किया। साथ ही साथ पूरे ब्राह्मणवाद का प्रतिवाद किया। नवद्वीप के काजी जो कीर्तन विरोधी थे उन्हें भी तर्क में चैतन्य ने पराजित किया। इसी तरह से हिन्दू-मुसलमान शासकों के अत्याचार के विरूद्ध चैतन्य और उसके अनुयायी प्रतिवाद संगठित किया। चैतन्य वैष्णव नाटक में अभिनय करने का प्रयास किए और उसमें वे स्वयं अभिनय भी किए।
- भक्ति साधक सभी साधारण लोगों की भाषा अर्थात् जन भाषा में प्रचार करते थे, चैतन्य भी इनमें अलग नहीं थे। बांग्ला भाषा में ही उन्होंने भक्ति का प्रचार-प्रसार किया।

इस वैष्णव भक्ति आन्दोलन का परिणाम क्या-क्या हुआ ?

सन् सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक बंगाल में भक्ति आन्दोलन का प्रभाव क्रमशः कम होते गया। श्रीचैतन्य और उसके अनुयायी जाति-भेद नहीं मानते थे इसके बावजूद समाज में जाति भेद-भाव की भावना विद्यमान थी।

सभी प्रकार के भेद-भाव को पूरी तरह से समाप्त न कर पाने के बावजूद उसे तोड़ा जाए इस बात को चैतन्य जोर देकर ही प्रचार करते थे। उस समय की परिस्थिति के परिप्रेक्ष्य में सोचने पर यह भी एक बड़ी सफलता थी। लेकिन चैतन्य और उसके भक्ति आन्दोलन का सबसे अधिक गंभीर प्रभाव बंगाल की संस्कृति पर पड़ा था। (**७.७.२ एक -एक करके देखो**)।

कुछ बातें

श्रीचैतन्य का आहार

श्रीचैतन्य जब से सन्यास धारण किए थए वे प्रायः उपवास करके ही दिन व्यतीत करते थे। भक्तगण ही कभी-कभी विभिन्न प्रकार के व्यंजन बनाकर खिलाना चाहते थे। ऐसे ही एक खाने का विधान बहुत ही मजेदार है। साग, मूंग का दाल, घी मिलाया हुआ चावल (भात) पटल और दूसरी सब्जी की तरकारी, भजे हुए नीमपत्ते, बैगन, मोचा, नारियल, दूध, खीर, केला, दही,-दूध मिला हुआ चुड़ा और भी विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थ। मजे की बात तो यह है कि खाने में बटी का इस्तेमाल किया जाता लेकिन आलू का नहीं।

लेकिन चैतन्य इतना कुछ नहीं खाते थे, बल्कि अपने अनुयायी को खिलाते थे, जो कीर्तन बजाते थे उन्हें भी खिलाते और इतना ही नहीं जो लोग भूखे रहतें थे उन्हें भी बुलाकर खाना खिलाते थे। कभी-कभी वे अपने भक्तों के साथ वन भोजन भी करते थे, ऐसी बाते प्रायः सुनी जाती थी।

वैष्णव की रचना में प्रायः साधारण लोगों की रोजमर्रा के जीवन चित्र को ही दर्शाया गया है। असंख्य मुस्लिम कवि वैष्णव गीत और कविता लिखते थे। घाटू, घाँइ-तेलेना, पटूआ, रासलीला ऋतु परिवर्तन इत्यादि आज भी वैष्णव प्रभाव में परिलक्षित होता है।

इसी तरह से भक्ति-भावना को प्रसारित करने का प्रयास चैतन्य किए। इसके जरिए ही बंगाल में एक नए सांस्कृतिक और सामाजिक वातावरण का परिवेश तैयार हुआ। ज्ञान के बदले भक्ति के जरिए ईश्वर प्राप्ति पर जोर दिया गया।

कुछ बातें

श्रीचैतन्य की जीवनी

श्रीचैतन्य को केन्द्र करके ही बांग्ला भाषा में जीवनी साहित्य लेखन की धारा विकसित हुआ। चैतन्य की जीवनी से एक ओर समकालीन समाज एवं दूसरी तरफ व्यक्ति चैतन्य के विषय में हमलोग विभिन्न विषयों की जानकारी मिलती है।

?

सोचकर बतलाओ तो क्यों चैतन्य के जरिए ही बांग्ला भाषा में जीवनी साहित्य धारा विकसित हुई थी ?

कहा जाता था : ''ज्ञान में परिवार पांडित्य चैतन्य नहीं हो सकता। केवल भक्ति वहाँ चैतन्य गोसाई। अर्थात् ज्ञान पर चर्चा और उच्च वंश में जन्म लेने से ही कुछ नहीं होता। भक्ति के माध्यम से ही चेतना की प्राप्ति करनी होगी।''

कुछ बातें

कीर्त्तन

श्रीचैतन्य के वैष्णव भक्ति आन्दोलन के पहले भी कीर्त्तन गीत की परम्परा थी। चैतन्य उसी कीर्त्तन गायन को जन संपर्क माध्यम के रूप में व्यवहार किए। चैतन्य ने दो प्रकार के कीर्त्तन को संगठित किए थे। पहला नामकीर्त्तन और दूसरा नगरकीर्त्तन। नामकीर्त्तन घर पर बैठकर ही गाया जाता था और नगर कीर्त्तन नगर में शोभायात्रा करके एवं घूम-घूमकर गाया जाता। कीर्त्तन में जातिगत विभाग का कोई स्थान नहीं था, नाचते-नाचते दोनों हाथों को ऊपर करके गीत गाते ही चलना ही कीर्त्तन की विशेषता थी। नामकीर्त्तन गाना सभी के लिए आसान था कवि परमानंद ने लिखा है—

' नाचना नहीं जानता फिर भी, नाचता हूँ गौरांग वली

गाना नहीं जानता हूँ फिर भी गाता हूँ। ''

कीर्त्तन के अलावा कथोपकथन के माध्यम से भी भक्ति भाव का प्रचार-प्रसार किया जाता था।

चित्र ७.७ श्रीचैतन्य के नेतृत्व में वैष्णवों का नगर कीर्त्तन।

७.४ दीन - ए- इलाही

सन् १५७० के दशक में बादशाह अकबर प्राय: सभी के सामने नमाज पढ़ना और दूसरे इस्लामी आचरण का पालन बन्द करवा दिया। इसके बदले उन्होंने अपने पसन्द के अनुसार कुछ प्रथाओं को पालन करना शुरु किया। एक समय उन्होंने दिन में चार बार वे सभी के सामने पूर्व दिशा में मुँह करके सूर्य को प्रणाम करना एवं सूर्य नाम का जाप करना शुरू किया। फतेहपुर सीकरी में वे पहले इस्लाम धर्म को लेकर उलेमाओं के साथ आलोचना करते थे। परवर्ती समय में वे विभिन्न धर्मों के गुरुओं को बुलाकर धर्म के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते। अंत में इन्हीं सभी आलोचना के आधार पर उन्होंने दीन-ए-इलाही नामक एक नये मतादर्श आरम्भ किए।

एक समय यह समझा जाता था कि दीन-ए-इलाही बादशाह अकबर द्वारा चलाया गया एक नया धर्म है। लेकिन अकबर कभी भी इस्लाम धर्म को त्याग नहीं किए। इस्लाम धर्म के विभिन्न व्याख्या के जरिए ही जो सबसे तर्क संग्रह मत होते थे उन्हें ही स्वीकार करते थे। विभिन्न धर्म गुरुओं के साथ आलोचना करके वे विभिन्न धर्म से अपने पसन्द अनुसार विशेषताओं को ग्रहण करते और उसी वैशिष्ट के आधार पर अकबर ने दीन-ए-इलाही तैयार किया। उन्होंने इसका प्रचलन स्वयं अपने ही सभा सदस्यों के बीच किया। लेकिन अभी इसके सम्बंध में धारणा बिल्कुल बदल गयी है। अभी कहा जाता है कि दीन-इ-एलाही वास्तव में अकबर के प्रति समर्पित अनुगतों के कुछ अभिजात्यों के बीच प्रचारित एक आदर्श था।

अकबर स्वयं उनका चुनाव करते थे। कुछ कार्यक्रम और रीति नीति के जरिए ही वे बादशाह के प्रति सम्पूर्ण रूप से अनुचर (अनुगत) रहने की शपथ लेते थे, यही दीन-ए-इलाही है।

अकबर के पुत्र जहाँगीर ने दीन-ए-इलाही को चालू रखा। उनके एक सेनापति मिर्जा नाथान, जिन्होंने बंगाल और आसाम में अपने दीक्षित होने की घटना का उल्लेख अपनी अपनी स्वयं की आत्मजीवनी में लिखा है।

कुछ बातें

टॉमस रो के विवरण में दीन-ए-इलाही

मुगल राजसभा में आने वाले प्रथम अंग्रेज दूत टॉमस रो को भी सम्भवत: जहाँगीर ने दीन-ए-इलाही में शामिल किया था। दूसरे देश से आए दूत बिना कुछ जाने ही दीन-ए-इलाही के प्रवेश करने के कार्यक्रम में भागीदारी ले लिए। टॉमस रो द्वारा लिखे गये लेख में उसके साथ बादशाह के उस क्षण के एक मजेदार बात का विवरण मिलता है :

कुछ बातें

दीन-ए-इलाही का शपथ ग्रहण कार्यक्रम

जो दीन-ए-इलाही को ग्रहण करते, वे शपथ ग्रहण कार्यक्रम के पहले तो अपने जीवन (जान), सम्पत्ति (माल), धर्म(दीन) और सम्मान (नामूस) विसर्जन (कुर्बान) देने की शपथ लेते थे। शिष्य (मुरीद) जैसे उसका सूची गुरु (पीर) पैर पर सिर झुकाकर प्रणाम करते थे उसे भी ठीक उसी तरह बादशाह के पैरो में सिर झुकाकर प्रणाम करना पड़ता था। इसके पश्चात् बादशाह उन्हें एक नयी पगड़ी, सूर्य का एक पदक और एक पगड़ी के सामने लगाने के लिए उसका (बादशाह) स्वयं की एक छोटी सी फोटो होती थी।

टॉमस रो का विवरण पढ़कर बादशाह जहाँगीर के सम्बंध में तुम्हारी क्या धारणा हुई ?

मैं बादशाह से मुलाकात करने के लिए गया। जैसे ही मैंने प्रवेश किया उन्होंने आसफ खान को एक सोने का हार दिए। हार पर सोने के जल से चित्रकारी किया हुआ बादशाह के स्वयं का एक चित्र और मुक्ता लगा हुआ था। उन्होंने आसफ खान को निर्देश दिए कि (वे यदि हमें हार देते हैं) लेकिन हमने जितना सम्मान उन्हें देना चाहते हैं, उनसे ज्यादा वे सम्मान पाने की मांग न करें। इस देश की प्रथा के अनुसार बादशाह यदि किसी को कुछ देते हैं तो उसे व्यक्ति को टेहुने के बल पर बैठकर सिर को मिट्टी पर झुका कर उसे सम्मान दिया जाता है। इसके बाद आसफ खान हार को लेकर मेरी ओर बढ़े तो मैंने हाथ बढ़ाकर उसे लेना चाहे, लेकिन उन्होंने संकेत के जरिए मेरी टोपी उतारने को कहा। (होजी उतारने के बाद मेरे गले में हार पहनाकर वे मुझे बादशाह के सामने ले गए। मुझे क्या कहना होगा यह मैं नहीं जानता था लेकिन संदेह था कि वे चाहते है कि मैं भी इस देश की प्रथा अनुसार सजदा करु (अर्थात् उसी तरह मिट्टी पर सिर झुकाकर बादशाह का सम्मान करु) लेकिन मैंने वह न करके अपने साथ लाए हुए उपटोकन को बादशाह की ओर बढ़ा दिया। आसफ खान ने मुझे बादशाह को धन्यवाद ज्ञापित करने का निर्देश दिया। लेकिन मैंने अपनी देश की प्रथा को मानकर ही धन्यवाद ज्ञापित किया। इसे देखकर सभा में उपस्थित कुछ सदस्यों ने मुझे सजदा करने को कहा, लेकिन बादशाह ने फारसी भाषा में उन्हें बाध्य करने से निषेध किए। मुझसे उन्होंने विभिन्न प्रकार की बात की और वापस भेज दिए इसके पश्चात् मैं अपने घर लौट आया।

यहाँ यह स्मरण रखना होगा कि उसने पहले वे अधिकांश सुलतान अथवा बादशाह से अकबर के शासन काल में धर्मीय चरित्र अलग था। पूरी तरह से वे इस्लामी छाया से बाहर निकल आए वे अपने शासनकाल के प्रथम से ही। मौलवी और उलेमाओं के कथानुसार वे राज्य नहीं चलाना चाहते थे। क्योंकि वे समझ गये थे कि भारतवर्ष में विभिन्न धर्म और जातियों के लोगों का निवास स्थल है। वहाँ पर अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए किसी भी धर्म को नजर अंदाज नहीं किया जा सकता है। स्वयं को एवं अपनी शासन व्यवस्था को सुचारु रुप से चलाने के लिए विभिन्न धर्मों के विभिन्न प्रकार के आचार प्रथा को ग्रहण करना होगा। इसी बोध के कारण ही अकबर सूर्य प्रणाम, सूर्य का नाम जाप, प्रासाद का (झरोखा) से सभा सदस्य और प्रजाओं को दर्शन देना इत्यादि प्रथा को उन्होंने आरम्भ किया। दीन-ए-इलाही प्रथा इस्लाम के रक्षकशील व्याख्याकारों की दृष्टि में इस्लाम विरोधी था। लेकिन इन प्रथाओं के जरिए अकबर इस्लाम की सीमा रेखा से बाहर निकलकर राजपूत और विभिन्न समूहों के सामने भी अपने उपयोगिता को स्वीकार करवाया।

७.५ सुलतान और मुगल स्थापत्य

सन् तेरहवीं शताब्दी में उत्तर भारत के दिल्ली में सुलतान शासन का आरम्भ हुआ। सुलतान दिल्ली और दूसरे विभिन्न जगह पर अनेक स्थापत्य तैयार करवाएं। घर-मकान, प्रासाद, मिनार, मन्दिर-मस्जिद इन्ही को स्थापत्य कहा जाता है। इन सभी को बनाने वाले कारीगरी को ही स्थापत्य कला कहा जाता है।

सन् तेरहवीं शताब्दी के बहुत पहले ही भारत में अरबी स्थापत्य के चिन्ह मिलते है। दिल्ली सल्तनत के पहले तैयार किए गए मस्जिदों के टूटे हुए अवशेष से गुजरात में यह पाया गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस्लामी स्थापत्य कला भारत में सुलतान के पहले ही आया था। इस स्थापत्य कला का वैशिष्ट्य पिलर और गूम्बज था।

लेकिन सल्तनत शासन शुरू होने के बाद ही भारतीय और इस्लामिक कला घुल-मिल गया था। सुलतान जिस देश के शासक है,वे शक्तिशाली है, उसे समझाने की जरूरत थी। इसलिए वे बड़े-बड़े स्थापत्य को बनवाएं। सुलतान भी इस दिशा में पहल किये थे। धर्म सम्बंधी विषयों पर आलोचना के लिए मस्जिद और मिनार, पढ़ने-लिखने के लिए मदरसा, रहने के लिए प्रासाद एवं दुर्ग यह सब बनाने का कार्य शुरू हुआ। सुलतान यह उनके कोई आत्मीय अथवा अभिजात वर्ग में जब किसी की मृत्यु हो जाती थी तो उसकी स्मृति में सौध, एवं मिनार बनवाएं जाते थे। कभी-कभी तो सुलतान अपने जीवनकाल में ही अपनी समाधि सौध की मूल बुनियादी जरूरतों की तैयारी करके रखते थे। सभी प्रकार के स्थापत्य पर कला की छाया लगी हुई थी। सुन्दर कार्यो द्वारा स्थापत्य कला को सवारा गया था।

तराई के द्वितीय युद्ध में विजय के पश्चात कुतुबुद्दीन आइबक कुआत-उल-इस्लाम मस्जिद बनाने का काम शुरू करवाया। जिससे इसके द्वारा लोग उसे देश का शासक मान ले इसलिए यह बनवाया जा रहा था। इसके लिए आस-पास के सत्ताईस हिन्दू और जैन मंदिरों के टूटे हुए भाग को इस मस्जिद बनाने के काम में व्यवहार किया गया। इसलिए यह मस्जिद हिन्दू, जैन और इस्लामी स्थापत्य कला का मिला-जुला रूप है। जो सबको अपनी ओर आकर्षित करता था, उस मस्जिद के मिनार को कुतुब मिनार कहते है। यह मिनार सुलतानी शासक का प्रतीक बन गया था। कुतुबुद्दीन के मृत्यु के पश्चात् मिनार को बनाने का पूरा काम सुलतान इलतूतमिश ने पूरा करवाया। इलतुतमिश ने अपने लिए जो समाधि सौध बनवाया था वह भी इस युग की एक चमत्कारपूर्ण स्थापत्य था।

सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के शासन काल में आलाई दरवाजा बनवाया गया। यह इन्दों-इस्लामिक स्थापत्य कला का असाधारण उदाहरण

याद रखों

कुतुबुद्दीन आइबक के समय इतिहासकार हसन निज़ामी थे। उनके द्वारा लिखे गये इतिहास का नाम ताज-उल-मसीर है। उस पुस्तक में निजाम ने लिखा है- ''सभी युद्धों में जीत के बाद यह प्रचलन था कि विरोधियों के दुर्ग और दूसरे घाटियों को हाथियों के पैर से कुचल दिया करते थे।''

केवल भारतवर्ष ही नहीं बल्कि दुनिया के सभी देशों में विजयी दल पराजितों के सभी शक्ति को पूरी तरह से नष्ट करने के लिए यह सब करते थे। हिन्दू, बौद्ध, जैन, मुसलमान इत्यादि सभी धर्मों के लोग यह करते थे। वास्तव में यह राजनीतिक शक्ति दिखाने का कौशल था।

है। लाल पत्थर से निर्मित यह दरवाजा जैसे सुलतान के रूप में अलाउद्दिन की क्षमता का प्रतिफलन था। दरवाजे के ऊपर अल्लाह की बातें लिखी हुई नहीं थी, बल्कि सुलतान की प्रशंसा की बातों की खुदाई की गयी थी। इस प्रकार के कार्य का उदाहरण विरल है। यह सब कुछ कुतुबुद्दीन के शासन काल में शासन काल में ही हुआ था। कुतुबमिनार, इलतुतमिश के समाधि, अलाई दरवाजा- सब मिलाकर कुतुब का साम्राज्य सुलतान का स्थापत्य था।

तुगलक सुलतान नगर और शहरीकरण की परिकल्पना में अपनी दक्षता का परिचय दिया। मुहम्मद बिन तुगलक के दौलतावाद के दुर्ग शहर में इस परिकल्पना का प्रभाव देखा जाता है। फिरोजशाह तुगलक के फिरोजावाद भी इससे अछूता नहीं रहा। सौध-समाधि बनाने के प्रति तुगलक सुलतान का मनोयोगी विचार था। जैसे दिल्ली तुगलकाबाद गियासुद्दिन तुगलक की समाधि है। लम्बी दिवारों के बदले खड़े गूंबज लगाने की परम्परा उस युग का वैशिष्ट्य था।

'इन्दों-इस्लामी' स्थापत्य परम्परा में लोदी सुलतान की महत्वपूर्ण भूमिका सौध समाधि को रोकने में थी। और यह भी उस युग का वैशिष्ट्य था। विशाल बगीचे का क्षेत्र इस समाधि के सौध के लिए तैयार किया गया था। बड़े दरवाजा द्वारा ही बगीचे में प्रवेश करने का रास्ता बनाया गया था।

फलस्वरूप मुगल जब भारत में साम्राज्य की प्रतिष्ठा कर रहे थे तो उसके पहले ही दिल्ली समेत भारत के विभिन्न प्रदेशो में 'इन्दों-इस्लामी' धारा का स्थापत्य तैयार किया गया था।

चित्र : ७.८ :
कुतुब मिनार एवं आलाई दरवाजा, दिल्ली।
आलाई दरवाजा का पिलर एवं गूंबज की ओर देखो।

चित्र : ७.९ :
सुलतान इलतुतमिश की समाधि, कुतुब चबूतरा, दिल्ली

मुगल शासन में स्थापत्य कला में विशाल परिवर्तन हुआ। मुगल सम्राटों में प्राय: स्थापत्य कला को समझने वाले थे। विभिन्न प्रकार के स्थापत्य परम्परा में सहज तरीके से मिलने की छाप मुगल स्थापत्य में देखा जाता था।

सम्राट बाबर बगीचे के शौकीन थे। चार भागों में बने हुए बगीचे मुगल साम्राज्य में देखा जाता था। उसे 'चहार बगीचा' कहते है। हुमायू के शासन काल में दीन पनाह शहर बनाने का काम शुरू हुआ। अफगानी शासक शेरशाह ने सासाराम और दिल्ली में कई समाधि (सौध) बनाएं थे। सासाराम में स्वयं अपने लिए बनाई गई समाधि सौध लगभग ताजमहल के पूर्व परम्परा की है।

चित्र : ७.१० :
शेरशाह की समाधि सौध, सासाराम, बिहार

मुगल स्थापत्य कला का प्रसार सम्राट अकबर के शासन काल से ही शुरू हुआ था। भारत में मुगल शासन का प्रसार एवं स्थापत्य बनाने का कार्य अकबर ने एकसाथ किया। दुर्ग-शहर, प्रासाद बनाने में अकबर विशेष ध्यान देते थे। इससे एक तरफ तो साम्राज्य सुरक्षित हो रहा था वही दूसरी ओर स्थापत्य कला का विकास भी हो रहा था। आगरा-दुर्ग इसका एक उदाहरण है। अजमेर, लाहौर, काश्मीर, इलाहाबाद जैसे स्थानों पर दुर्ग (किला) भी अकबर के समय ही तैयार किया गया था। गुजरात जीतने की स्मृति में अकबर ने बुलंद दरवाजा बनवाया था।

फतेहपुर सीकरी एवं उसका प्रासाद, मस्जिद, महल और दरबार अकबर के श्रेष्ठ स्थापत्य कला का उदाहरण है। 'फतेह' का अर्थ है- विजय। विजयी सम्राट के रूप में अकबर ने इसे ध्वंस नहीं किया। बल्कि उदार मन और सौन्दर्यबोध को लेकर ही उन्होंने फतेहपुर सीकरी का निर्माण करवाया। भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापत्य परम्परा सीकरी में घुल-मिल गया। अकबर जो पूरे देश के सम्राट थे, किसी विशेष धर्म, जाति प्रदेश के शासक नहीं- इसका उदाहरण फतेहपुर सीकरी है।

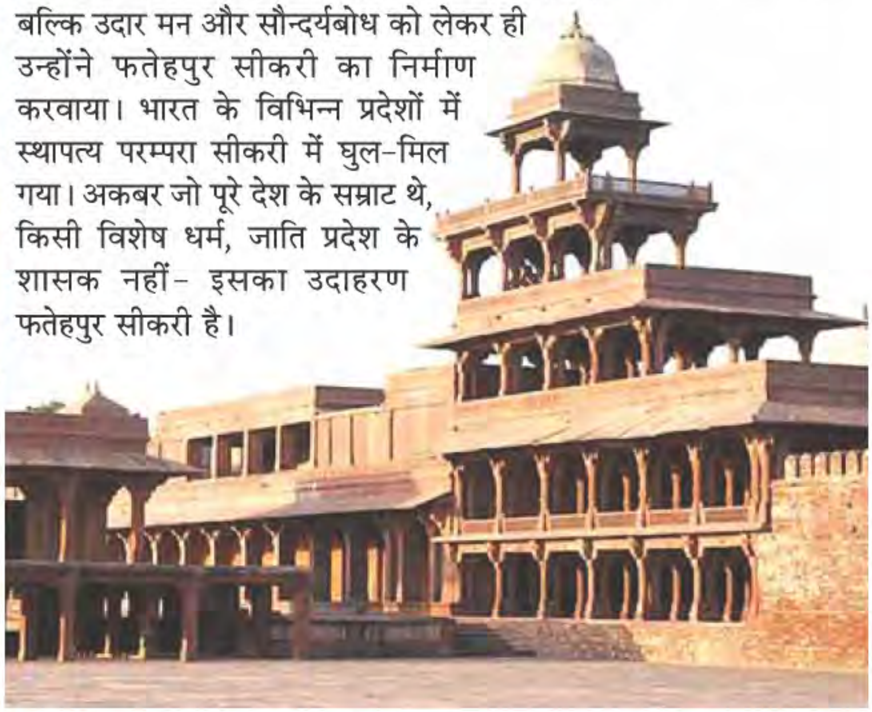

चित्र : ७.११ :

फतेहपुर सीकरी पंचमहल अथवा बादगीर

जहाँगीर के समय पुन: बगीचे लगाने का काम शुरू हुआ। आगरा और काश्मीर में लगाए बगीचे की बात सम्राट जहाँगीर ने अपनी आत्म जीवनी जहाँगीर के समय पुन: बगीचे का कार्य शुरू हुआ। आगरा और काश्मीर में लगाए गए बगीचे की बात सम्राट जहाँगीर ने अपनी आत्म जीवनी 'तुजुक-ई-जहाँगीर' पुस्तक में लिखी है। उस समय संगमरमर के पत्थर पर रत्न बैठाकर कार्य करने का प्रचलन देखा जाता था। जिसे 'पियेत्रा दूरा' कहा जाता था। जहाँगीर के समय में बनाया गया 'इतिमाद-उद-दौलाद' की समाधि सौध में पियेत्रा दूरा हस्तकला का प्रयोग देखा जाता था।

चित्र : ७.१२ :

एक मुगल परम्परा का चतुर्मुखी बगीचा

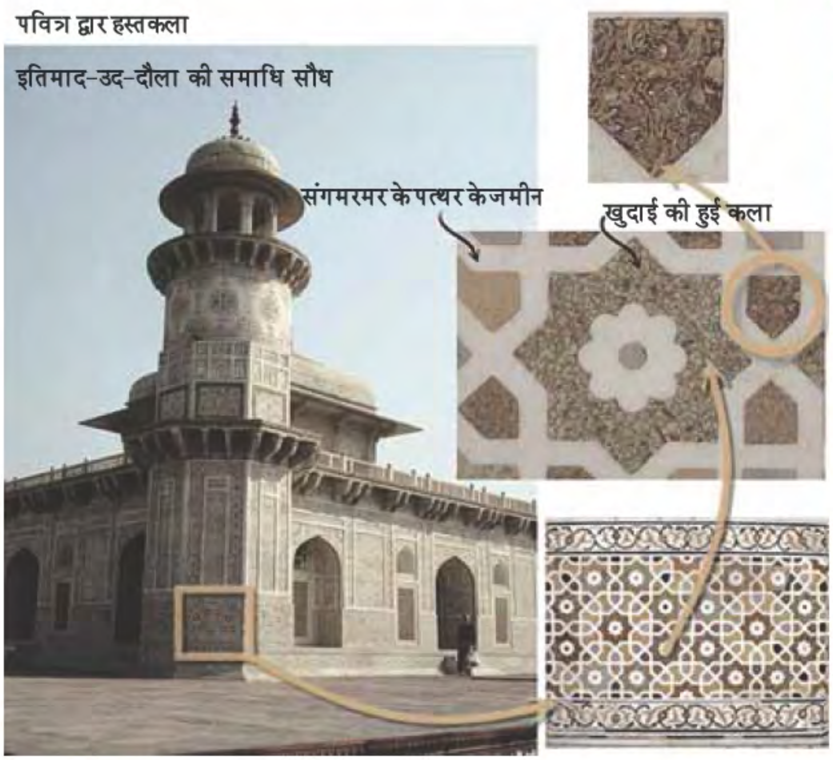

चित्र : ७.१३ :

इतिमाद-उद-दौला की समाधि सौध, आगरा।

मुगल स्थापत्य कला का श्रेष्ठ उदाहरण ताजमहल है। सम्राट शाहजहाँ के शासनकाल में बनाए गए स्मृति सौध एक अद्‌भुत स्थापत्य है। पत्थर का व्यवहार, हस्तकला और शिल्प परम्परा की दृष्टि से ताजमहल की तुलना नहीं की जा सकती है। इसके साथ-साथ लालकिला, जामा मस्जिद और आगरा दुर्ग के भीतर मोती मस्जिद इत्यादि शाहजहाँ के समय में स्थापत्य कला के उन्नयन का प्रमाण है।

चित्र : ७.१४ : ताजमहल, आगरा

औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य के मध्य विभिन्न प्रकार के विद्रोह देखने को मिलता है। उस विद्रोह को सम्भालने के कारण ही सम्राट स्थापत्य बनाने की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाए। इसके अलावा युद्ध के लिए खर्च अधिक बढ़ गया था। इसलिए स्थापत्य कला के लिए अधिक अर्थ खर्च करना सम्भव नहीं था। लेकिन औरंगजेब के समय लालकिला के भीतर एक मस्जिद बनाया गया। दक्षिण प्रांत में औरंगाबाद में अपनी बेगम की स्मृति में निर्मित 'बीबी का मकबरा' उस समय की विख्यात स्थापत्य कला थी।

मुगल स्थापत्य परम्परा का प्रभाव पूरे देश में देखा जाता है। सन् अठारहवीं शताब्दी के अनेक प्रदेशो पर स्थापत्य कला का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है।

प्रादेशिक स्थापत्य

सुलतान और मुगल काल में भारत के विभिन्न प्रदेशों में स्थापत्य कला का विकास हुआ था। प्रादेशिक कलाओं के मध्य गुजरात, बंगाल और दक्षिण भारत का स्थापत्य कला प्रसिद्ध है।

गुजरात के स्थापत्य कलाओं में सांस्कृतिक मिश्रण का दर्शन मिलता है। इसमें इस्लामी हिन्दू एवं जैन निर्माण शैली की स्पष्ट झलक देखा जाती है। इनमें सबसे अधिक उल्लेखनीय अहमदाबाद का जामा मस्जिद है।

दक्षिण भारत में स्थापत्य का प्रधान लक्ष्य था अधिकाधिक दुर्ग और दुर्ग-शहर का निर्माण करना। गुलबर्ग दुर्ग (सन् १३१८) इसका एक उदाहरण है। विदर का दुर्ग और प्रासादों में ईरानी ढ़ाँचे के अनुसार दिवारों पर चित्र देखा जाता था। लेकिन इसमें से आप अधिकांश टूट गए है। लेकिन पालिश किया हुआ चूने की दीवार पर सोनाली, लाल और नीले रंग की सुंदरता की खुदाई का कार्य आज भी देखने को मिलता है। अहमदाबाद में चाँद बीबी का प्रासाद एक टीला के ऊपर टीके हुए आधार के ऊपर यह निर्मित है। बीजापुर में मुहम्मद आदिल शाह (१६२७-५६ ई०) द्वारा निर्मित गोल गूम्बज एक सुन्दर स्थापत्य कार्य का उदाहरण है। यह गूम्बज भारतवर्ष का सबसे बड़ा गूम्बज है। कुतुबशाही शासन काल में हैदराबाद का चारमिनार (१५९१ ई०) प्रादेशिक स्थापत्य के चमत्कार का निदर्शन है।

चित्र : ७.१५ :
मोती मस्जिद, लालकिला, दिल्ली। सम्राट औरंगजेब व्यक्तिगत प्रार्थना केलिए इस मस्जिद को बनाया था।

चित्र : ७.१६ :
चार मिनार, हैदराबाद

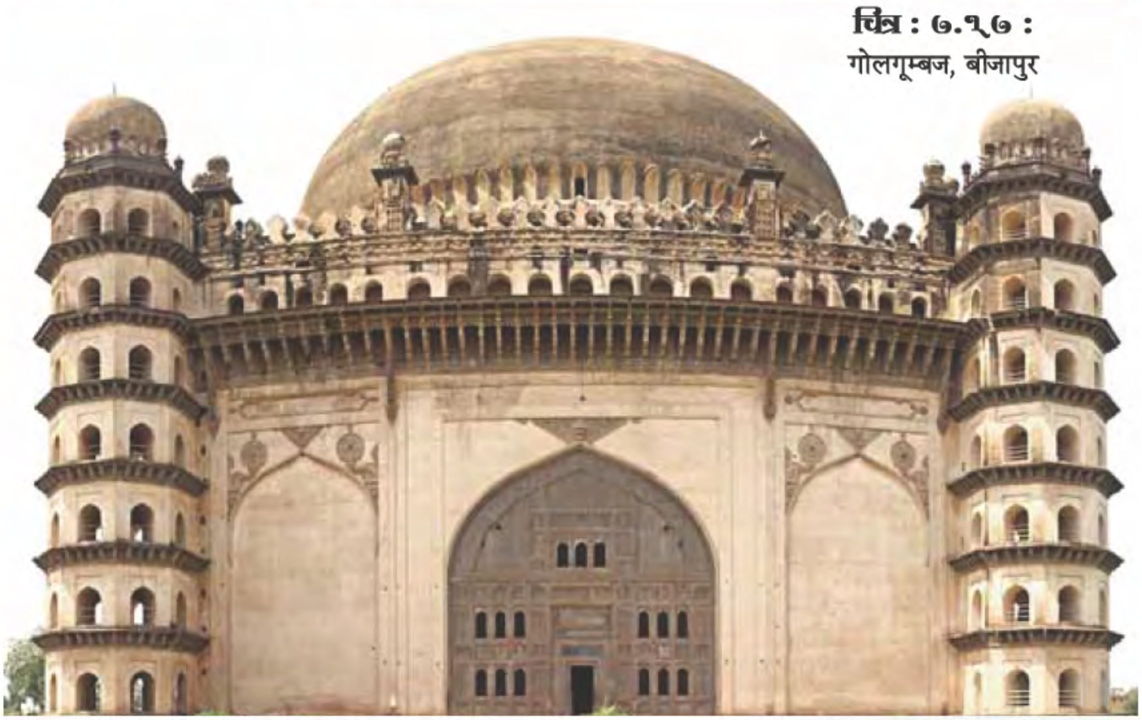

चित्र : ७.१७ :
गोलगूम्बज, बीजापुर

चित्र : ७.१८ :
विट्ठल मंदिर के पत्थर का रथ, हाम्पि, विजयनगर

विजयनगर की राजधानी हाम्पि समेत विभिन्न जगहों पर मंदिर एवं इमारतों पर हिन्दू और मुस्लिम स्थापत्य परम्परा का मिश्रण देखने को मिलता है। कल्पना शक्ति हस्तकला और शैली की दृष्टि से यह सभी अतुलनीय है।

बंगाल की स्थापत्य परम्परा

मुसलमान शासन सन् तेरहवीं शताब्दी में बांग्लादेश के विभिन्न इलाको में फैल गए। उस समय बंगाल के बुनियादी निर्माण का मूल गठन इस्लामी रीति के अनुसार करना। बाहर के हस्तकला और कच्चे माल के व्यवहार के क्षेत्र में बंगाल की लोक परम्परा की झलक देखी जाती है।

इमारतों में ईटों का व्यवहार बंगाल की स्थापत्य परम्परा का एक वैशिष्ट्य है। घर और अधिकांश मंदिरों कार ढालू ढ़ांचे के आधार पर निर्मित किया गया। इसके पीछे यह कारण बताया गया कि यदि वर्षा होगी तो जल वहाँ रूक नहीं पाएगा। इस विशेष निर्माण पद्धति का नाम 'बंगाल' है। प्रदेश के नाम पर स्थापत्य परम्परा का नाम होना अपने आप में एक उदाहरण है। पुराने मंदिरों की बुनियाद इन्ही आधारों पर तैयार किया जाता। ऐसे ही दो बुनियाद को साथ-साथ जोड़ देने से उन्हे जोड़ बंगाल कहा जाता था।

मचान और मचान के ढाँचे पर मंदिर बनाने की परम्परा भी बंगाल में देखी जाती है। मंदिर के ऊपर कितना मचान है, उसी के आधार पर ही कोई कोई एक मंजिला, कभी दो चाला, कभी आठ (गूंम्बज) चाला का होता।

आपके प्रदेश में कोई पुरानी स्थापत्य है? अगर है तो अपने मित्रों के साथ वहाँ जाओं। वह कब बना, कैसे बनाया गया, उन सभी विषयों को भली-भाति जानने का प्रयास करों।

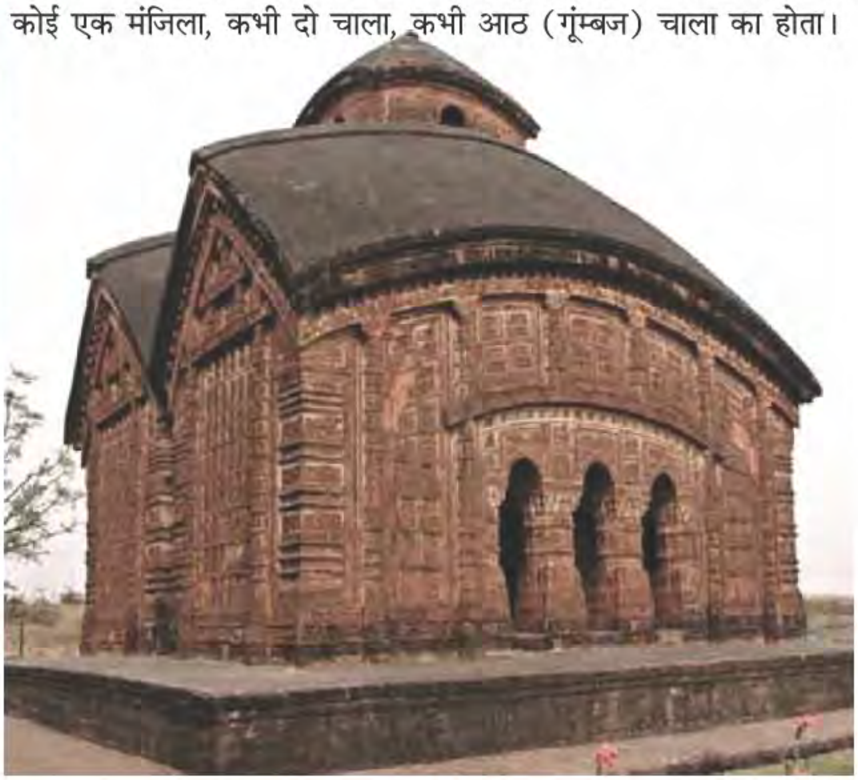

चित्र : ७.१९ : जोड़-बंगाल मंदिर, विष्णुपुर (सन १६५५)

इस्लामी स्थापत्य के आधार पर गूंबज (चाला) के ऊपर भी कभी कभी पिलर और गूंबज भी बनाया जाता।

साधारण आयत क्षेत्र आकार के बुनियाद के ऊपर एकाधिक रत्न देकर तैयार किए गए मंदिर उस समय बंगाल में बनाया गया। उसी का नाम 'रत्न' है। एक रत्न रहने पर वह एकरत्न मंदिर, पाँच रत्न रहने पर पंचरत्न मंदिर।

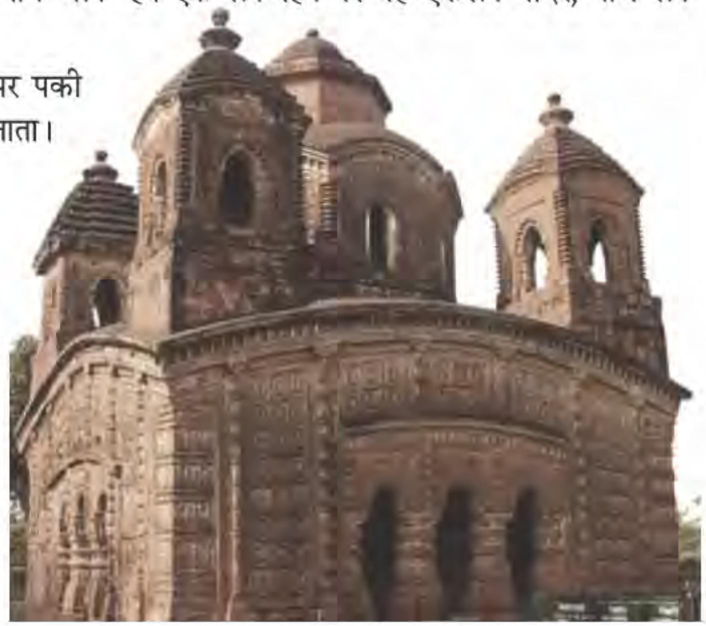

चित्र : ७.२० : पंचरत्न मंदिर, विष्णुपुर (१ ६४३ ई०)

इस मंदिर के अधिकांश दिवारों पर पकी मिट्टी (टेराकोटा) का कार्य किया जाता। पकी हुई मिट्टी से बने यह मंदिर बांकुड़ा जिला के विष्णुपुर के अलावा बंगाल के विभिन्न प्रदेशों में फैला हुआ है।

इस समय बंगाल के स्थापत्य कला के इतिहास को तीन चरणों में बांटा जा सकता है। प्रथम चरण (सन १२०१-१३३९) में बंगाल की राजधानी गौड़ था। त्रिवेणी में जाफर खान की समाधि के भग्नावशेष एवं बसीरहाट में फैले हुए कुछ स्तुप के अलावा इस समय और भी कोई मौजूद नहीं है।

द्वितीय चरण (सन १३३९-१४४२ ई०) सबसे महत्वपूर्ण स्थापत्य मालदह के पण्डुआ में सिकन्दर शाह द्वारा बनाया गया आदिना मस्जिद है। इसके अलावा हुगली जिला के छोटा-पण्डुआ का मिनार और मस्जिद एवं गौड़ शेख आकि सिराज की समाधि इस चरण के कुछ उल्लेखनीय स्थापत्य है।

तृतीय चरण (सन १४४२-१५३९ ई०) बंगाल में 'इन्दों इस्लामी' परम्परा का स्थापत्य कला सबसे अधिक विकसित हुआ। पण्डुआ में सुलतान जलालुद्दीन मुहम्मद शाह (जदु) समाधि (एकलाखी समाधि के नाम से विख्यात) इस ढाँचे का महत्वपूर्ण निदर्शन है। ऊचाई में अधिक न होने के बावजूद, टेराकोटार गूंबज और उसकी अर्धगोल आकृति के लिए ही इसे बंगाल की 'इन्दों-इस्लामी' स्थापत्य उन्नति का महत्वपूर्ण उदाहरण कहा जाता है। बरबक शाह के समय में तैयार गौड़ दाखिल दरवाजा इस समय का एक और उल्लेखनीय निर्माण है। इसके अलावा उस समय राजधानी गौड़ की और कुछ महत्वपूर्ण स्थापत्य का उदाहरण तांती पाड़ा मस्जिद, गुन्मत मस्जिद, और लोटान मस्जिद है। १४८८ ई० में २६ मीटर का ऊचाई वाला फिरोज मिनार बना। ईंट और टेराकोटा कार्य के अलावा यह मिनार सफेद और नीले रंग के चमकते हुए टाली से भी अलंकृत था। १५२६ ई० में निर्मित बड़ी सोना मस्जिद गौड़ की सबसे बड़ी मस्जिद है।

७.६ सुलतान और मुगल युग की चित्रकला

दरबारी चित्र कला

सुलतानी शासन युद्ध होने से पहले ही भारत में चित्र बनाने की परम्परा थी। मंदिर और गुफाओं की दीवारों पर अंकित चित्र इसका प्रमाण है। लेकिन चित्र बनाने के क्षेत्र में सुलतान और उसके बाद मुगल काल में मौलिक परिवर्तन हुआ। धीरे-धीरे इस चित्र परम्परा का मिला-जुला रूप चित्रकला में देखा गया। विभिन्न प्रदेशों में कई प्रकार के प्रादेशिक चित्र परम्परा को बनते हुए देखा गया।

सुलतान युग की पुस्तकों और पाण्डुलिपियों में चित्र बनाने का परम्परा का प्रचलन था। सुन्दर हस्त लेखन, रंगीन चित्र सब मिलाकर पुस्तके सुन्दर प्रतीत होती। हिन्दू बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी इस प्रथा का प्रभाव पड़ा था। कल्पसूत्र, कालचक्र कथा, चौरपंचाशिका इत्यादि पुस्तकों में इस प्रकार की लेखनी और चित्रों का व्यवहार देखा जाता था। फारसी महाकाव्य 'शाहनामा' के भारतीय संस्करण में भी इसी प्रकार के रंगीन चित्र है। लेकिन इस चित्रों का विशेष महत्व परिलक्षित नहीं होता था।

यह चित्रकार प्रधानत: भारत (गुजरात इत्यादि प्रदेश) के निवासी थे। इसमें से अधिकांश बाद में मुगल सम्राट अकबर के कारखाने में योगदान किए। सुलतान चित्रकला की धारा मुलत: मुगल युग से पहले ही परिणत और उन्नत हुआ था।

पुस्तकों में चित्र बनाने का एवं अलंकरण (सजाने) की प्रथा सम्राट बाबर के समय से ही था। इस संदर्भ में सम्राट हुमायू बहुत ही आग्रही थे। ईरान और आफगानिस्तान में रहते समय उन्होंने आब्दुस समाद और मीर सईद अली का कार्य देखा था। इससे मुग्ध होकर हुमायू ने इन कारीगरों को लेकर दिल्ली में मुगल कारखाना खोला। उस कारखाने की पुस्तकों को अपूर्व सुन्दर हस्तलेखनी और अलंकरण द्वारा सजाया जाता था। 'हमजानामा' पुस्तक में अलंकरण का प्रयोग हुमायू के समय ही शुरू हुआ और यह पूरी तरह से अकबर के समय पूरा हुआ। इसके अलावा कई सारे उदाहरण है। जैसे रोजनामा, नल-दयमंती एवं जाफरनामा इत्यादि।

सुन्दर हस्त कला लेखनी की उस समय काफी चर्चा होती थी। इसे अंग्रेजी में Calligraphy (कैलीग्राफी) कहा जाता है। बंगाल में इसे हस्तलिपि विद्या अथवा हस्तलिपि कला कहा जा सकता है। उस समय छापाखाने का प्रचलन नहीं था। हाथ से लिखी हुई पुस्तक ही उस समय कला का उदाहरण था।

चित्र ७.२२ :
मुगल कारखाना में पुस्तक अलंकरण का कार्य करते हुए कारीगर।

सम्राट अकबर के शासन काल में पुस्तकों के अलंकरण कला के बहुत सारे उदाहरण मिलते है। तूतीनामा, रोजनामा (महाभारत का फारसी अनुवाद) इत्यादि पुस्तकों के प्रत्येक पृष्ठ को सूक्ष्म हस्तलिपि और चित्र देकर सजाया जाता था। आकार और आयतन में छोटी इन चित्रों को मिनियेचर (Miniature) कहा जाता है। मिनियेचर अंग्रेजी के शब्द है, लेकिन यह ही सबसे अधिक प्रचलित है। बांग्ला में इसे अनुचित्र कहा जा सकता है। सोने का रंग एवं दूसरे रंगो का व्यवहार पुस्तक के बाहर होता था। जिससे पृष्ठों में चमक दिखाई पड़ती थी। लेखन के चारों ओर विभिन्न प्रकार के अलंकरण (सजावट) किया जाता था।

पुस्तक अलंकरण (सजावट) के साथ-साथ किसी भी आकृति का चित्र बनाने का कार्य भी अकबर के समय आरम्भ हुआ। जहाँगीर के शासनकाल में प्रतिकृति (आकृति) बनाने का कार्य में उन्नति हुआ। उस समय से ही यूरोपीय चित्र बनाने की रीति-नीति की छाप मुगल चित्र कला पर पड़ा था। चित्र में वास्तविकता और प्रकृतिवाद का स्पष्ट स्वरूप परिलक्षित होता था। भारत के प्रकृति उद्भिज और जीव-जन्तुओं का चित्र वास्तविक रूप में रूपायित हो उठा।

चित्र ७.२३
बादशाह जहांगीर के हाथों में राष्ट्र की बागडोर (सार्वभौम क्षमता) प्रदान कर रहे है बादशाह अकबर। उत्तराधिकार सूत्र में क्षमता पाने का प्रतीक यह काल्पनिक चित्र।

जहाँगीर के शासन काल में ही कलाकर सबसे पहले चित्रों पर हस्ताक्षर करना आरम्भ किए। इससे सहजता से पता चल जाता था कि किसने कौन सा चित्र बनाया है।

बादशाह और अभिजात महिलाएं भी चित्र बनाने के संबन्ध में काफी उत्साही थी। लेकिन बाहर के कलाकारों द्वारा राज दरबारों की महिलाओं को चित्र बनाने का विशेष प्रचलन नहीं था। नादिरा बानू, साहिफा बानू जैसे मुगल महिला स्वयं चित्र बनाती थी।

स्थापत्य के साथ-साथ शाहजहाँ को चित्र कला में भी उत्साह था। चित्र के जरिए नजदीक और दूर को समझाने की पद्धति का व्यवहार इस समय ही शुरू हुआ। 'पादशाहनामा' ग्रंथ का अलंकरण इस समय का विख्यात कार्य था। यह सभी चित्र कला के रूप में असाधारण था। दूसरी तरफ समकालीन इतिहास में चित्रों की महत्ता उपादान के रूप में अंकित है।

शाहजहाँ के पश्चात मुगल चित्र कला में विशेष उन्नति को नहीं देखा गया। सम्राट औरंगजेब के शासन काल में दरबारी कला के कार्य में बाधा आई। जिसके कारण उनमें से अधिकांश मुगल दरबार को छोड़कर विभिन्न प्रदेशों के शासकों के यहां चले गए। बादशाह और अभिजात ही विषय वस्तु के रूप में मुगल दरबारी चित्रों में अपनी छाप को रखे हुए थी। लेकिन इसके साथ-साथ साधारण लोग, उनके क्रिया-कलाप चित्रों के जरिए ही अंकित हुआ था।

कुछ बातें

मुगल चित्रकला के सम्बंध में अबुल फजल का विवरण

''कहा जाता है कि सफेद और काला रंग सभी रंगों का उत्स है। इन दोनों को परस्पर रंग विरोधी के रूप में देखा जाता है अथवा दूसरे रंग के अंश रूप में। जिसके परिणाम स्वरूप जब अधिक सफेद रंग को मिलाया जाता है कुछ बहुरंगी काले रंग के साथ तो पीला रंग उत्पन्न होता है। सफेद और काले रंग को समान अनुपात में मिलाने पर लाल रंग होता है। जब अधिक मात्रा (अनुपात) में काले रंग के साथ सफेद रंग को मिलाया जाता है, तो इसका हरा रंग दिखाई देता है। इन सभी को मिलाकर दूसरा रंग बनाना सम्भव है...'' अबुल फजल आल्लामी, आईन-ए-अकबरी, कानून ३४ (रंग चरित्र के प्रसंग में)

किसी के साथ कुछ मिलाकर चित्र बनाने को 'तस्वीर' कहते है। बादशाह अकबर यौवन काल से ही इस प्रकार के चित्र बनवाने के प्रति आग्रही थे। उसके शासन काल में असंख्य चित्रकला प्रतिष्ठित हुआ। प्रत्येक सप्ताह दरोगा और क्लर्क सभी चित्रकारों के चित्र को बादशाह के कलाकारी के गुण पर विचार करके उनके लिए पुरस्कार की घोषणा करते और उनके मासिक वेतन को भी बढ़ा दिया जाता था।

मुगल चित्रकारों का चित्र प्राणविहिन लोगों में प्राण तत्व लाता था। एक सौ से भी ज्यादा चित्रकार चित्र बनाने की कला में लगे हुए थे।

इन चित्रकारों में पारसोर ताबरिज के मीर सईद अली, सिराज के ख्वाजा आब्दुस सामाद जिसका छद्मनाम शिरिन कलम अर्थात मीठा कलम, दसवंत एवं वसवान उल्लेखनीय थे। दसवंत पालकी ढोने वालों का लड़का था। उसका समस्त जीवन इस कला के प्रति समर्पित था। वह चित्र बनाने की कला में इतना निपूर्ण था कि वह दीवारों पर भी लोगों का चित्र बना देते थे। स्वंय बादशाह की नजर में दसवंत आए। कालक्रम के अनुसार सभी चित्रकारों को अपनी कला से काफी पीछे छोड़ आए। दसवंत की अकाल मृत्यु होने के पश्चात भी उनके चित्र उनकी प्रतिभा का प्रमाण है। चित्रों की भूमिका में विभिन्न प्रकार के अवयव को रेखांकित करते, रंगों का प्रयोग, प्रतिकृति बनाने के अलावा कुछ क्षेत्रों में वसवान की क्षमता भी असाधारण थी।

चित्र ७.२४ :

चित्रनंद और उदीय नाम के दो युद्धों में हाथी लड़ाई कर रहा है। अकबरनामा-एक मुगल मिनियेचर

प्रादेशिक चित्रकला

मुगलो के दरवारी चित्रकला के साथ-साथ विभिन्न प्रादेशिक चित्रों को बनाने की परम्परा भी देखा जाता है। दक्षिण प्रांत में बीजापुर के सुलतान द्वितीय इब्राहिम आदिल शाह (१५८६-१६२७ ई०) चित्र कला के मर्मज्ञ थे।

राजस्थान और पहाड़ी प्रदेशों में (जम्मू, काश्मीर, कांगड़ा इत्यादि) विभिन्न चित्र बनाने की परम्परा देखी जाती है। मुगल परम्परा और प्रादेशिक वैशिष्ट्य इस प्रदेश की चित्र परम्परा से पूरी तरह घुल-मिल गया है। चित्र का विषय, रंग व्यवहार की दृष्टिकोण से इनका अलग महत्व है।

पौराणिक विषय वस्तु और दृश्य इन चित्रों की मूल विषय वस्तु थी। विषय वस्तु के रूप में राधा-कृष्ण का अत्यधिक प्रयोग किया गया। इसके साथ-साथ प्रतिकृति बनाने की कला भी लोकप्रिय एवं चर्चा में थी। राजपूत राजाओं के अलावा जमींदार भी अपने एवं अपनी समाजों का चित्र बनवाते। लेकिन वास्तव में इन प्रतिकृतियों की पृष्ठभूमि वास्तविक थी।

कुछ बातें

संसार के आश्चर्य

बीजापुर के सुलतान द्वितीय इब्राहिम आदिल शाह के शासन काल में फारूक हुसैन महत्वपूर्ण चित्रकार थे। वे सर्वप्रथम मुगल सम्राट अकबर के कारखाने में योगदान दिया। १५९० से १६०५ ई० के मध्य फारूक हुसैन अचानक मुगल कारखाने से गायब हो गए। कहा जाता है कि इसी समय वे इब्राहिम लोदी के लिए चित्र बनाते थे। बाद में वे पुन: मुगल कारखाने में लौट आये जहांगीर ने उसे नादिर-अल-असर (संसार के आश्चर्य) की उपाधि दिए।

चित्र ७.२५ : वार्तालाप करते हुए राधा-कृष्ण, कांगड़ा चित्र।

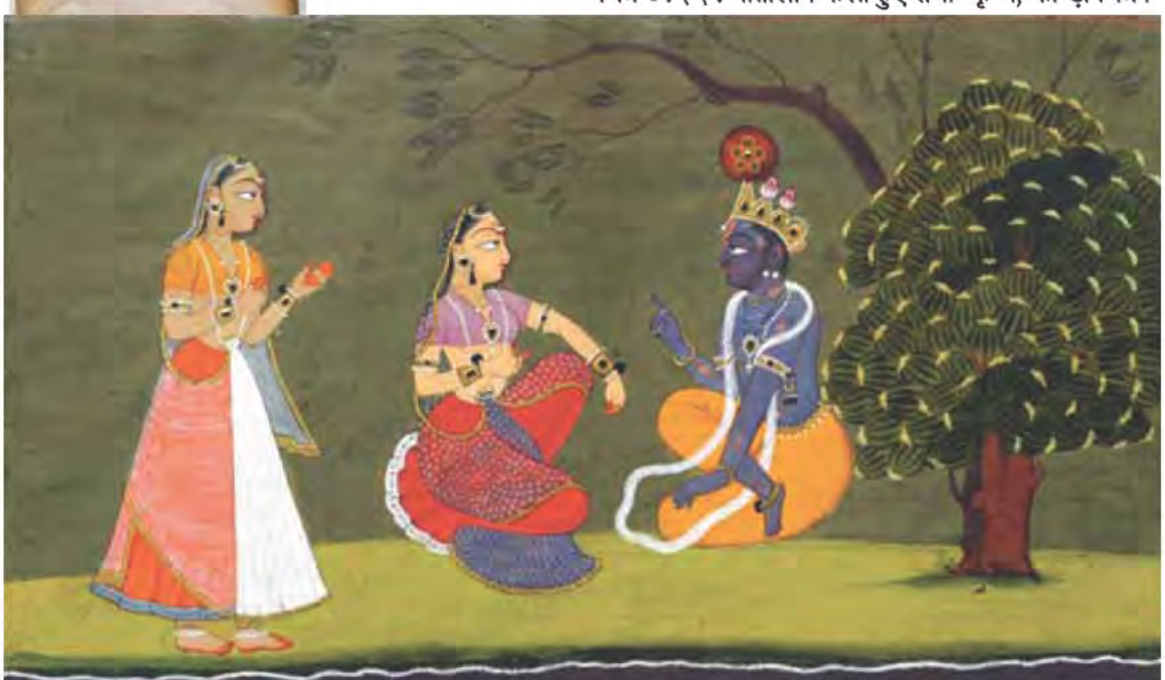

संगीत और नृत्य

सुलतान और मुगल काल में संगीत और नृत्य कला पर भी चर्चा होती थी। भारतवर्ष में संगीत चर्चा और ईरानी संगीत चर्चा की धारा घुल-मिल गई थी। सन् तेरहवीं शताब्दी से ही सूफी पीर समा गीत को अपनी साधना का अंग बनाया। साथ ही साथ भक्ति धर्म का हाथ पकड़कर विभिन्न प्रादेशिक संगीत तैयार हुआ। कबीर, नानक, मीराबाई सभी ने गीत को ही अपने ईश्वर प्राप्ति का अंग बना लिया था। श्रीचैतन्य के नेतृत्य में कीर्तन के जरिए ही वैष्णव धर्म का प्रचार किया जाता था।

सुलतान फिरोजशाह तुगलक के शासनकाल में शास्त्रीय संगीत की चर्चा जारी थी। उस समय की दो पुस्तकों के जरिए ही इस विषय को जाना जाता है। प्रादेशिक राज्य भी संगीत मर्मज्ञ के प्रति उत्साही थे। संगीत विषय पर लिखी गई पुस्तकों को राजा और सुलतानों को उत्सर्ग किया जाता था। जौनपुर के इब्राहिम शाह शरकी को संगीत शिरोमणि (१४२० ई०) रचना को उत्सर्ग किया गया। हुसेन शाह शरकी स्वंय संगीत राग तैयार किया था। जिसे होसैनी अथवा जौनपुरी राग कहा जाता है।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर (१४५०-१५२८ ई०) संगीत के मर्मज्ञ थे। उनके समय शास्त्रीय ध्रूपदों को संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद किया गया। मान-कौतुहल उस समय का एक प्रसिद्ध संगीत शोध ग्रंथ था। बैजू बावरा इसी समय के प्रसिद्ध संगीतकार थे।

मुगल साम्राज्य में सबसे अधिक अकबर ही संगीत प्रेमी थे। उनके दरबार में गुणीजन दरबारियों में संगीतज्ञ भी थे। अबुल फजल की लेखनी में छत्तीस संगीत शास्त्रियों का नाम मिलता है। तानसेन (१५५५-१६१० ई०)उनमें से सबसे अधिक प्रसिद्ध थे। उन्होंने दीपक, मेघमल्लार इत्यादि राग का सृजन किया। कहा जाता है कि उनकी संगीत साधना ऐसी थी कि कभी-कभी स्वंय ही दीपक जल जाता था, और कभी-कभी अचानक वर्षा भी होने लगती थी।

शाहजहाँ के समय मुगल दरबार में संगीत का प्रचलन था। औरंगजेब अपने शासन काल का प्रथम दस वर्ष संगीत कला के प्रति उत्साही थे। इसके उपरांत सरकारी तौर पर संगीत का प्रचार प्रसार बन्द कर दिया गया।

मुगल साम्राज्य के पतन के बाद भी संगीत की इतिहास परम्परा सुरक्षित थी। विभिन्न प्रादेशिक शासक संगीत को समझने वाले थे। भारतीय शास्त्रीय संगीत परम्परा का इतिहास आज भी मौजूद है।

कुछ बातें

अमीर खुसरो

सुलतान युग में अमीर खुसरो हिन्दुस्तानी और इरानी संगीत में मेलबंधन किए थे। दिल्ली सुलतान से लेकर सूफी पीर- खुसरों की लोकप्रियता सभी जगह थी। अलाउद्दीन खिलजी द्वारा दक्षिण विजय करने के उपरांत कर्नाटक के संगीत कलाकार जब दिल्ली आते थे तो उन्हीं से ही अमीर खुसरों भारतीय प्राचीन संगीत के सम्बंध में ज्ञान प्राप्त करते थे। शास्त्रीय संगीत के विषय में खुसरों ने बहुत कुछ लिखा भी है। ख्याल, तराना, कव्वाली इत्यादि संगीत परम्परा का आरम्भ अमीर खुसरो ने किया। कहा जाता है कि सितार, तबला, पखावज वाद्ययंत्र उनके द्वारा ही बनवाया गया था। इसके अलावा अमीर खुसरों अनेक गजल एवं गीति काव्य भी लिखे है।

नृत्यकला : मणिपुरी नृत्य

भारतवर्ष में ध्रूपदी नृत्य मूलतः छः है– भरतनाट्यम, कथाकली, ओड़ीसी, कूचीपूड़ी, कथक एवं मणिपुरी। इनमें से नवीनतम मणिपुरी नृत्य शैली के बारे में हम जानेंगे। अठारहवीं शताब्दी में भक्ति का प्रबल प्रभाव मणिपुरी संस्कृति पर पड़ा। जिसके कारण ही उनके प्राचीन नृत्य धारा के साथ भक्ति रस जुड़ा। जिससे संगकीर्तन और रासलीला की सृष्टि हुई। वैष्णव पदावली के आधार पर राधा–कृष्ण को केन्द्र करके रासलीला को तैयार किया गया था।

चित्र ७.२६: मणिपुरी नृत्य की भंगिमा को दर्शाती चित्र।

मणिपुर के महाराज भागचन्द्र के हाथों द्वारा ही मणिपुरी रासलीला की धारा विकसित हुई। नृत्य के लिए कुमिल पोशाक भी उन्होंने बनवाया। संगकीर्तन के साथ पुंग नामक का ढोल बजाकर मूलतः लड़के ही नाचते थे।

७.७ भाषा और साहित्य

७.७.१ अरबी और फारसी

इस्लाम का जन्म अरब देशों में हुआ। इसलिए उसका प्रचलन अरबी भाषा के जरिए ही हुआ। मध्ययुगीय भारतवर्ष में अरबी भाषा का प्रचलन सीमित था। अरबी का महत्व केवल भारतीय शिक्षित मुसलमानों के लिए ही था। कुछ सरकारी पुस्तके अरबी भाषा में लिखी गयी, जिनमें औरंगजेब के शासनकाल में लिखा गया फतवा–ई–आलमगिरी उल्लेखनीय है। यह उस समय की कानून व्यवस्था के लिए एक विश्वसनीय दलील था। इसे ही कुछ लोग भारत में मुस्लिम शासन में लिखा गया श्रेष्ठ मुस्लिम नियम की पुस्तक कहते थे।

मध्ययुग के भारत में फारसी भाषा और साहित्य की व्यापक लोकप्रियता थी। भारत में फारसी साहित्य का आरम्भ सुलतान के शासन काल में ही हुआ था।

दसवी शताब्दी में जब तुर्की भारत में आए तभी से भारत में फारसी भाषा का प्रचलन कम होने लगा। इससे पहले से ही फारसी प्रशासनिक भाषा के रूप में ही एशिया और ईरान में प्रचलित था। वहाँ पर साहित्यिक क्षेत्र में भी इस भाषा का प्रयोग होता था। इससे सहज ही समझा जा सकता है कि तुर्की फारसी भाषा की शक्ति से भली-भांति परिचित थे। इसी कारण भारत से इस भाषा को तुर्की महत्व दिए। कुतुबुद्दीन आइबक और इलतुतमिश फारसी भाषा के प्रतिष्ठाता थे। फारसी भाषा और साहित्य के विकास में खिलजी युग का भी अवदान महत्वपूर्ण है। उस समय लाहौर शहर फारसी भाषा के अध्ययन का प्रधान केन्द्र बन गया था।

उस समय के फारसी साहित्यिक और दार्शनिकों में अमीर खुसरों की लेखनी प्रसिद्ध थी। १२५२ ई० में उत्तर प्रदेश के बदायू के नजदीक पटियाला में खुसरों का जन्म हुआ। वे हमेशा अपने आप को भारतीय कहलाने में गौरव का अनुभव करते। खुसरों का भारत के प्रति लगाव था। इसे हम इस तथ्य के आधार पर जानते है कि- किस तरह धीरे-धीरे तुर्की शासक तथाकथित आक्रमणकारियों की भूमिका के बदले इस देश में पूरी तरह से रहने की मानसिकता तक पहुँच गया था। खुसरों असंख्य कविता और काव्य लिखे। जीवन भर फारसी काव्य लिखने की विभिन्न पद्धति को लेकर परीक्षण-निरीक्षण किए। फारसी साहित्य की एक नयी रचनाशैली 'सबक-ई-हिन्द' के आविष्कारक अमीर खुसरों ही थे।

उस समय इतिहास लिखने के क्षेत्र में फारसी अत्यधिक पसंदीदा भाषा बन गयी थी। इस भाषा के प्रसिद्ध इतिहासकार मिनहाज-उस-सिराज, ईस्लामी एवं जियासुद्दीन बरौनी थे। मध्य युग की अनेक रचना को मूल संस्कृत से फारसी में अनुवाद किया गया। इस धारा के प्रथम लेखक जिया नकशावी थे। वे संस्कृत में लिखी हुई कहानी को फारसी में अनुवाद किए और उसका नाम 'तूतीनामा' रखा। इसके अलावा उस समय के काश्मीर सुलतान जैनुल आब्दीन के उत्साह से कल्हण के राजतरंगिनी एवं महाभारत का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया।

फारसी अनुवाद की यह परम्परा समानात्तर रूप में तुगलक, सैयद और लोदी शासन में चलती रही। मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में उनकी राजधानी कुछ समय के लिए देवगिरी और दौलतावाद हुई। जिसके फलस्वरूप दक्षिण भारत में भी फारसी भाषा पूरी तरह से फैल गया। दक्षिण भारत के बाहमनी सुलतान भी फारसी भाषा के प्रति काफी उत्साही थे। यही कारण है की बाहमनी राजधानी गुलबर्ग एवं विदर फारसी भाषा और साहित्य का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया था।

मुगल काल में फारसी क्रियाकलाप और लोकप्रियता काफी बढ़ी थी। सम्राट अकबर तुर्की और फारसी दोनों भाषों के विद्वान थे। इसलिए उसकी आत्म जीवनी 'तुजुक-इ-बावरी' तुर्की भाषा में लिखा गया था। यह पुस्तक फारसी भाषा में भी अनुदित हुआ है। हुमायू फारसी प्रेमी थे। ईरान से जब सम्राट हुमायू भारत लौटे तो उनके साथ बहुत सारे कवि साहित्यकार भी आएं। जैसे कासिम खान मौजी। जो हुमायू और अकबर के दरबारी कवि थे। सन सोलहवी-सत्रहवीं शताब्दी में फारस से बहुत सारे कवि और साहित्यकार आकर मुगलों के दरबार में भीड़ किए। फारस के सफावी साम्राज्य उस समय पतन के कगार पर था। इसलिए स्वाभाविक रूप से वहाँ के गुणीजन भारत चले आए। फारस एवं भारत के मध्य सांस्कृतिक आदान-प्रदान फारसी भाषा के जरिए ही सम्भव हो पाया। इससे भारतीय साहित्य को विशेष लाभ हुआ। एक विशिष्ट काव्य परम्परा जैसे फैजी, उरफी, नाजिरी और बेदिले का जन्म हुआ।

सम्राट अकबर के शासनकाल में फारसी भाषा एवं साहित्य क्रमशः विकसित होते गया। उस समय की रचनाओं को तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहला इतिहास लिखना, दूसरा अनुवाद साहित्य एवं तीसरा कविता। इतिहास के कार्यो में अबुल फजल का 'अकबरनामा' एवं आईन-ए-अकबरी, बदाउनिर मुस्तफा-उत-त्वारिख एवं निजामुद्दीन अहमद को तबकात-ई-अकबरी इत्यादि उल्लेखनीय था।

अकबर की तरह सम्राट जहांगीर भी फारसी के अनुरागी थे। उनके शासन काल में भारत के विख्यात कवि तालिब आमुलि था। शाहजहाँ के समय भी यह चर्चा सामान्य भाव से चलता रहा। इसका प्रभाव अब्दुल हमीद लाहोरी जैसे विख्यात इतिहासकारों की लेखनी में मिलता है। फारसी अनुवाद की परम्परा पूरी तरह से औरंगजेब के शासनकाल में कम हो गया था। कहा जाता था कि वे फारस देश से आए कवि-साहित्यकारों के प्रति उतना उदार नहीं थे। लेकिन औरंगजेब की पुत्री जैव-उन-निशा अपनी फारसी भाषा को पसंद करती और उसमें कविता भी लिखी। सम्राट औरंगजेब स्वंय इस भाषा को भली-भांति जानते थे और इसका प्रभाव फारसी में लिखा हुआ कुछ पत्र है।

उपर्युक्त आलोचना के आधार पर यदि आप यह समझेंगें कि फारसी भाषा केवल मुस्लिम समाज में ही सीमाबद्ध था- तो यह गलत होगा। दूसरे लोग भी इस भाषा के जानकार एवं आग्रही थे। इसका प्रभाव ईश्वरदास नागर, चन्द्रभान ब्राह्मण और भीमसेन बुरहानपूरी जैसे हिन्दू लेखकों की रचना में मिलता है।

संक्षिप्त बातें

अकबर के समय अनुवाद

अनुवाद के क्षेत्र में अकबर स्वयं आग्रही थे। उन्ही के कारण कुछ लेखकों ने महाभारत के कुछ भाग का अनुवाद फारसी में करवाया। और वह 'रोजनामा' नाम से विख्यात है। बदाऊ रामायण का अनुवाद किए। हाजी इब्राहिम सिंधी फारसी भाषा में वेद का अनुवाद किया ग्रीक भाषा में लिखे हुए कुछ पुस्तकों का फारसी में अनुवाद किया गया। राजा टोडटमल भगवतपुराण का अनुवाद फारसी में किया।

७.७.२ बांग्ला साहित्य

सुलतान युग के अंतिम समय तक बांग्ला भाषा कैसा था इसका उत्तर दे पाना कठिन है। लेकिन उस समय के कुछ ग्रंथ पाए गये हैं। जिनमें से बंगूचण्डीदास की श्रीकृष्णकीर्तन उल्लेखनीय है। इसकी भाषा से सुलतान युग में बांग्ला भाषा के सम्बंध में धारणा बना सकते है।

सन् पन्द्रहवीं शताब्दी में इलियाश शाही शासन बंगाल में शुरू हुआ। उस समय से ही बांग्ला भाषा में लिखने का उदाहरण मिलता है। यह धारा दूसरे सुलतान और मुगल शासन में भी बरकरार था।

सन् पन्द्रहवी शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी के अंतिम समय तक बांग्ला भाषा और साहित्य कैसा था? आज की तरह पहले भी विभिन्न प्रकार की बांग्ला भाषा थी। उसकाल के साहित्य में देवी-देवता की महीमा प्रचार का प्रभाव था, लेकिन कुछ गीतिका में साधारण लोगों की जीवन शैली का चित्र भी अंकित था।

जो कुछ भी लिखा जाता उसके अधिकांश भाग को सुर में गाया जाता था। इसलिए इस समय की लेखनी को 'पाँचाली' कहा जाता है। रामायण, महाभारत का अनुवाद हो या देवी-देवता की पाँचाली सभी को गाने का प्रचलन था।

भक्ति धर्म का प्रभाव बांग्ला साहित्य पर गंभीर रूप से पड़ा है। श्री चैतन्य एवं इसके वैष्णव-भक्तिवाद को लेकर बहुत सारा साहित्य लिखा गया। श्रीकृष्ण को केन्द्र करके काव्य लिखने की परम्परा थी। उसके साथ-साथ राधा-कृष्ण को लेकर पद-कविता लिखने की भी परम्परा थी। इसी को 'पदावली साहित्य' कहा जाता है।

रामायण, महाभारत उस समय बहुत ही लोकप्रिय था। इन दोनो महाकाव्य के विभिन्न पक्षों को लेकर उस समय के बहुत लोगों ने काव्य लिखा। इसके अलावा रामायण और महाभारत का तो अनुवाद था ही। रामायण का अनुवाद कृतिदास ओझा ने और महाभारत का अनुवाद काशिराम दास ने किया। भगवतगीता के कुछ अंशो का अनुवाद उस समय के सरल बांग्ला में किया गया था। उस अनुवाद का नाम श्रीकृष्ण विजय था, जिसका अनुवाद मालाधर बसु ने किया।

बांग्ला साहित्य की एक और पुरानी एवं प्रधान धारा मंगलकाव्य था। चण्डी, मनसा, धर्म में देवी-देवताओं की पूजा का प्रचलन था। उस पूजा के समय ही देवी-देवता की महीमा को गीत गाकर सुनाया जाता था। उन गीतों में एक कहानी रहती थी। उन्हीं कहानियों को आधार बनाकर कुछ साहित्य

कुछ बातें

महाकाव्य का बांग्ला अनुवाद

रामायण, महाभारत और भगवतगीता सभी मूल रूप में संस्कृत में लिखा गया। लेकिन जब कवियों ने इनका बांग्ला भाषा में अनुवाद किया, तभी उसमें कुछ परिवर्तन आया। उस समय बंगाल का चित्र उन अनुवाद में परिलक्षित होता है। बाल्मीकी द्वारा लिखे गए रामायण के राम और कृतिवास के राम का चरित्र सम्पूर्ण अलग है।

चित्र ७.२७ :

मनसामंगल काव्य का एक चित्र। चित्र में बेहुला मृत लखीन्दर को लेकर डेला में बह रही है।

सोचकर बताओ

नाथ साहित्य का एक महत्वपूर्ण भाग मयनामती की कहानी और गोपीचन्द्र का गीत है। सिर्फ बंगाल में ही नहीं बल्कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में यह कहानी और गीत प्रचलित था। यह कहानी बंगाल से आरम्भ होकर बिहार, पंजाब, गुजरात और महाराष्ट्र तक फैला।

सोचकर बताओ किस तरह उस युग की यह कहानी बंगाल के अलावा दूसरे प्रदेशों में फैलती गयी।

लिखा गया उसी को 'मंगलकाव्य' कहा जाता है। 'मंगल' का अर्थ है- अच्छा। जिस देवी और देवता के नाम पर मंगलकाव्य लिखा जाता, उसकी पूजा करने से सब कुछ अच्छा होगा- वही कहने का प्रयास किया गया था।

चण्डीदेवी को लेकर 'चण्डीमंगल' लिखा गया था। देवी मनसा को लेकर 'मनसामंगल' काव्य लिखा गया। धर्म ठाकुर धर्म मंगल के केन्द्र थे। अनेक कवियों ने मंगलकाव्य लिखा। लेकिन सभी में कहानी के जरिए देवी-देवताओं की पूजा करने की बात कही गई।

चण्डी,मनसा, धर्म इत्यादि देवी-देवता को समाज के निम्न वर्ग के लोग ही पूजा करते थे। इसलिए इन लोगों के लेकर लिए गए मंगलकाव्यों में गरीब, साधारण लोगों के जीवन का चित्रण मिलता है। भगवान शिव को लेकर भी इस समय साहित्य लिखा गया।, जिसे 'शिवायन' कहा जाता है। पुराणों में शिव को लेकर जो कहानी है, उसके साथ शिव-दुर्गा के पारिवारिक जीवन की कथा को जोड़कर शिवायन काव्य लिखा गया। शिव वहाँ पर खेती-वारी करके जीविकापार्जन का प्रयास करते है। इन रचनाओं के जरिए उस समय के बंगाल का गरीब किसान परिवार जैसे शिव-दुर्गा का परिवार हो गया।

नाथ-योगी नाम का एक धर्म सम्प्रदाय उस समय बंगाल में था। उसके देवता शिव थे। इस नाथ-योगियों के धर्म-कर्म, आचरण एवं व्यवस्था को लेकर भी उस समय साहित्य लिखा गया, जिसे नाथ साहित्य कहा गया। इन रचनाओं में संन्यासी जीवन यापन करने पर जोर दिया गया था।

श्रीचैतन्य की जीवन एवं कार्य को लेकर लिखने की परम्परा इस समय शुरू हुआ। चैतन्य की जीवनी को लेकर अनेक वैष्णव कवि काव्य लिखे। इन्हें 'चैतन्य जीवनी काल' कहा जाता है।

अरबी-फारसी के साथ बांग्ला भाषा में मेलबंधन का उस समय लिखने की परम्परा थी। सैयद आलाउल काजी उसी धारा के कवि है। आलाउल के 'पद्मावती काव्य' में सुलतान अलाउद्दीन खिलजी के चितौड़ राज्य अधिकार के बारे में लिखा गया है।

७.८ विज्ञान और प्रयुक्ति

एक समय अधिकांश लोग यही सोचते थे कि प्राचीनकाल ही केवल विज्ञान चर्चा एवं साहित्य कला सृष्टि का 'स्वर्णयुग' था। आप की तुलना में मध्ययुग का इतिहास 'अंधकार का समय' था। उनके अनुसार यह समय विज्ञान, प्रयुक्ति, उद्योग और साहित्य रूपी उन्नति का चक्का प्राय: रूक सा गया था। लेकिन इतिहासकारों ने प्रमाणित किया है कि पाँचों समय के अनुसार मध्ययुग के भारत में भी समस्त क्षेत्रों में काफी पर्याप्त मात्रा में इसकी उन्नति हुई।

विज्ञान उन्नति के बहुत सारे प्रमाण अलबरूनी के 'किताब-अल-हिन्द' में मिलता है। सन् १०३५ ई० में इसी लेखनी के जरिए पूरी इस्लामी दुनिया में उन्होंने विज्ञान के सम्बंध में भारतीय सोच-विचार का प्रसार-प्रचार किया। वास्तव में विज्ञान को लेकर उस समय के भारतीयों के सोच-विचार क्या थे?

मध्ययुग में ज्योतिष विज्ञान की व्यापक उन्नति हुई। इसका आरम्भ सुलतान युग से हुआ। दिल्ली में एक ऊची मिनार के ऊपर फिरोजशाह तुगलक एक मान मंदिर बनवाया। उसके ऊपर एक सूर्य घड़ी लगाई गयी। इसके अलावा सन् तेरहवीं शाताब्दी से ही चैनिक चुम्बक कम्पास का व्यवहार भारत के समुद्री इलाकों में आरम्भ हुआ।

मुगल बादशाह अकबर विज्ञान प्रसार के प्रति बहुत ही आग्रही थे। उनके दरबार में गणित, ज्योतिष विद्या और भूगोल के ऊपर विशेष ध्यान दिया जाता था। साम्राज्य के विभिन्न विषय जैसे वस्तुओं की कीमत, जनसंख्या, फल-फूल, मौसम, खजाने का प्रतिशत इत्यादि का हिसाब सुसंगठित तरीके से रखा जाता। इसके अलावा अकबर के राजदरबार में इतिहासकार अबुल फजल ने लिखा है कि- शिक्षित न होने के बावजूद अकबर स्वंय वैज्ञानिक एवं प्रयुक्तिगत विषयों के प्रति आग्रह रखते थे। ऐसे बहुत सारे क्षेत्र है, जहां वे स्वंय काम भी करते थे। सम्राट जहाँगीर 'तुजुक-इ-जहाँगीर' में पदार्थविद्या और जीव विद्या विषय पर कुछ बाते लिखी है। ज्योतिष विज्ञान के क्षेत्र में विशेष अवदान जयपुर के राजा सवाई जयसिंह का है। सन् अठारहवीं शताब्दी में वे दिल्ली, जयपुर,उज्जैन, मथुरा एवं वाराणसी में मान मंदिर बनवाया।

मध्ययुग के भारत में सुलतान शासन में तुरंत ग्रिको-अरबी परम्परा के यूनानी चिकित्सा शास्त्र का आगमन हुआ। उत्तर भारत से यह चिकित्सा पद्धति क्रमशः दूसरे प्रदेशों में प्रचलित हुआ। इसके साथ-साथ आयुर्वेद जैसी चिकित्सा पद्धति भी सर्वत्र फैली हुई थी। फ्रासोया वार्नियेर के अनुसार कुछ यूरोपीय पर्यटकों का हाथ पकड़कर यूरोपीय चिकित्सा पद्धति सन् सत्रहवीं शताब्दी में भारत में आया।

सैनिक प्रयुक्ति के क्षेत्र में उस समय काफी फेर-बदल हुआ। सन् चौदहवीं शताब्दी के प्रथमार्द्ध में बारूद व्यवहार करने वाले आग्नेय अस्त्र चीन से होते हुए मोंगलो द्वारा प्रथम भारत में प्रवेश किया। इसके कुछ पश्चात बारूद द्वारा चलने वाली रॉकेट का व्यवहार भारत के कुछ प्रदेशों में आरम्भ हुआ। सन् पन्द्रहवीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में चीन और मामेलुक शासित मिशर से बन्दूक प्रयुक्ति भारत में आरम्भ सन् सोलहवी शताब्दी के अंत तक पुर्तगाली इस प्रयुक्ति को दक्षिण भारत में प्रसारित किया। इसी समय लगभग मुगल भी उत्तर भारत में युद्ध के लिए व्यापक पैमाने पर बन्दूक और तीर का व्यवहार आरम्भ किया। घोड़े पर सवार होकर युद्ध के समय घोड़े के दोनो बगल में सैनिकों के लिए पैर रखने के लिए पदनीर (रेकाब) का व्यवहार तुर्की सैनिक को सुविधा प्रदान करती थी। अश्वारोही पैदल और रणयोद्धा के साथ इस देश के राजा-बादशाह के सैनिकों में क्रमश: तीर चलाने वाले एवं बन्दूक धारी सैनिक अपनी जगह बना रहे थे।

चित्र ७.२८ :

मुगलों का रणथमौर दुर्ग अभियान का एक चित्र। तीर को पहाड़ी रास्ते से ऊपर उठाने के लिए पशुओं का व्यवहार किया जाता।

भारतीय आदिकाल से लेकर साल पत्ते पर अथवा पेड़ के छालो पर लिखते थे। सन् प्रथम शताब्दी में चीन में प्रथम कागज का आविष्कार हुआ। सन् तेरहवीं शताब्दी से भारत में कागज बनाने की (तकनीक) प्रयुक्ति चीन से पहली बार मध्य एशिया से मोंगल ही लाए। कुछ समय के पश्चात ही भारत में सर्वत्र कागज का व्यवहार फैल गया। जिसके परिणामस्वरूप पढ़ने का कार्य सरल हो गया। सन् चौदहवीं शताब्दी में भारत में कागज इतना सस्ता हो गया था कि मिठाई देने के लिए कागज का प्रयोग करते थे। इसके साथ ही उल्लेखनीय घटना यह है कि भारत में प्रथम छापाखाना की प्रतिष्ठा यूरोपीय मिशनरियों ने किया। वाणिज्यिक तौर पर इस प्रयुक्ति का प्रचलन के लिए कुछ समय तक इंतजार करना पड़ा।

मध्य युग के भारत में बुनाई प्रयुक्ति (कपड़े की बुनाई) में बदलाव आया। सन् ग्यारहवीं शताब्दी के मध्य एशिया से होते हुए कई रूई बुनने का यंत्र 'चरखा' भारत आया। इसी समय नागादई ही कपड़े को बुनने के लिए तांत का भी प्रचलन आरम्भ हुआ। विभिन्न चित्रों में संत कबीर तांत बुनते हुए देखे जाते है।

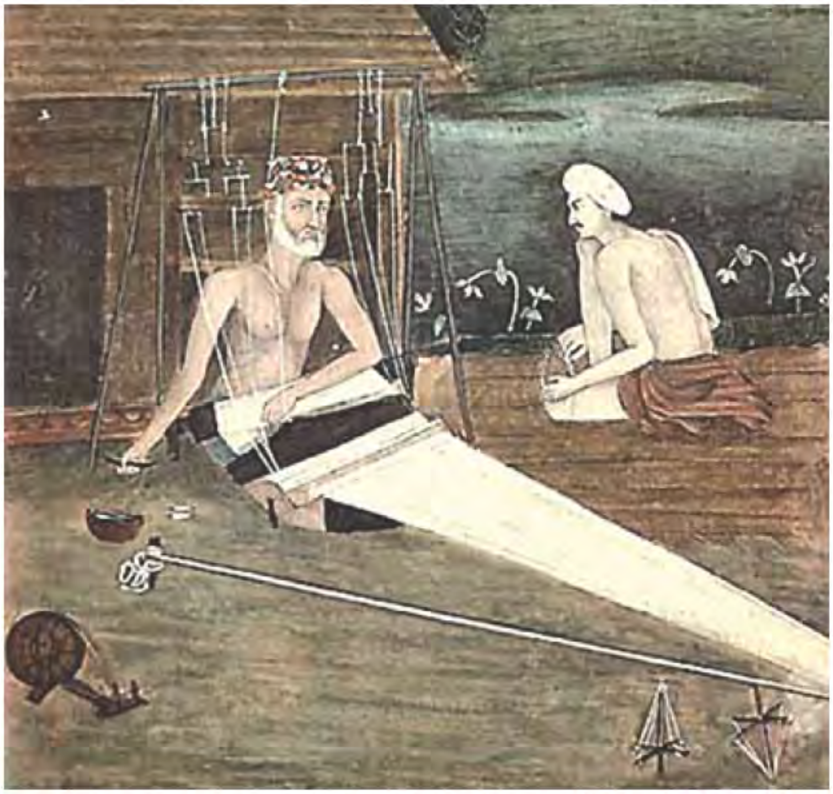

चित्र ७.२९ :
संत कबीर तांत बुन रहे है।

इसके कुछ पश्चात सन् तेरहवीं शताब्दी में तुर्की शासकों के साथ ही भारत में चरखा आया। भारत में सर्वप्रथम इस यंत्र का उल्लेख इसामीर फुतुह–उस सालातीन पुस्तक में मिलता है। रूई से सुता (धागा) बुनने की यह प्रयुक्ति तीव्र गति से चारों तरफ फैल गया। मध्ययुगीय भारत में वस्त्र उघोग विशेषकर कपड़े को रंग करते एवं छपाई की पद्धति काफी उन्नतशील था। विभिन्न प्रकार के कपड़े भारत के विभिन्न जगहों पर तैयार होता था। सन् चौदहवीं शताब्दी से भारत में ब्लॉक छपाई का कार्य आरम्भ हुआ। यह उद्योग क्रमश: विभिन्न जगहों पर फैला एवं सन् सोलहवीं शताब्दी के लगभग छीट (Chintz)भारत में प्रसिद्ध हो गया। इस देश से मध्य पश्चिम और यूरोप में छपाई किए हुए कपड़े का निर्यात किया जाता था।

सन् पन्द्रहवीं शताब्दी से ही भारत में विशेषकर बंगाल में रेशम उद्योग का उल्लेख मिलता है। रेशम पेड़ के कीड़े से रेशम तैयार करने की प्रयुक्ति इस देश में चीन से आया बारूद और कागज की तरह। इसके पश्चात आगामी दो सौ वर्षो तक बंगाल के मालदा, मुर्शिदाबाद और काशिम बाजार प्रदेश भारत में रेशम कीड़े की खेती का प्रधान केन्द्र था। यही से देश–विदेश में रेशम का निर्यात किया जाता था।

सन् सत्रहवीं शताब्दी में उत्तर भारत के मुगलों के हाथों ही बागान उद्योग (बगीचा तैयार करना) का व्यापक प्रसार हुआ। प्राचीन काल से ही कमल प्रथा चली आ रही थी, लेकिन इस समय इसमें उन्नति को देखा गया। पुर्तगालियों द्वारा इस विषय से सम्बंधित यूरोपीय प्रयुक्ति भारत में आया। इन सभी घटनाओं के फलस्वरूप भारत में फलों के गुणात्मक मान में काफी उन्नति हुई।

चित्र ७.३०: चार बाग की तैयारी का कार्य देखते हुए बादशाह बाबर।

सन् तेरहवीं शताब्दी के लगभग फारसी देश से भारत में बेल्ट एवं गियर लगी हुई साकिया और परसियन चक्र (Persian Wheel)। छोटा झुला जैसा देखने में काठ से बने इस यंत्र के जरिए पशु शक्ति की सहायता से कुएं एवं खाल (नाले) से पानी निकाला जाता था। लेकिन यंत्र कीमती होने के कारण भारतीय किसान समाज में यह ज्यादा लोकप्रिय नहीं हो पाया। उत्तर-पश्चिम भारत के कुछ-कुछ क्षेत्रों में इसका व्यवहार किया जाता था।

कृषि क्षेत्र में मध्य युग की सबसे बड़ी उन्नति का मूल कारण सिंचाई व्यवस्था का प्रसार। दक्षिण भारत में विजयनगर शासक और उत्तर भारत में फिरोजशाह तुगलक एवं मुगल बादशाह सिंचाई व्यवस्था में काफी उन्नति की। दक्षिण भारत की अधिकांश जमीन पथरीला एवं नदी की संख्या तुलनात्मक रूप से कम होने के फलस्वरूप सिंचाई का काम करना कठिन था। यहां पर बड़े आकार के जलाशय की खुदाई करके उससे ही छोटे नाले एवं खाल के जरिए खेती की जमीन में जल पहुंचाया जाता था। दूसरी ओर उत्तर एवं पूर्व भारत में छोटी-बड़ी नदियों की संख्या काफी थी। इन्हीं नदियों से खाल के जरिए जल खेती की जमीन में पहुंचती थी।

कुछ बातें

चारबाग

मुगल सोलहवीं शताब्दी में भारत में बगीचा बनाने के एक नये कौशल को लाया। फारसी में इसका नाम चाहार बाग (हिन्दी में चार बाग)। एक बगीचे में पानी (जल) देकर चार समान आयतन वर्ग में विभिन्न प्रकार के फल-फूल एवं पेड़ लगाकर एक सुन्दर परिवेश तैयार किया जाता। फारस और मध्य एशिया से इस बगीचे की परम्परा को भारत लाए। मुगल बादशाहों में सबसे ज्यादा आग्रह बागीचे लगाने का बाबर, जहांगीर और शाहजहाँ का था। लाहैर का शालीमार बाग, दिल्ली का हुमायू समाधि और आगरा का ताजमहल में चार बाग का निदर्शन देखने को मिलता है।

चित्र ७.३१: एक आधुनिक गियर लगाया हुआ साकिया और पारसिक चक्र।

मध्ययुग के भारत में प्रयुक्ति विकास का एक व्यापक क्षेत्र मकान-घर निर्माण उद्योग था। सुलतान द्वारा बनाएं गए शहर इसका प्रमाण है। टेढ़े पीलर, गूम्बज, चूर्न का व्यवहार इत्यादि इसकी विशेषता थी। मुगल काल में यह धारा प्रचलित थी। इस उघोग में भारतीय कारीगर एवं तुर्की स्थापत्य मिलकर 'इन्दों-मुस्लिम' निर्माण परम्परा को जन्म दिया था।

मध्य युग के भारत में अनेक नई प्रयुक्ति चीन, फारस और यूरोपीय प्रदेशों से आया। भारतीय कारीगर इस प्रयुक्ति को सहजता से प्रयोग में लाए। कभी इनमे सामान्य परिवर्तन करके अपने कार्य उपयोगी बनाना। लेकिन इस समय विज्ञान और प्रयुक्ति के क्षेत्र में भारतीयों के मौलिक योगदान को विशेष रूप से नहीं देखा गया। सन् सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप में विज्ञान सम्बंधी विचार विमर्श का ज्वार आया जिसके परिणाम स्वरूप प्रयुक्ति के क्षेत्र में बड़े पैमाने पर फेरबदल किया गया। लेकिन हमलोग भारतवर्ष और पृथ्वी की दूसरी जगह इसे नहीं देख पाए। यह प्रसंग भूलने से नहीं होगा कि भूगोल, भौतिक विज्ञान, जीवविदा एवं सामाजिक (युद्ध) प्रयुक्ति उस समय यूरोप विशेषकर पश्चिम यूरोप में काफी अग्रगति हुई। मूलत: उसी के कारण यूरोप के पक्ष में सन अठारहवीं शताब्दी में पूरी दुनिया पर शासन स्थापित करना सम्भव हो पाया।

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

१। रिक्त स्थानों की पूर्ति करें : **पूर्णांक १**

(क) ....(टाली एवं ईटं/ सीमेंट एवं बालू/ सफेद पत्थर) व्यवहार करके बंगाल में सुलतान एवं मुगल काल में साधारण लोगो का घर बनाया जाता।

(ख) कबीर के दो पंक्ति के कविताओं को कहा जाता है ....(भजन/ कथा/ दोहा)।

(ग) सूफी गुरू को याद करते ....(पीर/ मूरीद/ वे-शरा)।

(घ) ....(कोलकाता/ नवद्वीप/ मुर्शिदाबाद) चैतन्य आन्दोलन का प्राण केन्द्र था।

(ङ) ....(नानक/ कबीर/ मीराबाई) श्रीकृष्ण और गिरधारी के उपासक थी।

(च) दीन-ए-इलाही का वैशिष्ट्य मुगल सम्राट एवं उसके अभिजात के मध्य ....(गुरू-शिष्य/ मालिक-श्रमिक/ राजा-प्रजा) का सम्पर्क था।

(छ) सफेद पत्थर पर रत्न बैठाकर हस्तकला करनेवाले को ....(चार बाग/ पवित्र दरवाजा/ टेराकोटा) कहा जाता है।

(ज) महाभारत के फारसी अनुवाद का नाम ....(हमजानामा/ तूतीनामा/ रोजनामा) था।

(झ) (दसवंत/ मीर सईद अली/ आवदुस सामाद) .... 'शिरिनकलम' नाम से परिचित थे।

(ञ) जौनपुरी राग को ....(बैजू बावरा/ हुसैन शाह शरकी/ इब्राहिम शाह शरकी) तैयार कराया।

(ट) श्रीकृष्ण विजय काव्य के लेखक का नाम ....(काशीराम दास/ कृतिवास ओझा/ मालाधर बसु) था।

(ठ) 'परसी चक्र' का प्रयोग ....(जल निकालने के लिए/ कमान से गोली छोड़ने के लिए/ बगीचा बनाने के लिए) किया जाता था।

२। निम्नलिखित कथनों के साथ नीचे दिए गए कौन सी व्याख्या आपको सठीक प्रतीत हो रही है? **पूर्णांक १**

(क) कथन : नदी के किनारे उधोग तैयार किए जाते।

व्याख्या-१ : नदी के किनारे उधोग लगाने से कर नहीं लगता था।

व्याख्या-२ : उस समय के सभी लोग नदी के किनारे रहते थे।

व्याख्या-३ : कच्चे माल का आयात एवं तैयार किए गए माल के निर्यात में सुविधा थी।

(ख) कथन : चैतन्य ने बंग्ला भाषा को ही भक्ति प्रचार के माध्यम के रूप में स्वीकार किया था।

व्याख्या-१ : वे सिर्फ बांग्ला भाषा ही जानते थे।

व्याख्या-२ : उस समय बंगाल के साधारण लोगों की भाषा भी बांग्ला ही थी।

व्याख्या-३ : भक्ति विषयक सभी पुस्तके बांग्ला में लिखा गया था।

(ग) **कथन :** चिश्ती सूफी राजनीति में योगदान नहीं करते थे।

व्याख्या-१ : उनका मानना था कि अगर राजनीति में प्रवेश किए तो ईश्वर साधना सम्भव नहीं हो पाएगा।

व्याख्या-२ : वे राजनीति समझते नहीं थे।

व्याख्या-३ : वे मानवतावादी थे।

(घ) **कथन :** अकबर दीन-ए-इलाही............ किए।

व्याख्या-१ : वे बैद्ध धर्म के अनुरागी थे।

व्याख्या-२ : वे अनुगामी समूह तैयार करना चाहते थे।

व्याख्या-३ : वे युद्ध करना छोड़ दिए थे।

(ङ) **कथन :** मुगल सम्राट दुर्ग बनाने के प्रति आग्रही थे।

व्याख्या-१ : दुर्ग बनाने का खर्च कम था।

व्याख्या-२ : दुर्ग बनाना प्रासाद बनाने से भी सहज था।

व्याख्या-३ : दुर्ग बनाने से साम्राज्य सुरक्षित रहता था।

(च) **कथन :** जहांगीर के शासनकाल में यूरोपीय चित्र का प्रभाव मुगल चित्र कला पर भी पड़ा था।

व्याख्या-१ : उस समय यूरोपीय चित्र का मुगल दरबार में आना शुरू हुआ।

व्याख्या-२ : मुगल कलाकर सभी यूरोपीय थे।

व्याख्या-३ : भारतीय कलाकर सभी उस समय यूरोप से चित्र बनाना साख कर आए थे।

(छ) **कथन :** मध्य युग के मणिपुरी नृत्य में राधा-कृष्ण प्रधान चरित्र थे।

व्याख्या-१ : भारत में नृत्य के देवी-देवता राधा-कृष्ण थे।

व्याख्या-२ : उस समय वैष्णव धर्म का मणिपुर में विस्तार हुआ था।

व्याख्या-३ : चैतन्यदेव मणिपुर के ही थे।

(ज) **कथन :** भारत में प्राचीन काल में साल पत्ते के ऊपर लिखा जाता था।

व्याख्या-१ : उस समय कागज का प्रयोग नहीं होता था।

व्याख्या-२ : उस समय भारत में कागज की कीमत ज्यादा थी।

व्याख्या-३ : उस समय भारतीय लोग कागज के ऊपर लिखने वाली स्याही का आविष्कार नहीं कर पाए थे।

३। संक्षेप में (३०-५० शब्दों में) उत्तर दीजिए : पूर्णांक ३

(क) सुलतान और मुगल काल में भारत में कौन-कौन फल, सब्जी एवं पदार्थो की सबसे अधिक खेती होती थी ?

(ख) मध्य युग के भारत में भक्ति साधक कौन थे ?

(ग) सिलसिला किसे कहा जाता है ? चिश्ती सूफी का जीवन यापन कैसा था ?

(घ) 'दीन-ए-इलाही' शपथ ग्रहण कार्यक्रम कैसा था ?

(ङ) स्थापत्य के रूप में अलाई दरवाजा का क्या महत्व है ?

(च) कालिग्राफी और मिनियेचर से क्या तात्पर्य है ?

(छ) शिवायन क्या है ? इससे बंगाल के किसानो के बारे में क्या परिचय मिलता है ?

(ज) कागज का आविष्कार कहां हुआ था ? मध्य युग के भारत में कागज का व्यवहार कैसा था उसके बारे में लिखो।

४। विस्तारपूर्वक (१००-१२० शब्दों में) उत्तर दीजिए : पूर्णांक ५

(क) मध्य युग के भारत में साधारण लोगो की जीवनयात्रा कैसी थी, उसे लिखिए।

(ख) कबीर की भक्ति साधना से किस तरह विभिन्न धर्मो के लोग एक हो गए थे ?

(ग) बंगाल में वैष्णव आन्दोलन का परिणाम क्या हुआ, उसका विश्लेषण करो।

(घ) बादशाह अकबर के 'दीन-ए-इलाही' के संम्बंध में एक टिप्पणी लिखिए।

(ङ) मुगल सम्राट के शासन काल में बगीचे एवं दुर्ग निर्माण के सम्बंध में आलोचना कीजिए।

(च) मध्य युग के बंगाल में स्थापत्य परम्परा के पर्याय का मूल वैशिष्ट्य क्या था ?

(छ) मुगल चित्रकला की उन्नति में मुगल बादशाह की भूमिका क्या थी ?

(ज) मध्ययुग के भारत में किस तरह फारसी भाषा का प्रयोग और लोकप्रियता बढ़ी, उसका विश्लेषण करें।

(झ) सुलतान एवं मुगल शासन काल में सैनिक एवं कृषि प्रयुक्ति में क्या-क्या परिवर्तन हुआ था ?

सोचकर लिखो (१००-१५० शब्दों में) :

(क) राजनीति, जीवन यापन एवं धर्म को लेकर एक सुहरावर्दी सूफी साधक के साथ कबीर के काल्पनिक वार्तालाप को लिखों।

(ख) मान लीजिए कि आप चैतन्य देव के समय एक साधारण व्यक्ति थे। आपने देखा कि चैतन्यदेव का नगर संकीर्तन निकला है, उस समय आप क्या करोंगे ?

(ग) अगर आप मुगल कारखाना के एक चित्र कलाकर होते तो बादशाह के सुनजर पढ़ने के लिए आप कौन-कौन सा चित्र बनाते ?

(घ) मान लीजिए कि आज आप अपने श्रेणी के शिक्षक/ शिक्षिका है। आप हिन्दी भाषा में अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग के बारे में पढ़ा रहे है। प्रतिदिन हिन्दी भाषा में प्रयोग किए जाने वाले अरबी-फारसी शब्दों की एक तालिका छात्रों को देना चाहते है। ऐसी एक तालिका तैयार कीजिए। जरूरत पड़ने पर हिन्दी कोश की सहायता लीजिए।

अष्टम अध्याय

मुगल साम्राज्य का संकट

८.१. मूल बातें

मुगल साम्राज्य के संकट को समझने से पहले यह जानना जरूरी है कि यह संकट क्यों उत्पन्न हुआ। इसके लिए उस समय के अर्थनैतिक और राजनीतिक परिवर्तन को जानना जरूरी है। औरंगजेब के शासनकाल में साम्राज्य का काफी विस्तार हो चुका था एवं मनसब को लेकर अभिजातो के बीच द्वन्द्व शुरू हो चुका था उसी समय मराठा जैसी एक प्रादेशिक शक्ति का अभ्युदय हुआ। वे मुगलों के सार्व भौमकत्व को अस्वीकार किये। सिखों के साथ भी मुगलों का सम्बंध तीव्र हो चुका था। इतने दिनों तक मुगलों ने अपने को सर्वोच्च अधिकारी के रूप में प्रतिष्ठित किया था, उस पर प्रहार किया गया। इस अध्याय में मुगलों के विरूद्ध इन प्रादेशिक शक्तियों के प्रतिवाद की कहानी ही हम पढ़ेगें।

इस प्रतिवाद का स्वरूप अलग-अलग क्षेत्रों में अलग-अलग था। मराठा अपने स्वराज्य गठन का स्वप्न देख रहे थे, जाट और सत्नानी विद्रोह मुगल शासन काल के कृषि व्यवस्था के संकट को दर्शा रहा था। प्रादेशिक स्वाधीनता सभी चाहते थे। लेकिन इन आन्दोलनों को धार्मिक प्रतिवाद कहना उचित नहीं होगा।

८.१. शिवाजी के नेतृत्व में मराठाशक्ति और मुगल राष्ट्र

युद्ध कला में निपुर्ण मराठों का निवास स्थल पुणा और कोंकण प्रदेश था। उनमें से अधिकांश बीजापुर एवं गोलकुण्डा के राज दरबार में उच्च पद पर आसीन थे लेकिन उनका अपना स्वयं का कोई भी राजा नहीं था। सन् सत्रहवीं शताब्दी में शिवाजी मराठों को एकजुट किए थे।

शिवाजी (जीवनकाल १६३०-८० ई०), पिता शाहजी भोंसले बीजापुर सुलतान के जागीदार थे। शिवाजी अपनी मां जीजाबाई एवं शिक्षक दादाजी कोण्डदेव से गंभीर रूप से प्रभावित हुए। बीजापुर सुलतान की अस्वस्थता का अवसर लेकर बीजापुर के कुछ जमींदार को अपने दल में मिला लिया था। सुलतान ने शिवाजी का दमन करने के लिए अफजल खान को भेजा। अफजल खान शिवाजी की हत्या करने का प्रयास किया। लेकिन सतर्क शिवाजी उल्टे बघनख नामक यंत्र से अफजल खान की हत्या की। शिवाजी की शक्ति वृद्धि को औरंगजेब द्वारा स्वीकार कर लेना सम्भव नहीं था। शिवाजी ने दो बार बन्दर नगरी सूरत पर आक्रमण करके लूटपाट मचाया। औरंगजेब शिवाजी का दमन करने के

चित्र ८.१ : बाघनख

लिए शायस्ता खान, मुआज्जम एवं मिर्जा राजा जयसिंह को भेजे। जयसिंह ने सन् १६६५ ई० में शिवाजी को पुरघंर संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए बाह्य किया। इस समझौता के अनुसार शिवाजी मुगलों के २३ दुर्गो को छोड़ने के लिए बाह्य हुए। स्मरण रखना होगा कि उस समय दुर्ग सुरक्षा व्यवस्था का प्रधान स्तम्भ था। इसके पश्चात् शिवाजी जब आगरा में मुगल दरबार गए तो वहाँ पर उन्हें अपमानित किया गया। उन्हें आगरा दुर्ग में बन्दी बनाया गया शिवाजी एक फल की टोकरी में छिपकर वहाँ से भाग आए। दक्षिण पहुँच कर मुगलों के साथ पुनः शिवाजी का द्वन्द्व आरम्भ हुआ।

शिवाजी के नेतृत्व में मराठों का अभ्युदय केन्द्रीय शासन के विरूद्ध एक प्रकार का बड़ा आन्दोलन था। शिवाजी ने एक सुपरिकल्पित एवं स्वाधीन शासन व्यवस्था की शुरूआत की। रायगढ़ में उनका अभिषेक (१९१४ ई०) हुआ। अर्थात् दूसरे मराठा सरदारों से वे एकदम अलग है, यह प्रमाणित हुआ। उनके आठ मंत्रियों को 'अष्टप्रधान' कहा जाता था। इनमें प्रधान पेशवा थे। मराठा अपने राज्य को स्वराज्य कहते थे। स्वराज्य के बाहर मराठी सेना पास-पड़ोस के इलाकों पर आक्रमण करके वहाँ से कर की अदायगी करते थे जो सैनिक मराठा राज्य में स्थायी भाव से नौकरी करते थे, उन्हें 'वर्गी' कहा जाता था। शिवाजी के ही नेतृत्व में मराठों में राष्ट्रीय चेतना की भावना जगी।

कुछ बातें

मावले और पेशवा

शिवाजी जब पुणे के आस-पास के प्रदेशों में आक्रमण कर रहे थे, तो उस समय माउवाल प्रदेश से उन्होंने एक दल पैदल सैनिकों को संग्रह करके सेना की नियुक्ति की। इन्हें ही मावले अथवा माउयाली कहा जाता था। उनके सेना के प्रमुख अंग थे। शिवाजी की मृत्यु के चालीस वर्ष पश्चात् पेशवा के हाथों में शासन व्यवस्था की बागडोर आ गई। उस समय मुगल शासन का दुर्दिन चल रहा था। शिवाजी के मृत्यु के पचास वर्ष के पश्चात् पेशवा प्रथम बाजीराव हिन्दू राजाओं को साथ में लेकर एक हिन्दुत्ववादी साम्राज्य की स्थापना की परिकल्पना किए। उनके इस हिन्दू राज्य के आदर्श को हिन्दूपादशाही कहा जाता है। वे धर्म के नाम पर मुगलों के विरूद्ध दूसरे राजाओं को भी एकजुट करना चाहते थे।

मानचित्र ८.२ : सन सत्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में दक्षिण और दक्षिण भारत।

मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं।

सिख शक्ति और मुगल राष्ट्र

मुगल सम्राट जहांगीर और शाहजहां के शासन काल में मुगलों के साथ सिखों का युद्ध हुआ। इस युद्ध का राजनीतिक महत्त्व था। सिख अपने गुरुओं के प्रति समर्पित थे। इसलिए समय-समय पर मुगल राष्ट्र के साथ सिखों में संघात (युद्ध) हो जाता था। सन् सोलहवीं शताब्दी के अंत में चौथे गुरु रामदास का पुत्र अर्जुनदेव सिख गुरु हुए। इस समय से ही वंशानुक्रम गुरू निर्वाचित करने की परम्परा शुरु हुई। गुरु अर्जुन देव का पुत्र गुरु हरगोविन्द एक साथ दो तलवार रखते थे। वह यह बतलाना चाहते थे कि सिर्फ धर्म के क्षेत्र में ही नहीं बल्कि उनके पास राजनीतिक क्षमता भी है। अत: कहा जा सकता है कि सिखों का उत्थान पूरी तरह से स्वाधीन शक्ति के उत्थान जैसा ही हो गया

था। मुगल सरकार की ओर से इसे मान लेना सम्भव नहीं था। नौवें सिख गुरु तेगबहादुर औरंगजेब की धार्मिक नीति का विरोध किया। केवल धार्मिक कारण से ही सिख और मुगलों में युद्ध नहीं हुआ। यह कहानी प्रचलित है कि तेगबहादुर एक पठान के साथ हाथ मिलाकर पंजाब में मुगल शासन का विरोध किया था। तेगबहादुर को बन्दी बनाकर मुगलों ने उनकी हत्या की। इस घटना के पश्चात् सिख पंजाब में पहाड़ी क्षेत्रों में चले गए एवं वहीं पर दशवें सिख गुरु गोविन्द सिंह के नेतृत्व में एकजुट हुए।

कुछ बातें

खालसा

सन् १६९९ ई० में गुरु गोबिन्द सिंह ने 'खालसा' नामक एक संगठन बनाया था। खालसा का प्रधान कार्य सिखों को सुरक्षित रखना था। सैनिक प्रशिक्षण सिखों के दैनिक जीवन का प्रमुख अंग था। गुरु गोविन्द सिंह ने सिखों का पथ अथवा रास्ता तय कर दिए थे। गुरु गोविन्द सिंह उन्हें हमेशा पाँच चीज को रखने के लिए कहते थे। इन पाँचों चीजों के नाम का पहला अक्षर 'क' से शुरु होता था। वे है - केश, कंघी, कच्छा, कृपाण और कड़ा। इसके अलावा खालसा पंथी सिख सिंह, पदवी का प्रयोग करने लगे। पहाड़ी हिन्दू राजाओं के साथ सिखों के बीच कभी-कभी छोटे-छोटे युद्ध होते थे सिखों के विरुद्ध युद्ध करते समय हिन्दू राजाओं ने मुगल सरकार से सहायता मांगी थी। मुगलों की ओर से भी सिखों के शक्ति का उत्थान को मान लेना सम्भव नहीं था। इसलिए औरंगजेब के साथ सिखों की युद्ध का स्वरुप राजनैतिक था। गोविन्द सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके शिष्य बन्दा बहादुर इस लड़ाई को निरंतर जारी रखा। गुरु गोविन्द सिंह मुगलों के विरुद्ध जीत तो नहीं हो पाए, लेकिन उत्तर-पश्चिम सीमांत में मुगलों का नियंत्रण प्रायः शिथिल हो गया था। सिख धार्मिक आन्दोलन लोगों के बीच समता की बात कहती थी। लेकिन अधिकांश समय सैनिक शक्ति के ऊपर निर्भरशील होकर यह एक प्रतिरोधी आन्दोलन के रुप में राजनैतिक स्वरुप लिया।

विभिन्न कुछ विद्रोह

दिल्ली आगरा प्रदेश के जाट मूलतः किसान थे। उनमें से अधिकांश जमींदार भी थे। राजस्व होने के नाम पर उस समय जहांगीर और शाहजहां के शासनकाल में उनके साथ मुगलों का संघात (युद्ध) होता था। औरंगजेब के

समय वे स्थानीय एक जमींदार के नेतृत्व में एकजुट होकर विद्रोह किए। जाट एक पृथक राज्य की स्थापना करना चाहते थे। मुगलों के विद्रोह जाटो का विरोध एक ओर किसान विद्रोह तो दूसरी ओर एक अलग समूह परिचित जाट एकजुट हुए थे। मथुरा के नजदीक एक किसान दल ने मुगल साम्राज्य के विरूद्ध अस्त्र उठाया। ये लोग सत्नामी नामक धार्मिक समूह के लोग थे। उत्तर-पश्चिम अस्त्र के सीमांतो पर पठान उपजाति मुगलों के विरूद्ध विद्रोह किया था।

यह समस्त विद्रोह वास्तव में मुगल प्रशासन के केन्द्रीय स्वैराचारी-विरोधी आन्दोलन का प्रतिफलन था। इसके अलावा औरंगजेब के समय से ही कृषि संकट भी बढ़ गया था। यह भी इस विद्रोह का एक कारण था।

८.३. जागीदारी और मनेसबदरी संकट : कारण और प्रभाव

शाहजहाँ के समय से ही मनसबदरी और जागीदरी व्यवस्था की समस्या देखी जाती थी। अनेक क्षेत्रों में मनसबदरियों को उनके पद के अनुसार अर्थात् वेतन नहीं मिलता था। अनेक समय किसानों के विद्रोह करने के कारण राजस्व की वसूली नहीं हो पाती थी। इसमें अलावा दुर्नीति नियंत्रण करना सब समय सम्भव नहीं था। मनसबदरी जब वेतन नहीं पाते थे तो वे लोग जितने घुड़सवार सवारों की देखभाल करना था, उतना वे नहीं करते थे। अर्थात् कागजी दस्तावेज में जो हो रहा था उससे दूरी क्रमश: बढ़ते ही जा रही थी। औरंगजेब के समय यह समस्या और बढ़ गयी थी।

जागीदारी एवं मनसबदरी संकट के साथ उस युग का कृषि संकट भी जुड़ गया। उस समय फसल का उत्पादन बढ़ा था। लेकिन कृषि के ऊपर निर्भरशील लोगों की संख्या काफी बढ़ चुकी थी। दक्षिण में युद्ध में समय राजस्व वसूली के लिए भुगत मनसंबद मराठा सरदारों की मदद लेते थे इसका मतलब यह है कि इन सभी प्रदेशों में मुगलों का नियंत्रण अलग-अलग पड़ गया था। एक ओर सन् सत्रहवीं शताब्दी में पुन: वस्तुओं की कीमतों में बढ़ोतरी हुई। इस मूल्यवृद्धि के कारण ही अभिजात वर्ग जमीन से अत्यधिक आय का स्त्रोत बढ़ाना चाहते थे वह क्रमश: जमींदारों और किसानों के ऊपर दबाव बढ़ाने लगे। किसान विद्रोह का रास्ता अख्तियार किया। कभी-कभी तो जमींदार भी उनकी मदद करते थे।

कभी-कभी तो किसान जब राजस्व नहीं दे पाते थे तो उसके कारण उन्हें गाँव छोड़कर भागना पड़ता था। उस समय उसके जमीन पर खेती नहीं होती थी। खेती न होने के कारण राजस्व की वसूली भी नहीं हो पा रही थी। इसलिए मनसबदरों को इस जमीन पर जागीदारी मिलती, लेकिन वे भी अच्छी तरह से घुड़सवारों का भरण-पोषण नहीं कर पा रहे थे।

सोचकर बताओ कि कृषि संकट से क्या समझते हो ?

कुछ बातें

मुगल दरबार में गुटबाजी

सत्रहवीं शताब्दी के अंत में मनसबदारों के बीच अच्छी जागीदारी पाने के लिए षडयंत्र और लड़ाई शुरू हुई। दरबारी राजनीति में इरान, तुहरान और मराठा, राजपूत एवं दूसरें समूहों के मध्य युद्ध शुरु हुआ। मनसबदारी और जागीदारी संकट के लिए कोई एक मुगल शासन उत्तरदायी नहीं था ? बहुत दिनों से एकत्रित समस्या के कारण ही यह संकट उत्पन्न हुआ।

औरंगजेब के बीजापुर एवं गोलकुण्डा विजय के पश्चात् दक्षिण के विशाल प्रदेश मुगलों के अधीन हो गया। इस प्रदेश की सबसे अच्छी जमीन को औरंगजेब विशेष जमीन अथवा खालिसा के रूप में रखा था। लेकिन उन्हें जागीदारी के रूप में नहीं दिया जाता था। विशेष जमीन का राजस्व प्रत्यक्ष तौर पर सरकारी कोषागार में जमा होता था। इसलिए जमीन का कोई भी अभाव नहीं था, लेकिन जागीर के रूप में दिए जाने वाले जमीन की संख्या क्रमश: कम हो गयी थी। मुगल शासन नई प्रयुक्ति का प्रयोग करके जमीन की उर्वरता को नहीं बढ़ा पाएं। जिसने परिणाम स्वरूप यह समस्या काफी गंभीर हो गई।

बताओ अच्छी जमीन को क्यों सम्राट औरंगजेब विशेष जमीन के रूप में रखा था?

कुछ बातें

मुगल साम्राज्य का स्वरूप

मुगल साम्राज्य कितना शक्तिशाली था, इसे लेकर इतिहासकारों में काफी मतभेद है। इतिहासकारों का एक समूह यह कहते थे कि मुगल काफी शक्तिशाली था। उनके द्वारा निर्मित साम्राज्य के मध्य ही वर्तमान भारत का राष्ट्रीय बीज छिपा हुआ था । समुद्र से लेकर पहाड़ मुगल शक्ति चारों तरफ फैली हुई थी। वही इतिहासकारों के दूसरे समूहों का यह कहना था कि पूरी तरह से मुगलों के पास इतनी शक्ति नहीं थी। उनके मतानुसार मुगल साम्राज्य की तुलना इस दीवार से लेकर उस दीवार तक विस्तृत एक निश्चित गलिचा के साथ करना उचित नहीं है। लेकिन पूरी तरह से इसे जोड़ा लगाए हुए कम्बल के रूप में सोचना उचित होगा। उत्तर भारत में मुगलों का आधिपत्य होने के बावजूद दूसरे प्रदेशों में उनकी क्षमता सीमित थी।

चित्र ८.३
मुगल सेनापति शायस्ता खान के शिविर में शिवाजी द्वारा हमले का हृष्य। खिड़की से भागते समय शायंस्ता खान के हाथों की अंगुली शिवाजी के तलवार से कट जाती है। घटना स्थल पुणा, समय १६६३ ई०।

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

1. **नीचे दिए गए नामों में से कौन सा नाम वाक्यों से नहीं मिल रहा है। उसके नीचे निशान लगाए : पूर्णांक १**
   (क) पूना, कोंकण, आगरा, बीजापुर।
   (ख) बन्दा बहादुर, अफजल खान, शायंस्ता खान, मुआज्जम।
   (ग) अष्टप्रधान, वर्गी, मावले, खालसा।
   (घ) रामदास, तेगबहादुर, जयसिंह, हरगोविन्द।
   (ङ) केश, कृपाण, कलम, कंघी।

2. **'क' खण्ड के साथ 'ख' खण्ड का मिलान कीजिए :**

'क' खण्ड	*'ख' खण्ड*	
	रायगढ़	नाटनौल
	हिन्दू पादशाही	शिवाजी
	गोलकुण्डा	उत्तर पश्चिम सीमांत
	सत्नामी	प्रथम बाजीराव
	पठान उपजाति	दक्षिण प्रांत

3. **संक्षिप्त (३०-५० शब्दों में) उत्तर लिखिए : पूर्णांक ३**
   (क) औरंगजेब के शासनकाल में क्या-क्या अर्थनैतिक और राजनीतिक परिवर्तन हुआ था?
   (ख) कब, और किसके बीच पुरन्दर की संधि हुई थी? इस संधि का क्या परिणाम हुआ था?
   (ग) जाटो के साथ मुगलों का युद्ध क्यों हुआ था?
   (घ) शिवाजी के साथ मुगलों के द्वन्द्व का कारण क्या था?
   (ङ) बीजापुर और गोलकुण्डा विजय के पश्चात् मुगलों को क्या फायदा हुआ था?

4. **विस्तारपूर्वक (१००-१२० शब्दों में) उत्तर लिखिए : पूर्णांक ५**
   (क) मुगलों के विरुद्ध सिख कैसे अपने आप को संगठित किए थे?
   (ख) मुगल काल के अंतिम समय में कृषि संकट क्यों बढ़ गया था? इस कृषि संकट का क्या परिणाम हुआ?
   (ग) मुगल काल के अंतिम समय में जागीदारी और मनसबदारी व्यवस्था में क्यों संकट उत्पन्न हुआ था? मुगल साम्राज्य के ऊपर इस संकट का क्या प्रभाव पड़ा था?
   (घ) सम्राट औरंगजेब के शासन काल में मुगल साम्राज्य की सामग्रिक अवस्था के संदर्भ में आपकी अवधारणा क्या है?

सोचकर लिखों (लगभग १००-१५० शब्दों में) :

(क) मान लीजिए आप एक मराठा सरदार है। आपके साथ एक जाट किसान से मुलाकात हुई है। मुगल शासन के विभिन्न पक्षों को लेकर इस जाट किसान के साथ अपना एक कथोपकथन (वार्तालाप)लिखो।

(ख) मान लीजिए आप औरंगजेब के दरबार के एक इतिहासकार है। आप मराठा, सिख, जाट और सत्लामियों की लड़ाई के इतिहास को लिख रहे हो। किस तरह आप अपने लेखन में उन लड़ाईयों की व्याख्या करेंगे।

(ग) मान लीजिए आप एख अभिजात जागीदार है। सन् सत्रहवीं शताब्दी के अंत में आपको क्या लगता है कि आपके जमीन के किसानों के साथ आपका व्यवहार कैसा होगा।

नवम अध्याय

आज का भारत
सरकार, गणतंत्र और स्वायत्त शासन

अभी तक हमलोगों ने जो कुछ भी पढ़ा है, वे सारी पुरानी बातें है। लेकिन उन पुराने बातों की कुछ छाप अभी भी हमारे ऊपर दिखलाई पड़ती है। पुराने दिनों के बहुत सारे शब्दों का हमलोग प्रयोग करते है। पुराने दिनों की अवधारणा आज भी हमारे आस-पास दिखलाई पड़ती है। बदलते समय के साथ-साथ अवधारणा भी बदली है, लेकिन भीतर की मूल बातें कुछ क्षेत्रों में एक ही रह गयी है।

वैसे ही एक अवधारणा है 'सरकार'। सरकार शब्द फारसी से आया है। मध्ययुगीन भारत में इस शब्द का अर्थ शासनकर्त्ता अथवा शासन व्यवस्था के रूप में होता था। आपलोग शेरशांह के बारे में पढ़े हैं। शेरशांह अपने अधीन प्रदेशों को अधिकांशत: 'सरकार' के रूप में बाटा था, शासन व्यवस्था की सुविधा के लिए इस सरकार शब्द का प्रयोग आज भी हमलोग करते है। अंग्रेजी में इसे Government (गवर्नमेंट) कहा जाता है। Govern (गवर्न) का मतलब है — शासन करना।

हमलोग जिस देश में निवास करते है, उस भारत देश में भी एक सरकार है। सभी स्वाधीन देश में सरकार होती है। पहले जो शक्ति के आधार पर युद्ध में विजयी होते थे, वही शासन करते थे। अभी देश के लोग स्वयं तय करते है कि देश पर शासन कौन करेगा। स्वयं अपनो के बीच से शासक को चुनने की पद्धति को गणतंत्र कहा जाता है। 'तंत्र' का मतलब है व्यवस्था। जनगण अर्थात् साधारण लोग स्वयं ही देश का तंत्र अथवा व्यवस्था ठीक करते है इसीलिए यहां गणतंत्र है। इसी तरह से साधारण जनता जिसे देश को चलाने के लिए चुनते है, उसे ही सरकार कहते है।

सोचकर बताओं

इसके पहले के अध्याय में हमलोग राजा, सुलतान और बादशाहों की कहानी पढ़े हैं। उनके शासन व्यवस्था को राजतंत्र कहा जाता था। अभी भी किसी - किसी देश में राजा-रानी की प्रथा है। जैसे इंग्लैण्ड, और जापान। लेकिन उन सब देशों में भी गणतांत्रिक सरकार है। साधारण लोग वहां पर स्वयं सरकार का चुनाव करती है। भारत में राजा-रानी की प्रथा नहीं है। यहाँ पर राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री है। अब आप बताइए कि बहुत समय पहले बंगाल में एकबार प्रजा ने ही अपने राजा का चुनाव किया था। वह राजा कौन थे? इसका उत्तर द्वितीय अध्याय में है।

चित्र ९.१

डॉ० भीमराव अम्बेडकर

जन्म : 1891 ई०
मृत्यु : 1956 ई०

प्रत्येक देश का संचालन कैसा होगा, इसके लिए नियम कानून है। इस नियम कानून को ही संविधान कहा जाता है। 'विधान' शब्द का अर्थ है-नियम। अधिकांश देशों में संविधान लिखित आकार में है। लेकिन कुछ देशों में यह लिखित नहीं है। वहां पर प्राचीन काल से चली आ रही नियम को ही माना जाता है।

भारत का अपना लिखित संविधान है। भारतीय संविधान पूरी दुनिया का सबसे बड़ा संविधान है। इतना अधिक धारा, उपधारा किसी और देश के संविधान में नहीं है। इस संविधान के प्रधान निर्माता डॉ० भीमराव अम्बेडकर है। भारतीय संविधान में देश में सरकार का चुनाव करने के लिए देश के लोगों के अधिकार को स्वीकार किया गया है। उसी अधिकार के कारण ही प्रत्येक पाँच वर्ष के पश्चात् चुनाव होता है। जिसे बोलचाल की भाषा में 'वोट देना' कहते है। इस चुनाव में वोट देकर देश के लोग आगामी पाँच वर्ष के लिए सरकार का चुनाव करती है।

भारत एक विशाल देश है। इस देश में एक ही केन्द्रीय सरकार है। लेकिन प्रत्येक राज्यों की अपनी स्वयं की सरकार है, जिसे राज्य सरकार कहा जाता है। केन्द्र और राज्य सरकार दोनों का ही चुनाव साधारण जनता करती है। केन्द्र सरकार का चुनाव देश की समस्त साधारण जनता करती है और राज्य सरकार का चुनाव उस राज्य की जनता करती है।

संविधान में केन्द्र और राज्य सरकार की क्या-क्या क्षमता है, इसका उल्लेख है। जिस शासन व्यवस्था में केन्द्र और राज्य दोनों प्रकार के सरकार की क्षमता को स्वीकार किया गया है, उसे राष्ट्रसंघ सरकार व्यवस्था कहते हैं। फलस्वरूप भारत सरकार एक ओर गणतांत्रिक है, क्योंकि साधारण जनता स्वयं शासन का चुनाव करती है। और दूसरी ओर वह राष्ट्रसंघ क्योंकि केन्द्र और राज्य दोनों प्रकार के सरकार ही इस शासन व्यवस्था में है।

'सरकार' की अवधारणा उसके क्रिया-कलाप से ही स्पष्ट हो जाता है। फलस्वरूप सरकार का कार्य क्या है — यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। अति सामान्य रूप से कहा जाए तो सरकार का कार्य है - देश की शासन व्यवस्था का संचालन करना साधारण जनता का उपकार हो इसके लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास करना, कर संग्रह करना, और देश में स्वाधीनता की भावना को सुरक्षित रखना। देश की शांति और उन्नति के लिए सरकार कार्य करेगी। इन सभी कार्यों को करने के लिए सरकार को संविधान रास्ता दिखाती है। संविधान के अनुसार ही सरकार देश पर शासन करेंगी।

सरकार के क्रिया-कलाप को संचालित करने के लिए तीन विभाग किए गए है। कानून विभाग, जहाँ पर देश के संचालन के लिए कानून बनाया

कुछ बातें

भारतीय संविधान

प्राय: तीन वर्ष की आलोचना और वितर्क के पश्चात् भारतीय संविधान तैयार हुआ। 1949 ई० के 26 नवम्बर को संविधान पास (गृहीत) हुआ। 26 जनवरी 1950 ई० से यह संविधान लागू हुआ। 26 जनवरी को गणतंत्र दिवस के रूप में पालन किया जाता है।

जाएगा। शासन विभाग, इस कानून के अनुसार जो देश का संचालन करेंगा। न्याय विभाग, संविधान के अनुसार जो देश में सही तरीके से शासन हो रहा है या नहीं, साधारण जनता के स्वार्थों की रक्षा हो रही है या नहीं– इन्हीं सभी विषयों पर नजर रखेगी।

चित्र ९.२ :
नई दिल्ली में आश्चर्यचकित भारत का संसद भवन।

सोचकर बताओं

सोचकर बताइएं कि वर्तमान भारत में यदि सरकार गणतांत्रिक और स्वायत है, तो सुलतान और मुगल काल में भारत का सरकार कैसा था?

भारतीय जनता केवल शासक का ही चुनाव नहीं करती, बल्कि स्वयं शासन में भागीदारी करते है। प्रत्यक्ष तौर पर शासन में भागीदारी करने को ही स्वशासन (स्वायत्त शासन) कहते है। 'स्व' का मतलब अपना और 'आयरू' का मतलब अधीन है। साधारण जनता जहां पर स्वयं ही अपने अधीन शासन व्यवस्था को स्वायत्तशासन (स्वशासन) कहते हैं। पश्चिम बंगाल में इस स्वायत्त शासन को दो तरीके से देखा जाता है शहर और नगर के क्षेत्र में नगरपालिका और गांव के क्षेत्र में पंचायत। यहां पर भी प्राचीन काल के इतिहास का प्रभाव देखा जाता है। प्राचीन भारत में 'सभा' और 'समिति' का प्रचलन था तो मुगल काल में ग्रामीण शासन की परम्परा थी।

छोटे-छोटे शहरों और नगरों में पौर-सभा है। 'पौर' शब्द 'पुट' से आया है। संस्कृत में पुट का मतलब नगर है। इस शहर अथवा नगर में अठारह वर्ष या उससे ज्यादा उम्र के नागरिक वोट देकर पौर-सभा के सदस्यों का चुनाव करती

कुछ बातें

सरकार का विभाग

सभी देशों में न्याय विभाग को दूसरे विभाग (कानून और शासन) से अलग रखा जाता है। किसी भी तरह से न्याय का रास्ता बंद न हो जाए, उसी के लिए यह व्यवस्था है। इसे ही क्षमता (शक्ति) का विकेन्द्रीकरण नीति कहा जाता है। गणतंत्र शक्तिशाली बनी रहे, जिसके कारण ही यह नीति अपनाई जाती है। फ्रांस के दार्शनिक मान्टेस्कू सर्वप्रथम इसी नीति की बात को कहे थे।

है। इसे पौर प्रतिनिधि कहते है। इनमें से ही एक पौरप्रधान (चेयरमैन) होते है। इसे शहर अथवा नगर में जनसेवा, जन-स्वास्थ्य उन्नयन और प्रशासन इन सभी का देखभाल करना ही पौरसभा का कार्य है। पेयजल का वितरण, रास्ता निर्माण, प्रदूषण को रोकना इत्यादि कार्य पौरसभा करती है। विद्यालय और अस्पताल इत्यादि बनाकर शिक्षा के प्रसार और स्वास्थ्य उन्नयन के लिए पौरसभा प्रयास करती है।

शहर अथवा नगर में पौरसभा के जैसे ही ग्राम में ग्रामपंचायत है। ग्रामीण लोग वोट देकर ग्राम पंचायत के सदस्यों का चुनाव करती है। उनमें से ही कोई पंचायत प्रधान होते हैं। ग्राम में सभी प्रकार की उन्नति करना ही ग्राम पंचायत का कार्य है। पानीय जल का विवरण ग्राम की साफ-सफाई, सड़क रास्ता निर्माण यह सभी ग्राम पंचायत का कार्य है। इसके अलावा शिक्षा अर्जित करने के लिए विद्यालय का निर्माण करना, चिकित्सा केन्द्र बनवाना, वनसृजन करना इत्यादि कार्य ग्राम पंचायत के अन्तर्गत आता है।

बहुत सारे ग्राम (गांव) को लेकर एक ब्लॉक होता है। उस ब्लॉक में एक ही साथ एक पंचायत समिति रहती है। कुछ ब्लॉक को लेकर 'जिला' बनता है। जिला में जिला परिषद् रहता है। ग्राम के जैसा ही जिला के स्वायत्त शासन का उत्तरदायित्व पंचायत समिति और जिला परिषद् के ऊपर रहता है।

पौरसभा हो या पंचायत व्यवस्था सभी में पाँच वर्ष के पश्चात् साधारण जनता उसके प्रतिनिधि का चुनाव करती है। और इन दोनों क्षेत्रों में विभिन्न तरीके से साधारण जनता स्वयं शासन व्यवस्था और कार्यक्रम में भाग लेती है।

इसी तरह साधारण जनता के प्रत्यक्ष योगदान के जरिए ही शहर अथवा नगर और ग्राम में गणतंत्र प्रभावशाली हो पाया है।

आप पौरसभा क्षेत्र में रहते है यह पंचायत के क्षेत्र में? आपके क्षेत्र में विद्यालय और स्वास्थ केन्द्र है? कितने खेल का मैदान और पार्क है? किस तरह आप पानीय जल को प्राप्त करते है? मित्रों के साथ मिलकर इन सभी की जानकारी लो।

कुछ बातें

गणतंत्र

गणतंत्र शब्द कोई नवीन अवधारणा नहीं है। आज से लगभग ढ़ाई हजार वर्ष पहले की बात है। ग्रीस देश में एथेंस के लोग अपने में से ही किसी को शासक निर्वाचित करते। सुना जाता है कि ये लोग टूटी हुई कलसी के टुकड़ों पर अपनी पसंदीदा चिह्न अंकित कर उसे एक दूसरी बड़ी कलसी में डाल देते थे। जिनके पक्ष में अधिक कलसी का टुकड़ा मिलता, वही शासक बनता।

पृथ्वी का एक मानचित्र लो। अब उसमें से ग्रीस और एथेंस ढूँढ़कर दिखाओ।

सोच कर देखो

ढूंढ़ कर देखो

1. **रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :** **पूर्णांक १**

(क) शेरशाह/गोपाल/मान्टेस्कू ____________ अपने अधीन प्रदेशों को 'सरकार' के रूप भाग बंटवारा)किया था

(ख) स्वयं अपने के बीच से शासक चुनाव करने की पद्धति को ____________ गणतंत्र/राजतंत्र/संघराष्ट्र कहते है।

(ग) (भारत/जापान/इंग्लैण्ड ____________ का संविधान दुनिया का सबसे बड़ा संविधान है।

(घ) साधारण जनता जिस शासन व्यवस्था को स्वयं अपने अधीन रखती है, उसे ____________ (संविधान/सभा और समिति/स्वायत्तशासन) कहा जाता है।

(ङ) कुछ ग्रामों को लेकर एक ____________ (ब्लॉक/जिला/पौरसभा) होता है।

2. **'क' खण्ड के साथ 'ख' खण्ड का मिलान करें :** **पूर्णांक १**

'क' खण्ड	**'ख' खण्ड**
सरकार	ग्रीस
डॉ० भीमराव अम्बेडकर	स्वायत्तशासन
संघराष्ट्र	भारतीय सरकार
एथेन्स	फ्रांस (फारसी)
जिला परिषद	भारत

3. **संक्षिप्त (३०-५० शब्दों में) उत्तर लिखिए :** **पूर्णांक ३**

(क) वर्तमान भारत के शासन व्यवस्था में क्या-क्या विशेषता देखने को मिलती है।

(ख) संघराष्ट्र और संविधान किसे कहते हैं ?

(ग) सरकार के क्या-क्या कार्य है ?

(घ) स्वायत्तशासन से आप क्या समझते है ?

(ङ) चुनाव को साधारण रूप में क्या कहा जाता है ? भारत में कितने वर्ष के अन्तराल पर सरकार का चुनाव होती है ? सरकार के चुनाव के साथ गणतंत्र का क्या सम्बंध है ?

4. **विस्तारपूर्वक (१००-१२० शब्दों में) उत्तर दीजिए।** **पूर्णांक ५**

(क) भारत को क्यों गणतांत्रिक संघराष्ट्र कहा जाता है। देश को चलाने में संविधान की क्या भूमिका है ?

(ख) सरकार के कितने अंग है ? ये कौन-कौन कौन सा कार्य करती है। न्याय विभाग को क्यों अलग रखा जाता है।

(ग) पौरसभा और ग्राम पंचायत का क्या-क्या कार्य है ?

(घ) पश्चिम बंगाल की स्वायत्तशासन व्यवस्था के सम्बंध में एक लेख लिखिए ?

(ङ) प्राचीन काल में भारत के अलावा क्या कहीं और गणतंत्र का उल्लेख मिलता है ? वह गणतंत्र किस प्रकार का था ?

सोचकर लिखो (१००-१५० शब्दों में)

(क) मान लीजिए आप पौरसभा प्रतिनिधि/पंचायत के सदस्य है। आप अपने स्थानीय क्षेत्र की उन्नति के लिए क्या-क्या कार्य करेंगे।

(ख) मान लीजिए आप भारत के एक साधारण लोग है ? आप अपने क्षेत्र की उन्नति करना चाहते है। कैसे और किस तरह से आप उन्नति की परिकल्पना करेंगे।

(ग) मान लीजिए पाल काल के बंगाल के एक साधारण व्यक्ति के साथ अचानक आपकी मुलाकात हुई। आप उनसे राजतंत्र एवं गणतंत्र विषय पर बातचीत कर रहे हैं। उस बातचीत को लेकर संवाद लिखिए।

सीखने की पद्धति

- पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद द्वारा अनुमोदित विद्यालयों के सप्तम श्रेणी में पढ़ने-पढ़ाने के लिए 'अतीत और परंपरा' पुस्तक विद्यार्थियों, शिक्षक-शिक्षिकाओं के सामने प्रस्तुत किया गया है।

- विगत् २००५ (साल) में बने राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (नेशनल करिकूलम फ्रेमवर्क २००५) के निर्देशानुसार इस पुस्तक के विषय को प्रस्तुत किया गया है। यथासंभव सरल भाषा में, चित्र एवं मानचित्र के सहयोग से भारत के मध्ययुग के इतिहास के (अनुमानत: ७००-१८०० ई० तक) विभिन्न पक्षों की इस पुस्तक में समीक्षा की गई हैं।

- पश्चिम बंगाल की परिस्थिति को ध्यान में रखकर इस पुस्तक में बंगाल को अलग से महत्त्व दिया गया है। (विशेष रूप से द्वितीय एवं तृतीय अध्याय में)

- पुस्तक में मूल कथा विवरणों के साथ-साथ ९८ कुछ बातें' शीर्षक में अलग से विभिन्न तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है। इसे जिज्ञासु विद्यार्थियों को विषय के प्रति आकृष्ट करने के उद्देश्य से रखा गया है। शिक्षक-शिक्षिकाएँ इनके सहयोग से विद्यार्थियों को विषयों के प्रति ध्यान आकृष्ट कर सकेंगे, उनकी कल्पनाशक्ति को विकसित सकेंगे। फिर भी, निरंतर मूल्यांकन के लिए साधारणत: इसको छोड़ देना ही अच्छा है। इन हिस्सों से मूल्यांकन के लिए प्रश्न नहीं रखा जा सकेगा। कल्पनात्मक एवं तुलनात्मक समीक्षा करते समय इसका उपयोग किया जा सकता है। इनमें ११, १३, १५, २७, ३९, ५०, ७३, ८४, ८६, ११८, ११९, एवं १६२ पृष्ठों की 'कुछ बातें' हिस्सों को बुनियाद के रूप में ग्रहण करना होगा।

- हर पृष्ठ के एक ओर विद्यार्थियों के लिए जगह है। वहाँ वे अपने विचार लिख सकेंगे। आशा करता हूँ कि पहले दिन ही शिक्षिक-शिक्षिका इस बात से उन्हें परिचित करा देंगे।

- विभिन्न अध्यायों में मानचित्रों का प्रयोग किया गया है। इनके माध्यम से अलग-अलग युग के राजनीतिक आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों को समझना आसान हो जायेगा। जैसे, चतुर्थ अध्याय में दिल्ली सल्तनत के विस्तार का धारावाहिक विवरण न देकर केवल एक मान्नचित्र के माध्यम से विषय को स्पष्ट किया गया है। षण्ठ अध्याय में दो रेखाचित्रों के सहयोग से मध्ययुग में भारतीय वाणिज्य के साथ संयुक्त व्यक्ति एवं संस्थान से संबंधी बातें एवं भारत में यूरोपीय कंपनी के आयात-निर्यात संबंधी चित्र को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

- इस पुस्तक की एक बड़ी उपलब्धि है इसके चित्र। इन चित्रों को हमेशा कथा विवरणों के साथ मिलाकर पढ़ना होगा। ये चित्र यूँ ही नहीं दिया गया है, बल्कि मूल कथा विवरणों का ही एक अंग है।

- इतिहास का एक महत्वपूर्ण अंग उसका साल-तारीख है। इस पुस्तक में विद्यार्थियों को नीरस रूप से साल-तारीख याद कराने के ऊपर जोर नहीं दिया गया है। राजा-बादशाहों के नामों की तालिका विद्यार्थी याद करेंगे, ऐसा भी कोई दावा हमारा नहीं है। साधारणत: शासकों के वंशों का विशद् एवं धारावाहिक इतिहास का विवरण संबंधी धारणा विद्यार्थियों के सामने स्पष्ट हो जाये, इसके लिए किसी एक कार्यक्रम को वास्तविक रूप में यहाँ चित्रित किया गया है।

- वर्षभर सम्पूर्ण मूल्यांकन पठन–पाठन का एक महत्तवपूर्ण अंग है। इसके लिए आवश्यक अलग–अलग तरह के प्रश्नों का चुनाव किया गया है। हर अध्याय के अंत में 'सोचकर देखो' 'ढूँढ़कर देखो' दिया गया है, जिससे शिक्षक/शिक्षिकाएँ स्वयं ही संभावित प्रश्नों को बना सकेंगे। यह अध्ययन सिर्फ इस कार्य की ओर निर्देश देती है। मानचित्र एवं चित्रों के माध्यम से भी विद्यार्थियों से प्रश्न पूछा जा सकता है। प्रथम अध्याय से कोई भी प्रश्न इसमें नहीं रखा गया है। मूल्यांकन करते समय इस अध्याय से कोई प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।
- प्रत्येक अध्याय में 'सोचकर लिखो' हिस्से में कुछ काल्पनिक प्रश्नों को रखा गया है। इसका उद्देश्य विद्यार्थियों की कल्पनाशक्ति एवं सृजनशक्ति को परखना है। कहानियों के रूप में इस प्रकार प्रश्नोत्तर के माध्यम से ही विद्यार्थियों को इतिहास विषय के संबंध में उनकी अपनी अवधारणा एवं रूचि को विकसित किया जा सकता है। लेकिन मूल्यांकन करते समय इससे प्रश्न नहीं पूछा जा सकता।
- पुस्तक के विभिन्न अध्यायों के विषयों को लेकर कक्षा में विद्यार्थियों के मध्य वाद–विवाद प्रतियोगिता, आलोचना सभा का आयोजन किया जा सकता है। चतुर्थ अध्याय में इसी तरह का एक निर्देश भी दिया गया है।
- इस पुस्तक में ९ अध्याय हैं। विद्यार्थी प्रथम से नवम अध्याय की ओर धारावाहिक रूप से आगे बढ़ते जायेंगे अथवा विषय के साथ संगति, रखकर दूसरी तरह से भी अध्यायों को सजाया जा सकता है। जैसे, पंचम, षष्ठ एवं अष्टम अध्यायों को एक साथ पढ़ा जा सकता है।